भारतीय संस्कृति का समीक्षात्मक अध्ययन : मिलिन्दपञ्ह के विशेष सन्दर्भ में

(Bhāratīya Sanskṛti kā Samīkṣātmaka Adhyayana : Milindapaňha ke Viśeṣa Sandarbha meṁ)

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की एम. फिल्. शोध-उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध

अनुसन्धाता

विकास सिंह

शोधनिर्देशक

डॉ० चौडूरि उपेन्द्र राव

सह-शोधनिर्देशक

डॉ. विवेक कुमार

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली – 110067

भारत

2012

समर्पण

पालि-विदुषी श्रीमती रीस डेविड्स,
इतिहासकार रोमिला थापर तथा
अगाध वात्सल्यमूर्ति मेरी माँ
को सादर समर्पित

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली - ११००६७
Special Centre for Sanskrit Studies
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI-110067

24 July, 2012

DECLARATION

I **Vikas Singh** hereby declare that this dissertation entitled "भारतीय संस्कृति का समीक्षात्मक अध्ययन: मिलिन्दपञ्ह के विशेष सन्दर्भ में" submitted in the **Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi, 110067**, for the award of the Degree of **Master of Philosophy**, is my original work, and has not been submitted so far, in part or full for any other Degree or Diploma in any University/Institution.

(Vikas Singh)

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली - ११००६७
Special Centre for Sanskrit Studies
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI-110067

24 July, 2012

CERTIFICATE

This dissertation entitled "भारतीय संस्कृति का समीक्षात्मक अध्ययन : मिलिन्दपञ्ह के विशेष सन्दर्भ में" submitted by **Vikas Singh** to **Special Centre for Sanskrit studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi-110067**, for the award of the degree of **Master of Philosophy**, is an original work and has not been submitted so far, in part or full, for any other degree or diploma of any University. This may be placed before the examiners for evaluation and for award of the degree of **Master of Philosophy**.

Prof. Shashiprabha Kumar	**Dr. Chowduri Upender Rao**	**Dr. Vivek Kumar**
(Chairperson)	**(Supervisor)**	**(Co-Supervisor)**

प्राक्कथन

सर्वप्रथम मैं अपने शोधनिर्देशक डॉ. चौडूरि उपेन्द्र राव तथा सह-शोधनिर्देशक डॉ. विवेक कुमार का आभार व्यक्त करना चाहूँगा जिनके दिशा निर्देशन में मैंने यह शोध कार्य पूरा किया। डॉ. राव के पालि साहित्य के सहज तथा सुगम अध्यापन से प्रभावित होकर मेरे मन में मिलिन्दपञ्ह पर शोध करने का विचार उत्पन्न हुआ, जिसका स्वरूप डॉ. विवेक कुमार के सहयोग से प्रस्फुटित हुआ। उन्होंने समय-समय पर संस्कृति विषयक पाश्चात्य तथा भारतीय मतों से मुझे परिचित करवाया।

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र की अध्यक्षा प्रो. शशिप्रभा कुमार का मैं कृतज्ञ हूँ, जिनके विचारों तथा सुझावों का मैंने अपने शोधकार्य में भरपूर उपयोग किया। वे मेरे लिए हमेशा से प्रेरणा स्रोत रही हैं। उनके मार्गदर्शन तथा अपरिमित स्नेह का मैं आजीवन ऋणी रहूँगा।

संकाय सदस्य डॉ. रामनाथ झा, डॉ. रजनीश कुमार मिश्र, डॉ. सन्तोष कुमार शुक्ल, डॉ. गिरीशनाथ झा, और डॉ. हरिराम मिश्र का धन्यवाद ज्ञापन करना चाहूँगा जिनके अमूल्य परामर्शों ने मेरे शोधकार्य को सारगर्भित बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

मैं प्रो. धर्मकीर्ति (सेवानिवृत्त, बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय), प्रो. तुलसीराम (रूसी और मध्य-एशिया अध्ययन केन्द्र, जे.एन.यू.), प्रो. आर. एन सिंह (बौद्ध अध्ययन विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय), डॉ. रामकुमार राणा (बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय), डॉ. रेनू शुक्ला (इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय), डॉ. राम चन्द्र (हिन्दी विभाग, जे.एन.यू.), डॉ. ज्ञानादित्य शाक्य (बौद्ध अध्ययन विभाग, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय), माई राम (मदुरै कामराज विश्वविद्यालय) तथा डॉ. कौशल पंवार (मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय) के विचारों तथा शोधविषयक सामग्री की जानकारी से भी अनुगृहीत हुआ।

संस्कृत विभाग के सभी कर्मचारी गणों के प्रति मैं आभार व्यक्त करना चाहूँगा। मनीष जी तथा शबनम जी का जो सहयोग रहा उसके लिए मैं हमेशा उनका आभारी रहूँगा। मैं संस्कृत विभाग, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय के बौद्ध अध्ययन विभाग तथा कश्मीर विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों के सभी कर्मचारियों को धन्यवाद देना चाहूँगा जिन्होने मेरी इस शोध कार्य के लिए सामग्री-संकलन में सहायता की।

मैं स्नेहमयी एवं करुणामयी अपनी माँ का आभार व्यक्त करके उनके ऋण से मुक्त नहीं होना चाहता, जिन्होंने अशिक्षित होते हुए भी मुझे भारतीय समाज के व्यवहारिक पहलुओं से अवगत कराया। इन तथ्यों का मेरे द्वारा शोधप्रबन्ध में उपयोग किया गया। मेरे पापा की आलोचना पद्धति ने मेरे लेखन कार्य में गतिशीलता प्रदान की। मेरी दादी, जिन्हें गर्व है कि उनका पौत्र दिल्ली के सबसे अच्छे विश्वविद्यालय में पढ़ता है, के प्रति भी आभार व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द कम हैं। मेरी अग्रजा रजनी, अनुज रवि तथा दीनू ने मानसिक संबल प्रदान किया तथा शोध सामग्री के एकत्रीकरण में पूर्ण सहयोग दिया।

मेरे मार्गदर्शक अभिजीत कुमार जी का मैं हमेशा आभारी रहूँगा जिन्होंने न केवल इस शोध कार्य में अपितु मेरे जीवन की हर कठिन परिस्थिति में मेरा साथ दिया है। उन्हीं के सहयोग तथा स्वयं के परिश्रम से जे.एन.यू. के उन्मुक्त विद्या प्रांगण में पहुँचा, जहाँ मैंने अस्मितावादी साहित्य, बौद्ध साहित्य, संस्कृत साहित्य, भारतीय दर्शन, कम्प्यूटर और अनेक नवीन विषयों का परिचय पाया।

बौद्ध उपासक बहादुर सिंह तथा डॉ. राजाराम जी का परिवार सहित आभार व्यक्त करता हूँ जो प्रत्येक क्षण मुझे जीवन की नवीन दिशा की ओर प्रेरित करते रहे हैं। मैं अपने मित्र भन्ते दीपानन्द का भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिसने मेरी सन्दर्भ अनुसंधान में सहायता की।

दीप कुमार मित्तल एवं नारायण दत्त मिश्र के अमूल्य सुझावों, उनकी आलोचनात्मक टिप्पणियों, लेखनगत अशुद्धियों के सुधारों से मेरा शोधकार्य त्रुटिरहित तथा भाषाई रूप से समृद्ध बन सका है, जिसके लिए मैं उनका आभार प्रकट करता हूँ। बड़े भाई समान डॉ. भूपेन्द्र सिंह परनामी एवं पुरुषोत्तम लाल के वैचारिक सहयोग से यह कार्य संपूर्णता को प्राप्त हुआ। नर्मदा छात्रावास के मेरे रूम पार्टनर आमोद ने शोध कार्य के दौरान मेरा पूरा सहयोग किया। मैं अपने दोस्तों राजीव, रोहित, अनिल, उमा आर्या, अरविन्द, भोला, महेन्द्र, शिवलोचन, मणिशंकर, सर्वेश, कल्पना, अजय, तथा केशव के प्रति भी अपना आभार प्रकट करना चाहता हूँ।

विकास सिंह

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन		i-ii
विषयानुक्रमणिका		iii-vii
संकेत-सारणी		viii-x
विषय प्रवेश		1-6
प्रथम अध्याय – भारतीय संस्कृति : स्वरूप एवं प्रवाह		**7-41**
1.1.	संस्कृति क्या है?	7-10
1.2.	संस्कृति एवं सभ्यता में अन्तर	10-12
1.3.	भारतीय संस्कृति का स्वरूप	12-18
1.4.	भारतीय संस्कृति का प्रवाह	18-41
	1.4.1. भारतीय संस्कृति का उद्भव	18-19
	1.4.2. आरंभिक काल में भारतीय संस्कृति	19-20
	1.4.3. हड़प्पा काल में भारतीय संस्कृति	21-26
	1.4.4. वैदिक वाङ्मय में भारतीय संस्कृति	26-28
	1.4.5. पुनर्जागरण काल में भारतीय संस्कृति	28-33
	1.4.6. राजतंत्रों के काल में भारतीय संस्कृति	33-36
	1.4.7. मध्यकाल में भारतीय संस्कृति	33-36
	1.4.8. आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति	36-41

द्वितीय अध्याय– भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि ग्रंथ मिलिन्दपञ्ह **42-65**

2.1. पालि साहित्य में मिलिन्दपञ्ह का वैशिष्ट्य 42-48

2.2. मिलिन्दपञ्ह का लेखक 48-49

2.3. मिलिन्दपञ्ह का काल निर्धारण 49-55

2.4. मिलिन्दपञ्ह की विषय-वस्तु का परिचय 55-64

2.4.1. बाहिरकथा 57-59

2.4.2. लक्खणपञ्ह 59

2.4.3. विमतिच्छेदनपञ्ह 60

2.4.4. मेण्डकपञ्ह 61-62

2.4.5. अनुमानपञ्ह 62

2.4.6. ओपम्मकथापञ्ह 63

2.5. भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि ग्रंथ मिलिन्दपञ्ह 64-65

तृतीय अध्याय – मिलिन्दपञ्ह : भारतीय संस्कृति का विशेष विवेचन **66-119**

3.1. दार्शनिक चिंतन 66-78

3.1.1. अनात्मवाद 66-71

3.1.2. पुनर्जन्म 71-73

3.1.3. कर्मवाद 73-74

3.1.4. प्रतीत्यसमुत्पाद 74

3.1.5. निर्वाण 74-77

3.1.6. नाम-रूप 77

3.1.7. काल 77-78

3.2. धार्मिक चिंतन 78-93

3.2.1. बौद्ध धर्म संबंधी विचार 78-88

- ❖ आर्यसत्य 78-79
- ❖ त्रिविध यान 79-82
- ❖ नैतिक विचार 82
- ❖ धम्मनगर का आदर्श 82-84
- ❖ भिक्खुओं संबंधी नियम 84-85
- ❖ धुताङ्ग व्रत 85-87
- ❖ गृहस्थ उपासक तथा उपासिकाएं 87-88

3.2.2. बुद्ध के संदर्भ में प्रचलित मान्यताएं 88-93

- ❖ बुद्ध के अस्तित्व संबंधी शंका 88
- ❖ बुद्ध पूजा संबंधी विचार 88-89
- ❖ बुद्ध की सर्वज्ञता 89-90
- ❖ बुद्ध का अनुत्तर होना 90-91
- ❖ बुद्ध की निष्कलंकता 91

3.2.3. बौद्धेतर सम्प्रदाय 91-92

3.2.4. ब्राह्मण धर्म संबंधी मान्यताएं 92-93

3.3. सामाजिक चिंतन 93-103

3.3.1. समाज संरचना 93-95

3.3.2. परिवार तथा रहन-सहन 95-97

3.3.3. स्त्रियों की दशा 97-98

3.3.4. शिक्षा व्यवस्था 98-100

3.3.5. मनोरंजन 100-101

3.3.6. भोजन तथा चिकित्सा व्यवस्था 101-103

3.4. राजनीतिक व्यवस्था 104-110

3.4.1. शासन का केन्द बिन्दु राजा 104-105

3.4.2. मंत्रीगण तथा प्रशासन का विकेन्द्रीकरण 105-107

- ❖ राजकुमार 105
- ❖ परिणायकरत्न 106
- ❖ अमात्य 106
- ❖ मंत्री 106
- ❖ प्रशासन का विकेन्द्रीकरण 107

3.4.3. राज्य की आय के साधन 107-108

3.4.4. सुरक्षा व्यवस्था तथा सेना 108-109

3.4.5. न्याय व्यवस्था 109-110

3.5. कृषि एवं अर्थव्यवस्था 111-119

3.5.1. कृषि तथा सिंचाई व्यवस्था 111-113

3.5.2. शिल्प तथा व्यवसाय 113-116

3.5.3. व्यापार तथा बाजार व्यवस्था 117-118

3.5.4. स्थापत्य तथा कला का विकास 118-119

चतुर्थ अध्याय – मिलिन्दपञ्ह प्रतिपादित भारतीय संस्कृति की समीक्षा 120-134

4.1. दार्शनिक समीक्षा 120-126

4.2. धार्मिक समीक्षा 126-129

4.3. सामाजिक समीक्षा 129-131

4.4. राजनीतिक एवं आर्थिक समीक्षा 131-134

उपसंहार 135-137

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची 138-155

संकेत सारणी

वि.पि.	-	विनयपिटक
दी.नि.	-	दीघनिकाय
म.प.नि.सु.	-	महापरिनिब्बानसुत्त
म.नि.	-	मज्झिमनिकाय
सं.नि.	-	संयुत्तनिकाय
अंगु.नि.	-	अंगुत्तरनिकाय
थे.गा.	-	थेरीगाथा
खु.पा.	-	खुद्दकपाठ
ध.प.	-	धम्मपद
सु.नि.	-	सुत्तनिपातपालि
मि.प.	-	मिलिन्दपञ्ह
वि.म.	-	विसुद्धिमग्ग
अभि.को.	-	अभिधर्मकोष
म.व.	-	महावस्तु
म.शा.	-	मध्यमकशास्त्रम्
स.द.सं.	-	सर्वदर्शनसंग्रहः
ध.सं.	-	धर्मसंग्रहः

गौ.ध.सू.	-	गौतमधर्मसूत्र
ऋ.वे.	-	ऋग्वेद
य.वे.	-	यजुर्वेद
म.स्मृ.	-	मनुस्मृति
श्री.गी.	-	श्रीमद्भगवद्गीता
अ.शा.	-	अर्थशास्त्रम्
मि.प्र.	-	मिलिन्द प्रश्न (भिक्षु जगदीश काश्यप)
अ.भा.	-	अद्भुत भारत (ए.एल. बाशम)
बौ.ध.द.	-	बौद्धधर्म-दर्शन
बौ.द.मी.	-	बौद्ध-दर्शन-मीमांसा
पा.भा.को.	-	पालि-भाष्यकोश (सविता कांबळे)
पा.हि.को.	-	पालि-हिन्दी कोश (आनन्द कौशल्यायन)
रा.पा.इ.	-	पालि साहित्य का इतिहास (राहुल सांकृत्यायन)
पा.सा.इ.	-	पालि साहित्य का इतिहास (भरतसिंह उपाध्याय)
मि.प.ए.अ.	-	मिलिन्दपञ्ह एक अध्ययन (रेनू शुक्ला)
द.दि.	-	दर्शन दिग्दर्शन (राहुल सांकृत्यायन)
भा.द.ए.	-	भारतीय दर्शन (भाग-1) (सर्वपल्ली राधाकृष्णन)
बौ.ध.प.व.	-	बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष
भा.इ.	-	भारत का इतिहास (रोमिला थापर)

भा.पु.अ.	-	भारतीय पुरालेखों का अध्ययन (शिवस्वरूप सहाय)
सं.चा.अ.	-	संस्कृति के 4 अध्याय (रामधारी सिंह दिनकर)
भ.बु.ध.	-	भगवान बुद्ध और उनका धम्म (बी. आर. अम्बेड़कर)
प्रा.भा.इ.सं.	-	प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति (के.सी.श्रीवास्तव)
भा.स.मू.	-	भारतीय संस्कृति के मूलाधार (शिवकुमार गुप्त)
भा.स.बौ.दे.	-	भारतीय संस्कृति को बौद्धधर्म की देन (एस.एस. गौतम)
सं.बौ.सा.इ.सं.	-	संस्कृत बौद्ध साहित्य में इतिहास और संस्कृति (अँगने लाल)
बौ.सं.वि.आ.	-	बौद्ध संस्कृति के विविध आयाम (अँगने लाल)
NBS	-	Nagsena Bhiksu Sutra- Vol. II (Ven. Guang Xing)
TEKA	-	The Edicts of King Ashoka (Ven. S. Dhammika)
TQKM	-	The Questions of King Milind (T. W. Rhys Davids)
PED	-	Pali-English Dictionary (T.W. Rhys Davids & William Stede)

****

विषय प्रवेश

मानव की सृजनशीलता तथा चिन्तनशीलता के वे स्वर्णाक्षर जो अतीत के पृष्ठों पर दर्ज हैं, उनका अन्वेषण करने पर पता चलता है कि जबसे मानव ने स्वयं तथा इस जगत् के बारे में जानना प्रारंभ किया होगा तो जीवन तथा सृष्टि संबंधी रहस्यों को उद्घाटित करने के प्रयास में मानव ने आचार-व्यवहार, रहन-सहन, कला-संगीत, राष्ट्र-राज्य, साहित्य-इतिहास, धर्म-दर्शन, विश्वास-परम्परा आदि का विकास किया जिन्हें समग्र रूप में संस्कृति कहा जा सकता है।

भारतीय संस्कृति की विकास यात्रा प्राचीनकाल से अद्यावधि अनवरत गतिमान है। कालक्रमानुसार भारत की सांस्कृतिक परंपरा में विभिन्न विचारों के जुड़ने से वैश्विकता, आध्यात्मिकता, समन्वयवादिता, सहिष्णुता, सर्वांगीणता, अविच्छिन्नता, त्याग-तपोमयता इत्यादि विशिष्टताओं से युक्त एक सार्वभौम संस्कृति का निर्माण हुआ।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व वैश्विक इतिहास में बौद्धिक और धार्मिक क्रान्ति का सूत्रपात हो रहा था। तत्समय ईरान में जरथुस्त्र, चीन में कन्फ़्यूशियस तथा यूनान में पायथागोरस जैसे क्रांतिकारी चिंतक व सुधारक नवीन विचारों का प्रसार कर रहे थे। भारतीय इतिहास की धारा भी इस युगान्तकारी सार्वभौमिक परिवर्तन को जन्म दे रही थी जिसका प्रतिनिधित्व महावीर स्वामी तथा भगवान्[1] बुद्ध कर रहे थे।

निरंजना नदी के किनारे बोधिवृक्ष के नीचे सम्यक् सम्बुद्ध हो सिद्धार्थ गौतम ने मानवमात्र के कल्याणार्थ धम्मोपदेश कर धम्मचक्र का प्रव्रतन किया। मानव अपना स्वामी आप होता है, अन्य कोई उसका स्वामी नहीं हो सकता। स्वयं का दमन करने वाला दुर्लभ स्वामी पद को प्राप्त करता है।[2] सत्य, करुणा, मैत्री, समता, अहिंसा, बंधुता और मानवता पर आधारित जिस मार्ग को गौतम बुद्ध ने चलाया वह सारनाथ से सभ्य जगत् की सीमाओं को छूता हुआ जंगलों, रेगिस्तानों, नदियों तथा पर्वतों की गुफाओं में अपनी मनोरम आभा से परितप्त लोकयांत्रिक को विश्राम और विलासिता से विराम देता हुआ[3] सुदूर चीन, जापान, स्याम, कोरिया, सिंहलद्वीप, जावा, सुमात्रा इत्यादि अनेक देशों में फैल गया।

---

[1] भगवाति वचनं सेट्ठं, भगवाति वचनमुत्तमं। गरु गारवयुत्तो सो, भगवा तेन वुच्चती॥

भाग्यवा भग्गवा युत्तो, भगेहि च विभत्तवा। भत्तवा वन्तगमनो, भवेसु भगवा ततो॥ *सुमंगलविलासिनी*, 1.1

भग्गरागो भग्गदोसो, भग्गमोहो अनासवो। भग्गास्स पापका धम्मा, भगवा तेन वुच्चती"ति॥ *वि.म.*, 1.144

[2] अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया। अत्तना हि सुदन्तेन, नाथं लभति दुल्लभं॥ *ध.प.*, 160.

[3] *सं.बौ.सा.इ.सं.*, पृ. भूमिका भाग-1.

धर्म और परम्पराओं से ऊपर उठकर संस्कृति की उच्चतम अवधारणा को प्रतिष्ठित करने के लिए जिस प्रकार की आध्यात्मिकता, प्रेरणा, दर्शन एवं तत्त्वज्ञान तथा तार्किकता की अपेक्षा है, उसमें बौद्धों की क्या देन है, उसे जाने बिना आज न तो भारतीय संस्कृति की विशालता का आकलन किया जा सकता है और न ही सांस्कृतिक जीवन-दृष्टि की प्रक्रिया को परिवर्तित किया जा सकता है, जिसके आधार पर समाज की वर्तमान विकृतियों का परिहार किया जा सके।

प्रस्तुत लघु शोधप्रबन्ध में मिलिन्दपञ्ह के आधार पर विचार किया गया है कि बौद्ध प्रवाह किस प्रकार भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्य, अनात्मवाद, कर्मवाद, निर्वाण, समानता, स्त्रियों की स्वतंत्रता, करुणा, अहिंसा इत्यादि विचारों ने जिस वैचारिक पृष्ठभूमि का निर्माण किया, बौद्ध भिक्खुओं ने पदयात्राओं के माध्यम से उसका प्रचार-प्रसार किया तथा भारतीय संस्कृति की 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा को साकार रूप प्रदान किया। भारतीय संस्कृति पर बौद्ध धर्म के इस व्यापक प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए पालि भाषा में निबद्ध त्रिपिटक साहित्य की सुदीर्घ एवं सहज परम्परा विद्यमान है। भारतीय संस्कृति के इस भव्य स्वरूप की झलक त्रिपिटकेतर अथवा अनुपिटक पालि ग्रंथ मिलिन्दपञ्ह में भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

मिलिन्दपञ्ह में मिलिन्द तथा नागसेन के मध्य हुए धर्म तथा दर्शन संबंधी संवाद का विस्तृत विवरण बाहिरकथा, लक्खणपञ्ह, विमतिच्छेदनपञ्ह, मेण्डकपञ्ह, अनुमानपञ्ह, तथा ओपम्मकथापञ्ह नामक छह अध्यायों में निबद्ध है। मिलिन्दपञ्ह में बाहिरकथा प्रस्तावना भाग है। इसमें नागसेन एवं मिलिन्द की पूर्वजन्मकथा, पुनर्जन्म का परिचय तथा दोनों के प्रथम भेंट का वर्णन है। लक्खणपञ्ह में धर्म संबंधी गूढ दार्शनिक प्रश्नों अनात्मवाद एवं पुनर्जन्म का विश्लेषण किया गया है। विमतिच्छेदनपञ्ह में कर्मफल, बुद्ध के निर्वाण संबंधी प्रश्नोत्तर तथा बुद्ध की सर्वज्ञता संबंधी संदेहों का निराकरण किया गया है। मेण्डकपञ्ह में विकल्पात्मक, बुद्धि को चकरा देने वाले प्रश्नों का वर्णन किया गया है। अनुमानपञ्ह में बुद्ध तथा भिक्खुओं संबंधी विभिन्न शंकाओं, धम्मनगर तथा धुतांगव्रतों का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही ओपम्मकथापञ्ह में विभिन्न उपमाओं के द्वारा सिद्ध किया है कि जिज्ञासु को अर्हत्व प्राप्ति के लिए नाना गुणों का अधिग्रहण किस प्रकार करना चाहिए?

मिलिन्दपञ्ह पालि बौद्ध साहित्य की महत्त्वपूर्ण कृति है। मिलिन्दपञ्ह की महत्ता का ज्ञान उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में प्रकाशित हुए विभिन्न संस्करणों तथा अनेक देशी-विदेशी भाषाओं में हुए अनुवाद से होता है। सर्वप्रथम 1880 में वी. ट्रेंकनर ने विलियम एण्ड नोर्गेट पब्लिकेशन, लंदन से मिलिन्दपञ्ह का पालि भाषा में रोमनलिपि का संस्करण प्रकाशित करवाया। 1896 में श्रीलंका के कोलंबो से एम.जे. रोद्रिगो तथा

अनोमदस्सी द्वारा सिंहली लिपि में, रंगून से 1915 में साय बे तथा 1917 में यू मॉन्ग काले द्वारा बर्मी लिपि में, 1900 में विलियम जे. गेड्ने द्वारा थाई लिपि में, 1929 में फनोम फेन द्वारा खमेर लिपि में, 1950 में खोन केअन द्वारा थाई लिपि में, 1971 में गेगनियस द्वारा वियतनामी लिपि में, ए.वी. परिबोक द्वारा मास्को से रूसी लिपि में मिलिन्दपञ्ह का प्रकाशन किया गया।

1890 में टी. डब्ल्यू. रीस डेविड्स ने 'सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट' से, आई. बी. हॉर्नर द्वारा 1963-64 में सेक्रेड बुक्स ऑफ द बुद्धिस्ट लंदन से तथा भिक्खु पेसला द्वारा 1991 में मलेशिया से इसका अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित करवाया गया। अन्य भाषाओं के अनुवादों में 1896 में तक-कु-सु द्वारा चीनी भाषा में, 1905 में एफ. ओट्टो श्रेडर तथा 1985 में नयनपोनिका थेर द्वारा जर्मन भाषा में, 1923 में लुईस फिनोट द्वारा फ्रेन्च में, 1923 में जी. केग्नोला द्वारा इटेलियन में और 1978 में क्योन्ग-सू-सो द्वारा कोरियन में किए गये अनुवाद प्रमुख हैं।

भारत में पालि मिलिन्दपञ्ह को सर्वप्रथम 1909 में विदुशेखर भट्टाचार्य ने बांग्ला लिपि में प्रकाशित करवाया। बम्बई विश्वविद्यालय की देवनागरी पालि टेक्स्ट सीरिज से 1940 में आर. डी. वाडेकर ने इसका प्रकाशन देवनागरी में करवाया। 1964 में जगन्नाथ पाठक ने वाराणसी से पालि और संस्कृत में, 1979 में स्वामी द्वारिकादास शास्त्री ने बौद्धभारती वाराणसी से पालि में तथा 2000 में विमलकीर्ति मेश्राम ने दिल्ली के राहुल प्रकाशन से देवनागरी लिपि में पालि- मिलिन्दपञ्ह का संपादन किया। हिन्दी में इसका पहला अनुवाद 1937 में भिक्षु जगदीश काश्यप ने किया जो नागपुर के 'सुगत प्रकाशन' से प्रकाशित हुआ। स्वामी द्वारिकादास शास्त्री ने 1996 में इसका हिन्दी अनुवाद किया तथा पालि के साथ में 'बौद्ध भारती' वाराणसी से प्रकाशित करवाया।

मिलिन्दपञ्ह धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रंथ है। इसमें बौद्ध धर्म एवं दर्शन संबंधी शंकाओं को उद्धृत करते हुए उनका समाधान किया गया है। प्रश्नोत्तर के क्रम में भारतीय संस्कृति के दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा कलात्मक पक्षों का निदर्शन होने से मिलिन्दपञ्ह का सांस्कृतिक महत्त्व दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन काल की भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म एवं दर्शन ने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा कर भारत को विश्व गुरु की पदवी पर आसीन करवाया। मिलिन्दपञ्ह में विदेशी यवन राजा मिनाण्डर द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकार करना इस संस्कृति की महान्ता को प्रदर्शित करता है। अतः मिलिन्दपञ्ह में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति के समीक्षात्मक अध्ययनार्थ प्रस्तुत विषय का चयन किया गया है।

मिलिन्दपञ्ह के दार्शनिक एवं धार्मिक पक्ष को ही अधिकतर सुधीजनों द्वारा शोध तथा विश्लेषण का विषय बनाया गया है।[4] मिलिन्दपञ्ह में प्रतिपादित भारतीय सांस्कृतिक पक्ष का विवेचन तथा उसका समीक्षात्मक विश्लेषण स्वतन्त्र रूप से अप्राप्त है। मिलिन्दपञ्ह में भारतीय संस्कृति का क्या स्वरूप है, उसकी किन किन विशेषताओं का इसमें विवेचन किया गया है, उनका पूर्वापर संबध है या नहीं इत्यादि की समीक्षा प्रकृत शोधकार्य की मौलिकता को प्रदर्शित करते हैं।

---

[4] प्रकृत विषय से संबंधित पूर्ववर्ती शोधकार्य निम्न हैं-

1. ***A Critical edition and Study of Milindapañha-aṭṭhakathā.***

यह पी.एच. डी. शोधकार्य यू. थुन्द्रा (U. Thundra)द्वारा दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रो. भिक्षु सत्यपाल (Prof. Bhikshu Satyapala) के निर्देशन में 2000 को जमा कराया था। इस शोधकार्य में मिलिन्दपञ्ह-अट्ठकथा के आलोचनात्मक संस्करण के साथ ही उसका दार्शनिक एवं सामान्य अध्ययन किया गया है।

2. Social Praxis of Buddhism (Dhammas) as depicted in the Milindapañha: A Comparative Study.

यह पी.एच. डी. शोधकार्य राज लक्ष्मी नायक द्वारा दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रो. भिक्षु सत्यपाल के निर्देशन में 2000 को कराया था। इस शोधकार्य में मिलिन्दपञ्ह में वर्णित बौद्ध धर्म के सामाजिक दर्शन यथा संघ का अध्ययन, बुद्ध के जीवन, उनकी शिक्षाओं में समतावादी विचारों का अध्ययन किया गया है।

3. An Analytical Study of the Buddhist Doctrines in the Milindpañho.

यह पी.एच. डी. शोधकार्य रेव.ले. हा (Rev. Le Ha)द्वारा दिल्ली विश्वविद्यालय में डॉ. सुभ्रा बरुआ पवगधि (Dr. Subhra Barua Pavagadhi) के निर्देशन में 2004 को कराया था। इस शोधकार्य में मिलिन्दपञ्हो में वर्णित बौद्ध नीतियों यथा अनत्ता, पुनर्जन्म, धम्म इत्यादि का अध्ययन किया गया है।

4. Milindapañha and Nāgasenabhikṣusūtra: A Comparative Study through Pāli and Chinese Sources.

यह पी.एच. डी. शोधकार्य वियतनाम के बौद्ध भिक्खु थिच मिन्ह चाउ (Bhikkhu Thich Minh Chau) द्वारा नव नालन्दा महाविहार से 1961 में संपूर्ण किया था। यह शोधकार्य कलकत्ता से 1964 में प्रकाशित करवाया गया। इस शोधकार्य में मिलिन्दपञ्हो के पालि एवं चीनी संस्करणों का पंक्तिबद्ध तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। चीनी भाषा में इस ग्रंथ को 'न-सियन्-पि-कियु-चिंग्' (नागसेनभिक्षु सूत्र) कहा गया है। चीनी भाषा में केवल तीन अध्याय बाहिरकथा, लक्खणपञ्हो एवं विमतिच्छेदन हैं।

5. The Historical Context of the Milindapañha: Graeco-Buddhist Contact in the Second Century B.C.

यह पी.एच. डी. शोधकार्य सी. रोबर्ट लिन्ने (C. Robert Linne) द्वारा नोर्दवेस्टर्न विश्वविद्यालय से 1976 को प्रकाशित हुआ। इस शोधकार्य में मिलिन्दपञ्ह के आधार पर यूनानी एवं बौद्ध संबंधों का दूसरी शताब्दी ईस्वी पूर्वके आलोक में ऐतिहासिक अध्ययन किया गया है।

6. The Moral System of Buddha according to the Milinda Pañha with Christian-Theological reflections.

यह पी.एच. डी. शोधकार्य लिली कुईन्टोस (Lily Quintos) द्वारा कार्डिन्गल बी इन्स्टिट्यूट, लोयला स्कूल ऑफ थियोलॉजी, एटेनिया दे मनीला विश्वविद्यालय (Cardingal Bea Institute, Loyola School of Theology, Atenea de Manila University) से 1977 को प्रकाशित कराया गया था। इस शोधकार्य में मिलिन्दपञ्ह में वर्णित बौद्ध नैतिक व्यवस्था का ईसाई-सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया गया है।

7. A Critical Study of the Milindapañha: A Critique of Buddhist Philosophy.

यह पी.एच. डी. शोधकार्य रविन्द्र नाथ बसु (Rabindra Nath Basu) द्वारा कलकत्ता से 1978 में प्रकाशित हुआ। इस शोधकार्य में मिलिन्दपञ्ह में वर्णित बौद्ध दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

8. मिलिन्दपञ्ह : एक अध्ययन

यह पी.एच. डी. शोधकार्य रेनु शुक्ला द्वारा रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली में प्रो. उदय प्रकाश अरोड़ा के निर्देशन में 1994 को किया गया था। यह शोधकार्य मिलिन्दपञ्ह में वर्णित ऐतिहासिक संदर्भों के अध्ययन को प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत लघु-शोधप्रबन्ध को निम्न चार अध्यायों में विभाजित किया गया है-

- प्रथम अध्याय – भारतीय संस्कृति : स्वरूप एवं प्रवाह।
- द्वितीय अध्याय– भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि ग्रंथ मिलिन्दपञ्ह।
- तृतीय अध्याय – मिलिन्दपञ्ह : भारतीय संस्कृति का विशेष विवेचन।
- चतुर्थ अध्याय – मिलिन्दपञ्ह प्रतिपादित भारतीय संस्कृति की समीक्षा।

प्रथम अध्याय में संस्कृति संबंधी विश्लेषण किया गया है। संस्कृति शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ निर्धारण, विभिन्न विद्वानों के संस्कृति विषयक मतों को उद्धृत करते हुए संस्कृति के स्वरूप निर्धारण संबंधी निष्कर्ष पर पहुँचा गया है। संस्कृति का सभ्यता से अन्तर्संबध का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है। भारतीय संस्कृति के स्वरूप संबंधी प्रमुख विशेषताओं आध्यात्मिकता, मानववाद, कर्मवाद, समन्वयवाद इत्यादि का विवरण दिया गया है। भारतीय संस्कृति के प्रवाह को जानने के लिए ऐतिहासिक तथा साहित्यिक सामग्री का प्रयोग किया गया है। इस प्रवाह को अग्रलिखित खण्डों में विवेचित किया गया है- उद्भव, आरंभिक काल, हड़प्पा काल, वैदिक वाङ्मय, पुनर्जागरण काल, राजतंत्र काल, मध्यकाल तथा आधुनिक काल।

द्वितीय अध्याय में पालि साहित्य के अन्तर्गत मिलिन्दपञ्ह के वैशिष्ट्य, मिलिन्दपञ्ह के लेखक तथा रचनाकाल को स्पष्ट किया गया है। मिलिन्दपञ्ह के रचनाकाल संबंधी विवाद को व्याख्यायित करते हुए एक निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए स्मिथ, रायचौधरी, रोमिला थापर सरीखे मान्य इतिहासकारों तथा टी. डब्ल्यू. रीज डेविड्स, गुआन्ग जिन्ग, भरतसिंह उपाध्याय इत्यादि पालि विद्वानों तथा मिलिन्द के प्राप्त सिक्कों का आधार बनाया गया है। इसी अध्याय में मिलिन्दपञ्ह की विषय वस्तु का विवेचन छह भागों में किया है। मिलिन्दपञ्ह भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि ग्रंथ किस प्रकार है, इसका विवेचन अध्याय के अंत में किया गया है।

तृतीय अध्याय में मिलिन्दपञ्ह में विद्यमान भारतीय संस्कृति का विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है। इस अध्याय को पाँच उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है। इन अध्यायों में भारतीय संस्कृति के दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पहलुओं पर अनुसंधानात्मक विश्लेषण तथा विवरण मिलिन्दपञ्ह ग्रंथ के आधार पर किया गया है।

अन्तिम अध्याय में मिलिन्दपञ्ह प्रतिपादित भारतीय संस्कृति की समीक्षा प्रस्तुत की गई है। समीक्षा प्रस्तुत करते समय उसे चार भागों में बाँटा गया है। प्रथम बिन्दु में दार्शनिक समीक्षा है, जिसमें मिलिन्दपञ्ह

प्रतिपादित बौद्ध दर्शन के प्रमुख सिद्धांतों यथा अनात्मवाद, पुनर्जन्म, कर्मवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद, निर्वाण, नाम-रूप तथा काल की समीक्षा की गई है। द्वितीय बिन्दु में मिलिन्दपञ्ह की धार्मिक समीक्षा तथा तृतीय बिन्दु में सामाजिक समीक्षा की गई है। चतुर्थ बिन्दु में मिलिन्दपञ्ह प्रतिपादित राजनीतिक तथा आर्थिक नीति का समीक्षात्मक अध्ययन किया है।

चतुर्थ अध्याय की समाप्ति पर शोध-प्रबन्ध के चारों अध्यायों का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। निष्कर्ष के बाद शोध-प्रबन्ध लेखन में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष जिन ग्रंथों का उपयोग किया गया है, उनको संदर्भ-ग्रंथ-सूची के रूप में दिया गया है।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में संदर्भ ग्रंथ के रूप में स्वामी द्वारिकादास शास्त्री द्वारा देवनागरी लिपि में संपादित (1979) मिलिन्दपञ्हपालि ग्रंथ को आधार बनाया गया है। प्रकृत शोधप्रबन्ध में रीज डेविड्स तथा भिक्खु पेसला के अंग्रेजी अनुवादों के साथ स्वामी द्वारिकादास शास्त्री तथा भिक्खु जगदीश काश्यप के हिन्दी अनुवादों का भी सहयोग ग्रंथ की भाषा को समझने के लिए यत्र-तत्र किया गया है। त्रिपिटकों से विभिन्न पालि सन्दर्भों को उद्धृत करने के लिए http://www.tipitaka.org तथा संस्कृत बौद्ध साहित्य के सन्दर्भों के लिए http://dsbc.uwest.edu वेबसाइट का उपयोग किया गया है।

****

प्रथम अध्याय

भारतीय संस्कृति : स्वरूप एवं प्रवाह

1.1. संस्कृति क्या है?

सम् उपसर्ग पूर्वक कृञ् धातु से भूषण अर्थ में 'सम्पर्युपेभ्यः करोतौ भूषणे'[5] सूत्र से सुट् का आगम होकर क्तिन् प्रत्यय लगाने से संस्कृति शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है – भूषणभूत सम्यक् कृति अथवा चेष्टा। इस अर्थ में संस्कृति शब्द से आशय उन चेष्टाओं से है जो मानव जीवन के समस्त क्षेत्रों में उन्नति को इंगित करती हैं। यद्यपि संस्कृत भाषा के उपलब्ध प्रमुख कोशग्रंथों यथा शब्दकल्पद्रुम तथा वाचस्पत्यम् में कहीं भी संस्कृति शब्द प्राप्त नहीं होता तथापि यजुर्वेद[6] और ऐतरेय ब्राह्मण[7] में भिन्न अर्थों में संस्कृति शब्द मिलता है। अतः एव संस्कृति शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिए उसके आंग्लभाषा के पर्याय शब्द कल्चर(Culture) के अर्थ का अन्वेषण अपरिहार्य है।

कल्चर शब्द लैटिन भाषा के कल्टुरा (Cultura) से बना है। कल्टुरा का अर्थ है 'कल्टीवेशन' अर्थात् कृषि कार्य। जिस प्रकार एक किसान अपने खेत में अच्छी जुताई, बुवाई करता है तथा अवांछित घास इत्यादि को साफ कर, मुख्य फसल से पृथक् करता है उसी प्रकार व्यक्ति अपनी जीवन-चर्या से आन्तरिक राग, द्वेष, लोभ, मोह और बुरे विचारों को दूर रखता है तथा अच्छे गुणों जैसे मैत्री, करुणा, सदाचरण का पालन करता है, तभी वह अच्छा जीवन जीता है और अच्छे आदर्शों को समाज में पनपाता है। साथ ही कल्याणकारी भाव विचारों को भी बढ़ाता है। इस प्रकार एक अच्छा व्यक्ति, अच्छे किसान के समान ही है और उसके विचार रूपी कार्य ही किसान की अच्छी खेती के समान हैं। व्यक्तियों के ये ही उच्च कल्याणकारी विचार, जीवन-शैली और कार्य जब समुदाय, समाज में उतरते हैं तभी वे संस्कृति का रूप धारण करते हैं।[8]

---

[5] *अष्टाध्यायी*, 6/1/137

[6] सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा। *य.वे.*, 7/1

[7] आत्म संस्कृतिर्वाव शिल्पानि एतैर्यजमान आत्मानं संस्कुरुते। *ऐतरेय ब्राह्मण*, 6/5/1

[8] *बौ.सं.वि.आ.*, प्राक्कथन

डॉ. जयचन्द्र विद्यालंकार ने आंग्लभाषा के कल्चर के समानार्थक कृष्टि शब्द का प्रयोग संस्कृति के लिए किया है। उनके अनुसार, "कोई मनुष्य समूह अपनी ऊँची-नीची, अच्छी-बुरी, सहज मानवीय प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर जो कुछ रचता है, उसे हम कृष्टि कहते हैं।[9]"

परवर्ती भारतीय विद्वानों ने कृष्टि के स्थान पर संस्कृति शब्द को ही श्रेष्ठ माना क्योंकि कृष्टि में अच्छी तथा श्रेष्ठ परम्पराओं के साथ-साथ निम्न तथा बुरी परम्पराएं भी सम्मिलित हो जाती हैं। जबकि संस्कृति शब्द संस्कार या परिष्कार का द्योतक है। संस्कृति शब्द को संस्कार से सम्बद्ध करते हुए वाचस्पति गैरोला कहते हैं कि संस्कार पद का अर्थ संस्कृत, उपयुक्त या सम्यक् बनाना है। किसी विकृत वस्तु को विशेष क्रियाओं द्वारा उत्तम बना देना ही उसका संस्कार है।[10] ऐसे संस्कार ही संस्कृति के जन्म और उत्कर्ष के कारण एवं साधन हैं।[11]

प्रभाव अथवा संस्कार को ही संस्कृति मानते हुए राहुल सांकृत्यायन का मत है कि एक पीढ़ी अपना संस्कार अथवा प्रभाव अपनी आगामी पीढ़ी पर छोड़ती है। संस्कृति अचल तथा स्थिर नहीं हो सकती। क्योंकि जिस प्रकार व्यक्ति के मानस पटल पर पुराने अनुभव स्मृति के रूप में अवशिष्ट रहते हैं, और समय पाने पर स्मृतियाँ भी धूमिल होती जाती हैं, वैसे ही पूर्वजों से चले आते हमारे संस्कार(संस्कृति) धूमिल होते हैं, रूपान्तरित होते हैं, तो भी प्रति-पीढ़ी के संस्कारों का प्रवाह कुछ अपनी विशेषता या व्यक्तित्व रखता है। काशी तक पहुँचने में गंगा का वही जल नहीं रह जाता, जो गंगोत्री में देखा जाता है, तो भी गंगा का अपना एक व्यक्तित्व है।[12]

मानवीय ज्ञान, विश्वास तथा व्यवहार का एकीकृत प्रतिमान संस्कृति है। भाषा, विचारों, विश्वासों, परम्पराओं, वर्जनाओं, संहिताओं, संस्थानों, उपकरणों, तकनीकों, कला-कार्यों, कर्मकाण्डों, समारोहों तथा अन्य संबंधित अवयवों के संदर्भ में संस्कृति को परिभाषित किया जाता है। जानने की मानवीय क्षमता तथा उत्तरवर्ती पीढ़ियों को ज्ञान संचारित करने के आधार पर संस्कृति के विकास को जाना जा सकता है।[13]

---

[9] विद्यालंकार, डॉ. जयचन्द्र, *भारतीय कृष्टि का क ख ग,* हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 1955, पृ.15

[10] गैरोला, वाचस्पति, *भारतीय संस्कृति और कला,* उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1973, पृ. 172

[11] वही

[12] सांकृत्यायन, महापंडित राहुल, *बौद्ध संस्कृति,* कौशल्य प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथम संस्करण, 1952, पुनर्मुद्रित, 2010, पृ. 3

[13] (Culture is) the integrated pattern of human knowledge, belief, and behavior. Culture, thus defined, consists of language, ideas, beliefs, customs, taboos, codes, institutions, tools, techniques, works of art, rituals, ceremonies, and other related components. The development of culture depends upon humen's capacity to learn and to transmit knowledge to succeeding generations. *The New Encyclopædia Britannica-vol.3(Micropædia),* Encyclopædia of Britannica Inc., The University of Chicago, USA, 15th Edition, 1993, p. 784

एडवर्ड बर्नेट टायलर ने उन सभी वस्तुओं के समूह को संस्कृति कहा है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नीतियाँ, कानून, परम्पराएँ तथा अन्य वे समस्त योग्यताएं सम्मिलित होती हैं जिन्हें मनुष्य किसी समाज का सदस्य होने के नाते अर्जित करता है।[14]

मैथ्यू अर्नोल्ड संस्कृति को पूर्णता का अध्ययन मानते हैं।[15] उनके अनुसार संस्कृति मानवीय संबंधों के प्रवाह के प्रति हमारी सावधानी को निर्देशित करती है और इसकी निरंतरता के लिए किसी व्यक्ति तथा उसके कर्मों के प्रति हमारे विश्वास में वृद्धि करती है।[16]

श्यामचरण दुबे संस्कृति को 'पर्यावरण का मानव निर्मित भाग' स्वीकार करते हैं। उनका मानना है कि संस्कृति मानसिक, नैतिक, भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजकीय, कलात्मक अथवा सारांश में मानव-जीवन के प्रत्येक पक्ष में सीखे हुए व्यवहार-प्रकारों की समग्रता ही संस्कृति है।[17]

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल संस्कृति को जीवन के नानाविध रूपों का समुदाय मानते हुए कहते हैं कि संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वाङ्गपूर्ण प्रकार है, हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। संस्कृति हवा में नहीं रहती, उसका मूर्तिमान रूप होता है।[18]

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने मानसिक जीवन के स्वरूप को संस्कृति कहा है।[19] संस्कृति से सर्वपल्ली राधाकृष्णन का आशय उस वस्तु से है जो स्वभाव, माधुर्य, मानसिक निरोगता एवं आत्मिक शक्ति को जन्म देती है।[20]

संस्कृति मनुष्य की उन क्रियाओं, व्यापारों और अभिव्यक्तियों का नाम है जिन्हें वह साध्य के रूप में देखता है। डॉ. शिवकुमार गुप्त संस्कृति का आशय जीवन क्रिया के उन क्षणों को कहते है जिन्हें मानव स्वयं महत्त्वपूर्ण समझता है।[21]

---

[14] (Culture) is that complex whole which includes knowledge, belief, art, morals, law, custom, and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society. Tylor, Edward Burnett, *Primitive Culture,* John Murray, Albemarle Street, London, 1871, p.1

[15] Culture is a study of perfection. Arnold, Matthew, *Culture and Anarchy : An Essay in Political and Social Criticism,* Smith, Elder and Co., 15, Waterloo place, London, 1869, p.8

[16] Culture directs our attention to the current in human affairs, and to its continual working, and will not let us rivet our faith upon any one man and his doings. Ibid, p. 43

[17] दुबे, श्यामचरण, *मानव और संस्कृति,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पुनर्मुद्रित 1998, पृ. 193

[18] अग्रवाल, डॉ. वासुदेव, *कल्पवृक्ष,* सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1953, पृ. 26

[19] Tagore, Rabindranath, *Towards Universal Man,* Asia Publishing House, New York, 1961, p. 209

[20] राधाकृष्णन, डॉ. सर्वपल्ली, *स्वतंत्रता और संस्कृति,* पृ. 33, उद्धृत- डॉ. बाबूराम, *हिन्दी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ. 92

[21] *भा.सं.मू.*, पृ. 194

डॉ. रामधारी सिंह दिनकर का कहना है, "प्रत्येक संस्कृति अपने आप में पूर्ण होती है। उसके सभी पहलू एक दूसरे पर अवलम्बित और सब के सब किसी एक केन्द्र से संलग्न होते हैं। संस्कृतियाँ जब बदलती हैं तब खान-पान, रहन-सहन, पोशाक और परिच्छेद भले ही बदल जाएं किन्तु, मन उनका नहीं बदलता, सोचने की पद्धति उनकी नहीं बदलती और जीवन को देखनेवाला दृष्टिकोण उनका एक ही रहता है।"[22] उनके अनुसार संस्कृति एक ऐसा गुण है जो हमारे जीवन में छाया हुआ है। यह एक आत्मिक गुण है जो मनुष्य के स्वभाव में उसी तरह व्याप्त है, जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता, युग-युगान्तर में होता है।[23]

इस प्रकार संस्कृति की विविध परिभाषाएँ संभव हो सकती हैं, क्योंकि वह (संस्कृति) विकास का एक रूप नहीं, विविध रूपों की एक ऐसी समन्वयात्मक सृष्टि है, जिसमें एक रूप स्वतः पूर्ण होकर भी अपनी सार्थकता के लिए दूसरे का सापेक्ष्य है।[24] संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र रूप का नाम है। संस्कृति के माध्यम से ही मानव जीवन के क्रिया-कलाप, आहार-व्यवहार, चिंतन-मनन, आचार-विचार, खान-पान, नृत्य- गायन, साहित्य-कला, धर्म-दर्शन इत्यादि विशिष्ट क्रियाओं का संचालन होता है। किसी देश की आध्यात्मिक, सामाजिक और मानसिक विभूति को उस देश की संस्कृति कहते हैं। इस संस्कृति का सदियों तक विकास होता रहता है और उसके बाद वह निश्चित रूप धारण करती है।[25]

1.2. संस्कृति एवं सभ्यता में अन्तर

संस्कृति का बाह्य पक्ष सभ्यता कहलाता है। सभ्यता शब्द की व्युत्पत्ति सभा शब्द से क्रमशः यत्, तल् एवं टाप् प्रत्ययों के योग से हुई है जिसका आशय है- सभा में बैठने की योग्यता अथवा समाज में रहने की योग्यता। व्यक्तियों के सामाजिक नियमों और व्यवहारों को जानने, उनके पालन करने तथा शिष्टाचारयुक्त तरीके से समाज में तदनुरूप प्रयोग करने को ही सभ्यता कहते हैं। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के शब्दों में सभ्यता एक वरदान है। वह मानव व प्रकृति, कला के कौशल के ज्ञान का संचित भंडार है। वह एक नैतिक संहिता है, जो अपने साथियों के प्रति मानव के आचरण को विनियमित करती है। वह एक सामाजिक संहिता है, जो प्रत्येक

---

[22] *सं.चा.अ.*, पृ. 635

[23] टण्डन, डॉ. किरण, *भारतीय संस्कृति,* ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2006, पृ. 2

[24] वर्मा, महादेवी, *क्षणदा,* सं. लौठा, फतेहसिंह, भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1956, पृ. 21

[25] कृष्णचन्द्र, *भारतीय संस्कृति,* सूर्यभारती प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृ. 9

व्यक्ति के द्वारा पालन किए जाने वाले नियमों-विनियमों की व्यवस्था करती है। वह एक नागरिक संहिता है, जो शासक तथा शासित के अधिकारों तथा कर्तव्यों का प्रावधान करती है।[26]

बाबू गुलाबराय सभ्यता का आधार संस्कृति में निहित मानते हैं। उनके अनुसार जिस सभ्यता का आधार संस्कृति में नहीं, वह सभ्यता, सभ्यता नहीं। संस्कृति की आत्मा के बिना सभ्यता का शरीर शव की भांति निष्प्राण है।[27] संस्कृति एवं सभ्यता एक दूसरे पर आश्रित रहते हुए भी अपना विशिष्ट एवं मौलिक अर्थ रखते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मानना है कि सभ्यता का आंतरिक प्रभाव संस्कृति है। सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है और संस्कृति व्यक्ति के आंतरिक विकास का।[28]

सभ्यता का मूल्यांकन आसान है क्योंकि इसका संबंध भौतिक वस्तुओं की उपयोगिता से होता है। एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति से तुलना करना कठिन कार्य है क्योंकि प्रत्येक संस्कृति अपने युग तथा परिस्थितियों की देन है। सभ्यता निरन्तर प्रगतिशील प्रक्रिया है जो बिना प्रयत्न के ही मानवीय आवश्यकताओं के अनुकूल सदैव आगे बढ़ती रहती है। बैलगाड़ियों से आधुनिक लोकयान, रेलगाड़ियों तथा मेट्रो इत्यादि के विस्तार, पाषाण-मृद्भाण्डों तथा अस्त्र-शस्त्रों से आधुनिक कलात्मक उपकरणों तथा मिसाइल एवं परमाणु बम जैसे आयुधों के निर्माण प्रभृति उदाहरण सभ्यता के विकास को प्रदर्शित करते हैं। किन्तु संस्कृति स्वतः गतिमान नहीं है। संस्कृति वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से विचार अथवा अनुभूति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संक्रमित होते है।

सभ्यता को एक समाज दूसरे समाज से आसानी से ग्रहण कर लेता है। विविध तकनीक, भौतिक सुख-सुविधाएं तथा विलासिता की सामग्री इत्यादि को आसानी से एक समाज अन्य से ग्रहण कर लेता है। जबकि एक समाज की संस्कृति को अन्य मुश्किल से स्वीकार करता है। एक समाज के रीति रिवाजों, धर्म, दर्शन, कला, मूल्यों, विचारों तथा विश्वासों को यदि कोई समाज स्वीकार करता है तो उनमें परिवर्तन आ जाता है। जैसे 20वीं सदी में डॉ. अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म तथा संस्कृति को एक नये रूप में स्वीकार किया जो तार्किक तथा सहज होने के साथ-साथ बौद्ध संस्कृति की नवीन व्याख्या लिए हुए था।

संस्कृति हमेशा साध्य होती है जिसे प्राप्त करने का साधन सभ्यता होती है। संस्कृति अमूर्त रूप होती है, उसे मूर्त रूप सभ्यता प्रदान करती है। सभ्यता शारीरिक सुख प्रदान करती है जबकि संस्कृति मानसिक तथा आध्यात्मिक सुख प्रदान करती है।

---

[26] *अम्बेडकर वाङ्मय (भाग-7)*, पृ. 64

[27] गुलाबराय, *भारतीय संस्कृति की रूपरेखा,* ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2008, पृ. 2

[28] द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, *विचार और वितर्क,* सुषमा साहित्य मन्दिर, जबलपुर, प्रथम संस्करण, सं. 2002 वि., पृ. 181

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि सभ्यता संस्कृति की वाहक है। यह सांस्कृतिक क्रियाओं को शक्ति प्रदान करती है। संस्कृति सभ्यता की दिशा को प्रभावित करती है। एक संस्थागत बाह्य तत्त्वों का समूह सभ्यता है तथा उसका आधार संस्कृति है। संस्कृति तथा सभ्यता के मध्य अंतराल के होते हुए भी दोनों परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। संस्कृति पुष्प-गंध की भांति है जबकि सभ्यता पुष्प है।

1.3. भारतीय संस्कृति का स्वरूप

समुद्र के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में जो स्थित है वह भारत देश है तथा इस भू-भाग पर निवास करने वाली संतानें भारती हैं।[29] भारतीय संतानों की विविधताओं ने भारत देश में एक वैविध्यपूर्ण अद्वितीय संस्कृति की संरचना को जन्म दिया है। भौगोलिक बनावट, जलवायु, जनसंख्या, प्रजाति, धर्म, इतिहास, राजनीति, भाषा, संस्कृति एवं समाज व्यवस्था की दृष्टि से भारत में अनेक विषमताओं के विद्यमान होते हुए भी यहाँ के लोगों में परस्पर एकता के दर्शन होते हैं।

भारतीय संस्कृति का सीधा अर्थ भारत से सम्बन्ध रखने वाली संस्कृति से है। जब वैश्विक धरातल पर विभिन्न मानव सभ्यताएं जन्म ले रहीं थी तब भारत देश में एक उच्च स्तरीय आदर्शों से लिपटी हुई संस्कृति अपना परचम लहरा रही थी। वैदिक युग से पूर्व ही यह भारतीय संस्कृति विश्व के साथ व्यापार-वाणिज्य से जुड़ी तथा परवर्ती काल में इसने धम्मप्रचार के माध्यम से महाकरुणा तथा 'अत्त दीपो भव' के सिद्धांतो को विश्व विश्रुत किया।

भारतीय संस्कृति ने अध्यात्म को जीवन केन्द्र में और आध्यात्मिक ज्ञान को जीवन के सर्वोपरि मूल्य के रूप में स्थापित किया। भारतीय संस्कृति के केन्द्र में मनुष्य मात्र न होकर एक वैश्विक दृष्टि है।[30] भारतीय संस्कृति की आधारभूत विशेषता अध्यात्म की स्वीकरोक्ति है। राधाकृष्णन का मानना है कि आध्यात्मिक अनुभव भारत के सम्पन्न सांस्कृतिक इतिहास की आधारभित्ति है।... भारत में जीवन का एकमात्र ध्येय ब्रह्म के नित्य सत्ता स्वरूप को जानना है।[31] हजारों-लाखों वर्षों के पुरुषार्थ से जिसे भारतीय जनता ने अर्जित किया है, वह भारतीय संस्कृति है। भारतीय संस्कृति मानवीय क्रिया कलाप का उत्पाद है।

भारतीय संस्कृति की अध्यात्म प्रधानता पर जगन्नाथ उपाध्याय का मानना है कि अध्यात्मतत्त्व नीति और धर्म की सीमा से अतीत और उत्कृष्ट होता है। अध्यात्म का आदि, मध्य और अन्त मनुष्य है। जिस परम्परा में

---

[29] उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रिश्चैव दक्षिणम्। वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥ *विष्णु पुराण*, 2/3/1

[30] शर्मा, अमित कुमार, *भारतीय संस्कृति का स्वरूप*, कौटिल्य प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण., 2006, पृ. 13

[31] *भा.द.ए.*, पृ. 34

मनुष्य का महत्त्व जितना अधिक माना जाएगा, उसी के अनुपात में अध्यात्म का विकास होगा। .... बुद्ध ने पहली बार इस तथ्य को स्वीकार किया कि मानव सृष्टि का केन्द्रबिन्दु है। अपने शुभ-अशुभ कर्मों द्वारा यही अपना और अपने संसार का विधाता है। वह स्वयं में आत्म शरण या अनन्य शरण है, मनुष्य जैसे देव, ईश्वर, महेश्वरादि से स्वतंत्र है, वैसे ही परम्परागत शास्त्र एवं धर्मों से भी बँधा नहीं है।[32] बुद्ध ने तो भिक्खुओं को उनके (बुद्ध के) स्वयं के भी विचारों को परीक्षण करके ग्रहण करने की सलाह दी है।[33] सत्यनिष्ठा, बुद्धिवाद और उसका जीवन में प्रयोग– ये ही आध्यात्मिक आस्तिकता के सुबोध लक्षण हैं। अध्यात्म के निकट विरोधी ईश्वर और आत्मा की मान्यता है। ये दोनों व्यक्ति या समाज की वास्तविक समस्या नहीं है किन्तु इनकी मान्यता मनुष्य को यथार्थ से हटाती रहती है और आध्यात्मिक विकास में अकारण बाधा पहुँचाती है।[34]

भारतीय संस्कृति यद्यपि आध्यात्मिक है किन्तु इसका आशय यह नहीं है कि इसने भौतिकता को नकार दिया है। प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद की ऋचाओं में भी भौतिकतावाद के सूत्र खोजे जा सकते हैं। अनेक प्रमाण यह बतलाते हैं कि बौद्धमत से पूर्व भारत में विशुद्ध भौतिकतावाद की घोषणा करने वाले लोग थे। इस मत के अनुयायी गुप्तरूप से आजकल के समान थे।[35] भारतीय दर्शन सम्प्रदायों में चार्वाक दर्शन भौतिकतावादी दर्शन है। उनका मानना है कि न तो स्वर्ग है, न अपवर्ग अर्थात् मोक्ष है और न परलोक में रहने वाली आत्मा। वर्ण तथा आश्रम की क्रियाएं भी फल देने वाली नहीं हैं। अग्निहोत्र, ऋक्, साम, यजुस् ये तीनों वेद, तीन दण्ड धारण करना और भस्म लगाना इत्यादि ब्रह्मा द्वारा निर्मित बुद्धि तथा पुरुषार्थ से रहित लोगों की आजीविका के साधन हैं।[36] ज्योतिष्टोम इत्यादि यज्ञों तथा श्राद्ध का विरोध करते हुए चार्वाक दर्शन का मानना है कि इस संसार में मानव को आजीवन सुखपूर्वक जीना चाहिए। धनाभाव में ऋण लेकर घी को पीना चाहिए क्योंकि मृत्यु के पश्चात् यह शरीर भस्म हो जाएगा।[37] ये आत्मा को शरीर से पृथक् नहीं मानते हैं। उनका तर्क है कि यदि आत्मा इस देह को छोड़कर दूसरे लोक में जाता है तब बन्धुओं के स्नेह से व्याकुल

---

[32] *भा.स.बौ.दे.*, पृ. 14

[33] परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्यं मद्वचो न गौरवात्। द्विवेदी, प्रो. व्रजवल्लभ, *भारतीय संस्कृति के नये आयाम*, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1997, पृ. 173

[34] *भा.स.बौ.दे.*, पृ. 14

[35] Several vestiges show that even in pre-Buddhistic India proclaimers of purely materialistic doctrines had ever afterwards, as they have to-day, numerous Secret followers. Garbe, Richard, *The Philosophy of Ancient India,* The open court publishing co., Chicago, 1897, p. 25

[36] न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः। नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः।
अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुणठनम्। बुद्धिपौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता॥ *स.द.सं.*, पृ. 20

[37] यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः? वही, पृ. 21

होकर फिर इस लोक में वापिस क्यों नहीं आता?[38] जैसे किण्डवादि द्रव्यों के मिलने से मदशक्ति की उत्पत्ति होती है वैसे ही चार्वाक दर्शन पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु इन चार भूतों से ही चैतन्य की उत्पत्ति स्वीकार करता है।[39]

आध्यात्मिकता तथा भौतिकतावाद के बीच भारतीय संस्कृति मानववाद की समर्थक रही है। मानववाद मनुष्य की स्वतंत्रता को प्राथमिकता देता है। वह मनुष्य के भाग्य निर्माण के लिए किसी मानवेतर सत्ता के सहारे न बैठ, मानव को ही सारे क्रिया- कलापों का केन्द्र बिन्दु मानता है।[40] भारतीय जीवन में मानववाद की परम्परा अति प्राचीन है। व्यक्ति को सात्त्विक गुणों के विकास तथा आध्यात्मिक जीवन की दिशा में प्रेरित करने के लिए मानववाद को स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में जहाँ मानव की उत्पत्ति विराट पुरुष अर्थात् परमेश्वर से बताकर मानव को ईश्वर के अधीन कर दिया गया है वहीं 'अत्ता हि अत्तनो नाथो'[41] के उद्घोष के साथ गौतम बुद्ध ने मानव को स्वयं का स्वामी बनने की शिक्षा देकर मानवीय गरिमायुक्त धम्म की नीव भारत की धरा पर रखी। भगवान् बुद्ध ने करुणा के वशीभूत जगत् में व्याप्त विभिन्न जरा मरणादि दुःखों[42] के नाश का मार्ग[43] खोजकर, मानव जीवन के लिए उसका उपदेश दिया।

भारतीय संस्कृति कर्म तथा पुनर्जन्म को स्वीकार करती है। ऋग्वेद के ऋत-सिद्धांत से कर्म तथा नैतिक नियमों के बंधन के बारे में पता चलता है। डॉ. राधाकृष्णन का मानना है कि कर्म सिद्धांत के अनुसार नैतिक जगत् में अनिश्चित एवं मनमाना कुछ नहीं है। हम वही काटते हैं जो बोते हैं। पुण्य के बीज से पुण्य की खेती फलेगी, पाप का फल भी पाप होगा।[44] कोई भी व्यक्ति किसी क्षणमात्र भी बिना कर्म के नहीं रह सकता क्योंकि समस्त जनसमुदाय प्रकृतिजनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने को बाध्य होता है।[45] कर्म-फल के आधार पर पुनर्जन्म का निर्धारण होता है। पुनर्जन्म किसका होता है? इस प्रश्न का उत्तर आस्तिक दर्शन

---

[38] यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्गतः। कस्माद् भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुल? *स.द.सं.*, पृ. 21

[39] अत्र चत्वारि भूतानि भूमिर्वायनलानिलाः। चतुर्भ्यः खलु भूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते॥
किण्वादिभ्यः समेतेभ्यो द्रव्येभ्यो मदशक्तिवत्। वही, पृ. 9

[40] जैन, डॉ. हुकम चन्द जैन एवं माथुर, डॉ. कृष्ण चन्द्र माथुर, *आधुनिक विश्व इतिहास,* जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, पंचदश संस्करण, 2010, पृ. 69

[41] *ध.प.*, 160

[42] भिक्खवे, दुक्खं अरियसच्चं? जातिपि दुक्खा, जरापि दुक्खा, मरणम्पि दुक्खं, सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासापि दुक्खा अप्पियेहि सम्पयोगोपि दुक्खो, पियेहि विप्पयोगोपि दुक्खो, यम्पिच्छं न लभति तम्पि दुक्खं, सङ्खित्तेन पञ्चुपादानक्खन्धापि दुक्खा। *दी.नि.,* 2/9

[43] भिक्खवे, दुक्खनिरोधं अरियसच्चं? यो तस्सायेव तण्हाय असेसविरागनिरोधो चागो पटिनिस्सग्गो मुत्ति अनालयो। वही, 2/9.

[44] *भा.द.ए.*, पृ. 2012

[45] *श्री.गी.*, 3/5

आत्मा के सिद्धांत की स्वीकरोक्ति से देते हैं। यह आत्मा जीर्ण शरीर को त्यागकर नवीन शरीर वैसे ही ग्रहण करती है जैसे मानव पुराने वस्त्रों को बदलकर नवीन ग्रहण करता है।[46] यह अजन्मा, नित्य, सनातन तथा पुरातन आत्मा किसी काल में न तो जन्म लेती है और न ही मरती है, न यह उत्पन्न होकर पुनः उत्पन्न होती है। तथा शरीर की मृत्यु होने पर भी आत्मा की मृत्यु नहीं होती।[47] तब कर्मफल का सिद्धांत किस पर लागू होगा? इसका समाधान करने के लिए सूक्ष्म शरीर को माना गया है। शुद्ध आत्मा भोगों को करने में असमर्थ होता है फलस्वरूप आत्मा के प्रयोजन की पूर्ति करने वाला, आत्मा तथा माता-पिता के रज-वीर्य से बनने वाले स्थूल शरीर[48] के मध्य योजक कड़ी का कार्य करने वाला सूक्ष्म शरीर होता है। वेदान्त दर्शन में पञ्चकर्मेन्द्रियों, पञ्चज्ञानेन्द्रियों, पञ्च वायु, मन एवं बुद्धि इन सभी सत्रह तत्वों के योग से[49] जबकि सांख्य में 13 करण (पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, मनस्, बुद्धि तथा अहंकार) और पाँच तन्मात्राओं के समूह से[50] सूक्ष्म शरीर का निर्माण होता है।

भारतीय संस्कृति की बौद्ध धारा आत्मा में विश्वास नहीं करती। उनका मानना है कि आत्मा का सिद्धांत सम्यक् दृष्टि के विकास में बाधक होता है तथा इससे व्यक्ति विशेष के जीवन पर जन्म से मृत्युपर्यन्त पुरोहितशाही का अधिकार हो जाता है। आत्मा के मानने मात्र से दुःखों से छुटकारा प्राप्त नहीं होता। आत्मा के अस्तित्व के स्थान पर बुद्ध का स्वयं का नामरूप सिद्धांत था। जितनी स्थूल चीजें हैं सभी रूप हैं और जितने सूक्ष्म मानसिक धर्म हैं सभी नाम हैं।[51] प्रत्येक प्राणी कुछ भौतिक तथा मानसिक स्कन्धों से बना है। इनमें से पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु- इन चार भौतिक तत्त्वों का परिणाम यह रूप है जिसे शरीर कहते हैं। नाम स्कन्ध का निर्माण विज्ञान अथवा चेतना (चार तत्त्वों का सम्मिश्रण), वेदना (छः इन्द्रियाँ तथा उनके विषय से उत्पन्न होने वाली अनुभूति), संज्ञा तथा संस्कार इन चारों के संघात से होता है। जन्म के साथ विज्ञान का जन्म होता है तथा मरण के साथ इसका विनाश। भगवान् ने इसे इस रूप में कहा है कि जहाँ भी शरीर या रूपकाय है, वहाँ साथ- साथ नामकाय भी रहता है। डॉ. अम्बेड़कर ने एक उपमा के द्वारा इसे समझाते हुए कहा है कि जैसे विद्युत क्षेत्र के साथ साथ आकर्षण क्षेत्र भी बना रहता है वैसे ही शरीर के द्वारा

---

[46] वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ *श्री.गी.*, 2/22

[47] न जायते म्रियते वा न कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ वही, 2/20

[48] मातृपितृजं स्थूलं प्रायश इतरन्न तथा। *सांख्यसूत्र*, 3/7

[49] सूक्ष्मशरीराणि सप्तदशावयवानि लिङ्गशरीराणि। अवयवास्तु ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं बुद्धिमनसी कर्मेन्द्रियपञ्चकं वायुपञ्चकं चेति। *वेदान्तसार,* 61-62, पृ. 45

[50] झा, डॉ. रामनाथ, *सांख्यदर्शन*, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृ. 48

[51] ओळारिकं- एतं रूपं। ये तत्थ सुखुमा चित्तचेतसिका धम्मा- एतं नामं ति। *मि.प.*, 2/2/8, पृ. 38

प्रेरित चेतना अथवा विज्ञान होता है।[52] एक प्राणी की जितनी भी क्रियाएं हैं वे विज्ञान के द्वारा पूर्ण होती हैं।[53]

बौद्धेतर सम्प्रदायों ने कर्म सिद्धांत को पूर्वजन्म के साथ संश्लिष्ट किया है। उनका मानना है कि यदि आदमी का जन्म दरिद्र परिवार में होता है तो यह उसके पूर्वजन्मों के बुरे कर्मों का प्रभाव है। यदि समृद्ध तथा धनवान व्यक्ति के घर जन्म लिया है तो यह उसके पूर्वजन्म के अच्छे कर्मों का फल है। यदि कर्म की यह व्याख्या स्वीकार कर ली जाय तो मानव प्रयास के लिए कहीं कुछ गुंजाइश नहीं रह जाती।[54] डॉ. अम्बेडकर इस प्रकार के कर्मवाद के सिद्धांत को वंश परम्परा से प्राप्त कर्मफल मानते हैं।[55] बुद्ध के कर्म सिद्धांत का सम्बन्ध मात्र वर्तमान जीवन के कर्म से है। राहुल सांकृत्यायन का मत है कि आवागमन, धनी-निर्धन का भेद उसी कर्म के कारण है, जिसके कर्त्ता कभी तुम खुद थे, यद्यपि आज वह कर्म तुम्हारे लिए हाथ से निकला तीर है।[56] भगवान् बुद्ध का मानना था कि जीवन का सातत्य कुशल तथा अकुशल कर्मों के संस्कारों की एक श्रृंखला है जिनका कारण अविद्या है। अविद्या का अर्थ है अनात्म को आत्म समझना, दुःखमय वस्तु को सुखमय समझना इत्यादि।

भारतीय संस्कृति सदाचारयुक्त धर्म का आचरण करने पर बल देती है तथा बुरा आचरण करने का निषेध करती है। मानव को सांसारिक विषयों व कामनाओं से हटाकर स्वान्वेषण करने पर बल देती है। एक बार आत्म-मंथन करने वाला व्यक्ति कभी कदाचार से ग्रसित नहीं हो सकता। मानव को उसी प्रकार से भलीभांति शील की रक्षा करनी चाहिए जिस प्रकार टिटहरी अपने अण्डे की, चमरी गाय अपनी पूंछ की, माता अपने पुत्र की, काना व्यक्ति अपनी इकलौती आँख की रक्षा करता है।[57] अंगुत्तरनिकाय में कहा गया है कि चरित्र के दुश्चरित्र होने पर व्यक्ति को पांच प्रकार के दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं। वह अपने आप ही स्वयं को दोष देता

---

[52] *भ.बु.ध.*, पृ. 206

[53] वही, पृ. 207

[54] वही, पृ. 269

[55] वही, पृ. 269

[56] *द.दि.*, पृ. 415

[57] किकीव अण्डं चमरीव वालधिं, पियंव पुत्तं नयनंव एककं। तथेव सीलं अनुरक्खमानका, सुपेसला होथ सदा सगारवा॥ *वि.म.*, 1/19

है। जो भी सुनता है, सुनकर विद्वान् निन्दा करते हैं। बदनामी होती है। बेखबरी की हालत में मृत्यु को प्राप्त होता है। शरीर छूटने पर, मरने के अनन्तर दुर्गति को प्राप्त होता है तथा नरक में जन्म ग्रहण करता है।[58]

अहिंसा भारतीय संस्कृति का आधार स्तम्भ है। अहिंसा की भावना मानव को मनसा, वाचा तथा कर्मणा प्राणीमात्र का संरक्षण करते हुए छोटे से छोटे प्राणी से लेकर मानव तक की हत्या करने से विरत करती है। प्रत्येक मानव को न किसी का वध करना चाहिए और न ही कराना चाहिए। उसे प्रत्येक प्राणी की हिंसा करने से बचना चाहिए।[59]

भारतीय संस्कृति दान की महत्ता पर बल देती है। पालि साहित्य में हमें बिम्बिसार, आम्रपाली, अनाथपिण्डक, जीवक, बिशाखा इत्यादि के दान का ज्ञान होता है। प्राचीन काल में राजपरिवार तथा सामान्य लोग विहारों, मन्दिरों को भी दान देते थे जो समाजकल्याण के लिए ही खर्च किया जाता था। सुत्त पिटक में कहा गया है कि जो अन्न का दान देता है वह बल का दान देता है। जो वस्त्र का दान देता है वह रंग का दान देता है। जो वाहन का दान देता है, वह सुख का दान देता है। जो दीप का दान देता है वह चक्षु का दान देता है। जो निवास स्थान का दान देता है वह सब कुछ दान देता है। परन्तु जो धम्म का दान देता है वह अमृत अर्थात् निर्वाण का दान देता है।[60] सामाजिक स्वास्थ्य के लिए मानव का स्वार्थ त्यागी और आत्मपरित्यागी होना अत्यन्त आवश्यक है।

विविधता में एकता भारतीय संस्कृति की अद्वितीय विशेषता है। भारत देश यद्यपि खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, भाषा तथा प्राकृतिक रूप से विविधता पूर्ण है फिर भी भारतीयों के मध्य एकता के दर्शन होते हैं। भारत की धरती पर आर्य, अनार्य, द्राविड़, चीनी, शक, हूण, पठान, मुगल इत्यादि बहुत से लोग आए तथा एक शरीर की भांति मिल गए।[61] भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी भावना के कारण ही प्रकृत वर्गों तथा धर्मों का सम्मिश्रण संभव हो सका। भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी विशेषता पर सी.ई.एम. जोड ने लिखा है कि "मानव जाति को भारतवासियों ने जो सबसे बड़ी चीज वरदान के रूप में दी है, वह यह है कि

---

[58] पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा दुच्चरिते। कतमे पञ्च? अत्तापि अत्तानं उपवदति; अनुविच्च विञ्ञू गरहन्ति; पापको कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति; सम्मूळ्हो कालं करोति; कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा दुच्चरिते। *अंगु.नि.*, 5/5

[59] पाणं न हने न च घातयेय्य, न चानुजञ्ञा हनतं परेसं। सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं, ये थावरा ये च तसा सन्ति लोके॥ *सु.नि.*, 2/14

[60] अन्नदो बलदो होति, वत्थदो होति वण्णदो। यानदो सुखदो होति, दीपदो होति चक्खुदो॥
सो च सब्बददो होति, यो ददाति उपस्सयं। अमतं ददो च सो होति, यो धम्ममनुसासती॥ *सं.नि.*,1/42

[61] हेथाय आर्य, हेथा अनार्य, हेथाय द्राविड़-चीन, शक-हूण-दल, पाठान-मोगल एक देहे होलो लीन। *सं.चा.अ.*, पृ. VII

भारतवासी हमेशा ही अनेक जातियों के लोगों और अनेक प्रकार के विचारों के बीच समन्वय करने को तैयार रहे हैं। और सभी प्रकार की विविधताओं के बीच एकता कायम करने की उनकी लियाकत और ताकत लाजवाब रही है।[62]" सम्राट अशोक के अभिलेखों की सर्वत्र विद्यमानता से पता चलता है कि पालि भाषा में लिखित ये अभिलेख भारत की भौगोलिक एकता का परिचय करवाते हैं। पालि तथा संस्कृत भाषा का प्रभाव भारत की समस्त भाषाओं पर परिलक्षित होता है।

भारतीय संस्कृति सामान्योन्मुखी है। इसमें विश्वकल्याण की भावना निहित है। भारतीय चिंतन है कि जगत् में कोई भी व्यक्ति दुःखी न हो, न पापी हो, न रोगी हो, न हीन हो, न तिरस्कृत हो और न ही दुष्टचित्त हो।[63] भारतीय संस्कृति संसार के समस्त प्राणियों के सुख तथा कुशलक्षेम की प्रार्थना करती है। जगत् के सभी जन मंगलदर्शी हो तथा किसी को दुःख न पहुँचाए।[64] इस प्रकार का व्यवहार करने वाले व्यक्ति को भारतीय संस्कृति "सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।[65]" का व्यवहार सिखाती है।

1.4. भारतीय संस्कृति का प्रवाह

भारतीय संस्कृति का विकास एक सतत प्रक्रिया के प्रवाहस्वरूप हुआ है। भारतीय संस्कृति का प्रवाह मानवीय अतीत के पृष्ठों की एक लम्बी पुस्तक है जिसमें मानव पाषाण युग, लौह युग, धातु युग तथा कृषि युग से विचरण करते हुए विज्ञान युग में पहुँचा है। भारत में संस्कृति की प्रगति अर्थात् प्रवाह से आशय डॉ. राधाकृष्णन ने पुरातनकाल के सब अच्छे अंशों को साथ लेकर उनमें कुछ और नई सामग्री जोड़ देने से माना है।[66]

1.4.1. भारतीय संस्कृति का उद्भव

भारतीय संस्कृति के प्रवाह का उद्भव कब हुआ होगा? इस प्रश्न का उत्तर हजारों-लाखों वर्ष पुराने अतीत के उन खण्डहरों, शिलाप्रस्तरों, गुफाओं तथा नदी-झरनों के किनारों में तलाशना होगा जहाँ कभी चार पैर वाले वानर से आदिमानव ने दो पैरों पर खड़े होने का प्रयत्न कर, दो हाथों से निर्माण का कार्य करना प्रारंभ किया होगा। उसने अपनी मेधा से तर्क-वितर्क को विकसित करते हुए विभिन्न जिज्ञासाओं तथा आवश्यकताओं के

---

[62] *सं.चा.अ.*, पृ. 82

[63] मा कश्चिद् दुःखितः सत्त्वो मा पापी मा च रोगितः। मा हीनः परिभूतो वा मा भूत् कश्चिच्च दुर्मनाः॥*बोधिचर्यावतार*, 10/41

[64] सब्बे सत्ता सुखी होन्तु, सब्बे होन्तु च खेमिनो। सब्बे भद्राणि पस्सन्तु, मा कञ्चि दुक्खमागमा॥ *धम्मवाणी*, पृ. 59

[65] *ऋ.वे.,* 10/191/2-4

[66] डॉ. राधाकृष्णन, *भारतीय दर्शन- भाग 1,* राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1973, पृ. 46

फलस्वरूप अपने परिवेश की नीव रखी होगी। दो पत्थरों की रगड़ से आग के पैदा होने पर हिंसक पशुओं से रक्षा के साथ-साथ इसका उपयोग उसने मांस तथा अन्य खाद्य पदार्थों को पकाने के लिए किया होगा। चाक (पहिया) के आविष्कार से उसने यातायात तथा मिट्टी के बर्तनों को विकसित कर अपने जीवन को सहज बनाया होगा। कृषि के महत्त्वपूर्ण आविष्कार ने उसे स्थायी आवास बनाने पर शनैः शनैः विवश किया होगा। अग्नि, चाक तथा कृषि के आविष्कार से आदिमानवों में विवाह तथा सम्पत्ति नामक सामाजिक दायित्त्वों का जन्म हुआ होगा, जिसने परवर्ती काल में परिवार नामक संस्था को जन्म दिया होगा।

प्रारंभिक स्तर पर प्रतीकों तथा अस्पष्ट भाषा में व्यवहार से उसने एक सर्वसुलभ भाषा को जन्म दिया होगा, जिसके माध्यम से उसने ज्ञान तथा विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति की होगी। इस तरह आदिमानव के द्वारा की गई भोजन, आवास, परिवार तथा भाषा के विकास संबंधी व्यवहार ने भारतीय संस्कृति की आधारशिला का निर्माण किया होगा।

1.4.2. आरंभिक काल में भारतीय संस्कृति

भारतीय इतिहास में मानवीय सभ्यता तथा संस्कृति के प्रारंभिक बिन्दुओं[67] को तलाशने के लिए पाषाणकालीन संस्कृति को रेखांकित करना होगा। सिन्धु की सहायक सोहन नदी घाटी(वर्तमान में पाकिस्तान में) से प्राप्त चापर-चापिंग पेबुल[68] परम्परा तथा दक्षिण भारत में प्राप्त हैण्डऐक्स (साधारण पत्थरों से कोर तथा फ्लैक द्वारा निर्मित उपकरण) परम्परा के उपकरणों से अनुमान लगाया जाता है कि पुरा-पाषाणकाल का आदि मानव इनकी सहायता से स्वयं की सुरक्षा करता होगा तथा भोजन संगृहीत करने के लिए इनका उपयोग करता होगा। शनैः शनैः पाषाण के उपकरणों में फलक तथा ब्लेड के संयुक्त होने से जंगली जन्तुओं का शिकार आसान हो गया होगा। डी. डी. कोसांबी का मानना है कि इन उपकरणों का इस्तेमाल औजारों की भांति होता था। इनके साथ-साथ लकड़ी तथा हड्डी के डण्डों का भी उपयोग होता था, जो नष्ट हो चुके हैं। कालांतर में अर्थात् प्रस्तर युग के एक लाख वर्ष या इससे अधिक वर्ष बाद पत्थरों को

[67] रोमिला थापर ने भारत में मानवीय कार्यकलाप के प्राचीनतम चिन्हों को 4,00,000 ई.पू. से 2,00,000 ई.पू. के मध्य स्वीकार किया है। (*भा.इ.*, पृ. 19)

[68] पानी के बहाव में रगड़ खाकर जो पत्थर के टुकड़े चिकने, सपाट तथा गोल-आकृति के हो जाते हैं, उन्हें पेबुल कहा गया है। बड़े आकार के पेबुल के ऊपर एक तरफ फलक निकालकर धार बनाई जाती थी जिन्हें चापर कहा जाता है। चापिंग द्विधारी पाषाण उपकरण होता है।

छील-छीलकर औजार बनाने की तकनीक का धीरे-धीरे विकास हुआ। अंत में इसके बाद पत्थरों के परिष्कृत औजारों का युग आया।[69]

मध्य-पाषाण काल के मानवों के जीवन में परिवर्तन आने लगा। अधिकांश लोग शिकार करते थे तथापि इस काल के लोग गाय, बैल, भेड़, बकरी, जंगली घोड़े तथा भैंसे आदि का शिकार करने लगे। उन्होंने थोड़ी बहुत कृषि करना भी सीख लिया था। अपने अस्तित्व के अन्तिम चरण तक वे बर्तनों का निर्माण करना भी सीख गए थे। पशुओं से धीरे-धीरे उनका परिचय बढ़ रहा था। सरायनाहर राय तथा महदहा की समाधियों से इस काल के लोगों की अन्त्येष्टि संस्कार विधि के विषय में कुछ जानकारी मिलती है। मृतकों को समाधियों में गाड़ते थे तथा उनके साथ खाद्य-सामग्रियाँ, औजार-हथियार भी रख देते थे। सम्भवतः यह किसी प्रकार के लोकोत्तर जीवन में विश्वास का सूचक हो सकता है।[70]

नव-पाषाण कालीन संस्कृति अपनी पूर्वगामी संस्कृतियों की अपेक्षा अधिक विकसित थी। इस काल का मानव न केवल खाद्य पदार्थों का उपभोक्ता ही था वरन् वह उनका उत्पादक भी बना। घुमक्कड़ मनुष्य ने अब घर बनाकर निवास करना प्रारंभ कर दिया। चाक के आविष्कार से मानव ने मृद्भाण्ड बनाना सीख लिया। मध्य-भारत की गिरि-कन्दराओं से प्राप्त शिकार संबंधी चित्रकारियाँ मानव के कला-प्रेम को दर्शाती हैं।

1.4.3. हड़प्पा काल में भारतीय संस्कृति

हड़प्पाकालीन संस्कृति को सिन्धु घाटी सभ्यता अथवा मोहनजोदड़ों की सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है। रोमिला थापर का मानना है कि इसके अर्थात् सिन्धु घाटी सभ्यता के अन्तर्गत न केवल सिंधु का मैदान (पंजाब व सिंधु), बल्कि उत्तरी राजस्थान और पश्चिमी भारत में काठियावाड़ तक के प्रदेश थे। यह मूलतः एक नागर संस्कृति थी जिसकी सत्ता के केन्द्र दो नगर- मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा थे। इन दोनों नगरों में पाए गए विस्तीर्ण अन्न-भंडारों से पता चलता है कि इनका सरंक्षण गाँव की अतिरिक्त पैदावार से होता था। आय का दूसरा साधन इस उपमहाद्वीप के उत्तरी तथा दक्षिणी क्षेत्रों के आंतरिक व्यापार और हड़प्पा संस्कृति के लोगों तथा फारस खाड़ी और मेसोपोटामिया के लोगों के बीच व्यापार की उन्नति से होनेवाला लाभ था।[71]

सैंधव सभ्यता के धार्मिक जीवन में मानव, पशु और प्रतीक तीनों रूपों में देवी-देवताओं की कल्पना की गई थी। नागों को अर्धमानव अर्धसर्प दिखाने की जो परम्परा ऐतिहासिक काल में मिलती है उसका मूल सिन्धु

---

[69] कोसंबी, दामोदर धर्मानंद, *प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता,* गुणाकर मुले (अनु.), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संशोधित संस्करण, 1990, आवृत्ति, 2007, पृ. 44

[70] *प्रा. भा. इ. सं.,* पृ. 40

[71] *भा. इ.,* पृ. 19-20

सभ्यता में प्राप्त होता है। ऐतिहासिक काल में हिन्दू धर्म में कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो सिंधु सभ्यता में विद्यमान लगते हैं किन्तु वैदिक धर्म में नहीं मिलते या अपेक्षाकृत गौण रूप में मिलते हैं। इनमें शिव, मातृदेवी, नाग, वृक्ष, पशु, लिंग आदि पूजा और योग क्रिया उल्लेखनीय हैं और यदि मान लिया जाय कि बाद के लोगों ने आर्यों से पूर्व की इस संस्कृति के तत्त्वों को ग्रहण किया तो यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि ये तत्त्व एक आदिम संस्कृति से नहीं वरन् प्राचीन विश्व की एक अत्यधिक विकसित संस्कृति से ग्रहण किए गए थे और यह भी असंभव नहीं है कि हिन्दू धर्म के कुछ दार्शनिक सिद्धांत भी इसी संस्कृति की देन हों।[72]

1.4.4. वैदिक वाङ्मय में भारतीय संस्कृति

वैदिक वाङ्मय में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों को सम्मिलित किया जाता है। वैदिक वाङ्मय से आर्यों के जीवन के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा दार्शनिक इत्यादि विभिन्न पहलुओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। वैदिक वाङ्मय में अभिव्यक्त भारतीय संस्कृति के सम्यक परिज्ञानार्थ इसे निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

- ऋग्वेदीय संस्कृति
- उत्तरवैदिक संस्कृति

ऋग्वेदीय संस्कृति - ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि आर्यों के धार्मिक जीवन में देवों का महत्त्व था। वे भौतिक कल्याण के लिए देवोपासना तथा यज्ञ करते थे। यास्क के अनुसार देव वह होता है जो दान देता है या प्रकाशित करता है अथवा प्रकाशित होता है या द्युलोक अथवा प्रकाशलोक में निवास करता है।[73] ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि आर्य बहुदेववादी थे। सर्वाधिक शक्तिशाली तथा राष्ट्रीय देव इन्द्र होता था। सत्यस्वरूप अग्नि, ऋत अर्थात् नैतिक नियमों के अधिष्ठाता वरुण, त्रिविक्रम विष्णु, स्थावर तथा जंगमों को प्रकाशित करने वाला सूर्य, गायत्री मन्त्र से आहूत सविता, आंधियों के देवता तथा वृष्टि में सहायक देवों का समूह मरुत्, सूर्योदय से पूर्व की देवी उषा, सूर्य का पोषक पूषन्, सोम, वाक्, रुद्र, यम, पर्जन्य इत्यादि अनेक देवों के बारे में ऋग्वेद से पता चलता है। यास्क ने ऋग्वेदीय देवों की संख्या तीन बताई है- पृथ्वीस्थानीय अग्नि, अन्तरिक्षस्थानीय इन्द्र अथवा वायु तथा द्युस्थानीय सूर्य।[74] यद्यपि ऋग्वेद में बहुदेववाद है फिर भी यास्क ने

---

[72] थपल्याल, डॉ. किरण कुमार, शुक्ल, डॉ. संकटा प्रसाद, *सिन्धु सभ्यता,* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, चतुर्थ संस्करण, 2002, पृ. 161

[73] देवो दानाद्वा। दीपनाद्वा। द्योतनाद्वा। द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता। *निरुक्तम्,* 7/4

[74] तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानः वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः। सूर्यो द्युस्थानः। वही, 7/2

एकेश्वरवाद का समर्थन किया है।[75] 'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति'[76] के मन्त्र से सर्वप्रथम एकेश्वरवाद के सूत्र प्राप्त होते हैं।

ऋग्वैदिक आर्यों ने भारत में एक सामाजिक व्यवस्था कायम की जिसे वर्ण व्यवस्था कहा गया। डॉ. राधाकृष्णन् भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था के बारे में कहते हैं कि मानव समाज भिन्न प्रकार की श्रेणियों से बना है और उनमें सबका अपना महत्त्व है।[77] भारतीय समाज-संरचना के बारे में जानकारी प्रदान करने वाली वर्णव्यवस्था के प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में मिलते हैं। वहाँ कहा गया है कि विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से राजा या क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य तथा पैरों से शूद्र पैदा हुए हैं।[78] इस मंत्र से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्णों के अस्तित्व के बारे में ज्ञान होता है। डॉ. धर्मकीर्ति के मतानुसार ऋग्वेद-कालीन भारतीय समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णों का अस्तित्व एक दूसरे के सदृश था। प्रत्येक वर्ण के सदस्य को यह अधिकार प्राप्त था कि वह अपनी मानसिक एवं शारीरिक क्षमताओं के अनुकूल किसी भी वर्ण का सदस्य बन सके। इन वर्णों में कोई स्पष्ट विभाजन नहीं था। यदि कोई विभाजन था, तो वह आर्य तथा दास वर्ण या दस्यु के बीच था।[79]

ऋग्वेद से पता चलता है कि नवविवाहिता वधू अपने पति के घर में सास, ससुर, देवर, ननद के ऊपर अधिकार रखने वाली सम्राज्ञी के समान सम्मानित थी।[80] विवाह के पश्चात् स्त्री को पतिगृह में गृहस्वामिनी का स्थान प्राप्त होता था।[81] विवाह में कन्या अपना मत दे सकती थी। विधिवत विवाह का मुख्य उद्देश्य पुत्र की प्राप्ति था जिससे वंश क्रम आगे बढ़ सके किन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं है कि ऋग्वैदिक समाज में पुत्रियों को सम्मान नहीं दिया जाता था। ऋग्वेद के एक मंत्र[82] से पता चलता है कि सती प्रथा का निर्वहन मात्र किया जाता था। मृत पति के शव के साथ पत्नी को लिटाया जाता था तथा बाद में उसके परिवार के लोग उसे उठा लेते थे। ऋग्वैदिक समाज में नियोग प्रथा के प्रचलन का संकेत मिलता है जिसके अन्तर्गत पुत्रविहीन विधवा पुत्र-प्राप्ति के निमित्त अपने देवर के साथ यौन संबंध स्थापित करती थी।[83]

---

[75] तासां माहाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति। वही, 7/2

[76] *ऋ. वे.*, 1/164/46

[77] *गौतमधर्मसूत्राणि*, डॉ. उमेशचन्द्र पाण्डेय (व्या.), चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, वि.सं. 2061, पृ. 34

[78] ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहुराजन्यः कृतः। उरु तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रोऽजायत॥ *ऋ. वे.*, 10/90/12

[79] डॉ. धर्मकीर्ति, *बुद्धकालीन वर्ण व्यवस्था और जाति*, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृ. 187

[80] सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥ *ऋ. वे.*, 10/85/46

[81] गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासः। वही, 10/85/26

[82] वही, 10/18/8

[83] *प्रा. भा. इ. सं.*, पृ. 88

ऋग्वेद के अध्ययन पश्चात् कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज में स्त्रियों की दशा श्रेष्ठ थी। उन्हें पर्याप्त स्वतंत्रता थी। उनकी शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था थी। ऋग्वैदिक समाज में लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, विश्ववारा प्रभृति स्त्रियों के नाम आते हैं जो पर्याप्त शिक्षा प्राप्त थीं। इन स्त्रियों ने कुछ मन्त्रों का निर्माण किया। यज्ञ, वेद-पाठ तथा अन्य कई विभिन्न प्रकार के अधिकार तत्कालीन स्त्री को प्राप्त थे। स्त्रियों को पुरुषों के बराबर समस्त सामाजिक तथा धार्मिक अधिकार प्राप्त थे किन्तु उनके राजनैतिक अधिकार सीमित थे।

ऋग्वैदिक आर्यों का आर्थिक जीवन कृषि प्रधान तथा ग्रामीण परिवेश पर आधारित था। आजीविका के साधनों में पशुपालन प्रमुख था। गाय को धन की भांति प्रयोग किया जाता था। आर्यों का व्यापार स्थानीय क्षेत्रों तक सीमित था। इस समय व्यापार का अर्थ था वस्तु के बदले वस्तु का विनिमय। आर्यों का राजनीतिक जीवन जनों में विभक्त था। अनु, द्रुह्य, यदु, पुरु, तुर्वस ये पञ्चजन थे। जन का स्वामी राजा होता था। कपिलदेव द्विवेदी का मानना है कि ऋग्वैदिक काल में प्रशासन की सर्वाधिक छोटी ईकाई कुल अथवा परिवार थी। कई कुलों को मिलाकर ग्राम कहा जाता था जिसका मुखिया ग्रामणी होता था।[84] ग्राम से बड़ी संस्था विश होती थी जिनका समूह जन कहलाता था।[85] इस प्रकार प्रशासन के संचालनार्थ विकेन्द्रीकरण का सिद्धांत आर्यों ने लागू किया था। यद्यपि राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था प्रचलन में थी फिर भी राजा पर नियंत्रण हेतु सभा तथा समिति[86] नामक दो संस्थाओं का उल्लेख ऋग्वेद से मिलता है।

ऋग्वैदिक आर्यों ने सृष्ट्युद्भव संबंधी मानवीय चिंतन की अबूझ पहेली को सुलझाने का प्रयास किया। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त से सृष्टि के उद्भव से पूर्व के चिंतन की जानकारी प्राप्त होती है कि सृष्टि से पूर्व प्रलय दशा में न तो नाम रूपादि रहित अवस्था थी, और न नामरूपात्मक अवस्था थी, न अन्तरिक्ष अथवा कोई लोक था, न वह आकाश था, जो सबसे पर या ऊपर है। ऐसी स्थिति में क्या आवृत्त किए हुए था अथवा आवरण था अर्थात् क्या अवशिष्ट था? वह कहाँ था? किसके संरक्षण में था? क्या उस समय अथाह गहरा जल अथवा शून्य था?[87]

नासदीय सूक्त के तीसरे मंत्र[88] में सृष्टि का मूल तत्त्व तमस्, जल तथा तपस् को माना गया है। मंत्र से पता चलता है कि सृष्टि के मूल में तम अर्थात् अंधकार था तथा अंधकार से ही अंधकारमय यह जगत् आच्छादित

---

[84] द्विवेदी, डॉ. कपिलदेव, *वेदों में राजनीति शास्त्र,* विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर, प्रथम संस्करण, 1998, पृ. 29

[85] स इज्जनेन स विशा स जन्मना सपुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः। *ऋ.वे.,* 2/26/3

[86] राजा न सत्यः समितीरियानः। वही, 9/92/6

[87] वही, 10/129/1

[88] तम आसीत्तमसागूल्हमग्रेऽप्रकेतंसलिलंसर्वमा इदम्। तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्॥ वही, 10/129/3

था। सायण ने तम की वेदान्तीय व्याख्या करते हुए उसे अज्ञान[89] मान कर जगत् का मूल कारण स्वीकार किया है। प्रलयकाल में सृष्टि का मूलकारण अंधकार था। 'अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्[90]' से सर्ग रचना की प्रारंभिक अवस्था में चिन्हरहित जल की विद्यमानता का पता चलता है। हिरण्यगर्भ सूक्त के प्रथम मंत्र[91] में बताया गया है कि हिरण्यगर्भ[92] सबसे पहले उत्पन्न हुआ, वह उत्पन्न होते ही समस्त प्राणियों का एक मात्र स्वामी बन गया था।

उत्तरवैदिक संस्कृति - उत्तरवैदिक काल में पशुओं को धार्मिक कृत्य जैसे बलि, यज्ञ तथा मांस भक्षणार्थ मारा जाता था। ऋग्वैदिक काल में जहाँ अश्वमेध यज्ञ[93] का प्रचार था, वहीं उत्तरवैदिक काल में इसके साथ ही राजसूय, वाजपेय जैसे बड़े यज्ञ तथा अग्निष्टोम, दर्श-पौर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रयण, सौत्रामणि तथा पुरुषमेध[94] इत्यादि अनेक यज्ञों का प्रचलन हो गया। ये यज्ञ खर्चीले तथा अधिक समय लेते थे। वैदिक कर्मकाण्डीय पद्धति को धर्मसूत्रकारों ने बल दिया। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि पशुओं की बलि ने कृषि व्यवस्था को भी प्रभावित किया होगा। शतपथ ब्राह्मण से आदमियों, घोड़ों, बैलों, मेढ़ों तथा बकरियों की बलि का पता चलता है। अथर्ववेद से जादू-टोने, तन्त्र-मन्त्र, प्रेतात्मा, वशीकरण तथा इन्द्रजाल जैसे अन्धविश्वासों का पता चलता है।

उत्तरवैदिक काल में ऋग्वेद द्वारा स्थापित वर्ण व्यवस्था संबंधी विचारों से भारतीय सामाज-व्यवस्था को श्रेणीगत समाज व्यवस्था में परिवर्तित किया गया। गौतम, वशिष्ठ प्रभृति धर्मसूत्रकारों ने चारों वर्णों के कार्यों का स्पष्ट निर्धारण किया। द्विज अर्थात् उपनीत ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के धर्म हैं- वेदाध्ययन, यजन तथा दान।[95] ये तीनों कार्य अन्य की अपेक्षा ब्राह्मण के अधिक होते हैं।[96] ब्राह्मण आपत्तिकाल में दूसरे के द्वारा कार्य करवाते हुए कृषि तथा क्रय-विक्रय कर सकता है।[97] तथा ब्याज पर धन भी दे सकता है।[98]

---

[89] आत्मतत्त्वस्यावरकत्वान मायापरसंज्ञं भावरूपाज्ञानमत्र तम इत्युच्यते। *सायणभाष्य* (*ऋ.वे.*, 10/129/3)

[90] वही, 10/129/3

[91] हिरण्यगर्भ: समवर्ततााग्रे भूतस्य जात: पतिरेकासीत्। वही, 10/121/1

[92] सायणाचार्य हिरण्यगर्भ का आशय स्वर्णिम अण्डे से उत्पन्न प्रजापति से लेते हैं (*सायणभाष्य, ऋ.वे.,* 10/121/1) तथा पीटर्सन स्वर्णिम बीज से। (*Hymns from Rigveda*, Bombay, 1898, p. 331)

[93] *ऋ.वे.*, 1/162/2-3

[94] यदस्मिन् मेध्यान्पुरुषाना लभते तस्मादेव पुरुषमेधः। *शतपथ ब्राह्मण*, 13/6, 2/1

[95] द्विजातीनामध्ययनमिज्या दानम्। *गौ.ध.सू.*, 2/1/1

[96] ब्राह्मणस्याधिकाः प्रवचनयाजनप्रतग्रहाः। वही, 2/1/2

[97] कृषिवाणिज्ये वाऽस्वयंकृते। वही, 2/1/5

[98] कुसीदं च। वही, 2/1/6

क्षत्रिय का कर्त्तव्य सभी प्राणियों की रक्षा करना है। न्यायपूर्वक दण्ड देने का कार्य भी क्षत्रिय का है। श्रोत्रिय, असमर्थ तथा कर मुक्त ब्राह्मणों, ब्रह्मचारियों, वैद्यों का पालन-पोषण उसी के अधीन है। राजा को विजय के लिए प्रयास करना चाहिए।[99] कृषि, वाणिज्य, पशुपालन तथा ब्याज से प्राप्त धन से वैश्य अपनी आजीविका चलाता है।[100] द्विज वर्णों में परस्पर परिवर्तन संभव था किन्तु शूद्र को चौथा वर्ण स्वीकार करते हुए गौतम ने जाति कहा।[101] अर्थात् शूद्र का वर्ण परिवर्तनीय नहीं है। वर्ण को परिवर्तत करना दुष्कर था। शूद्रों पर विभिन्न प्रकार के बंधन लगा दिए गए। गौतम धर्मसूत्र से पता चलता है कि शूद्र के वेदपाठ सुनने पर पिघलाए गए सीसे और जस्ते से उसके कान भर दिए जाए, वेदपाठ का उच्चारण करने पर उसकी जीभ काट ली जाए तथा वेद मन्त्र को धारण करने पर उसका शरीर काट डाला जाए।[102]

वर्ण के साथ ही आश्रम व्यवस्था का विकास इस काल की देन है। गौतम धर्मसूत्र में चारों आश्रमों ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, भिक्खु तथा वैखानस का उल्लेख मिलता है।[103] विवाह के आठ प्रकार ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष, दैव, गान्धर्व, आसुर, राक्षस, पैशाच प्रचलन में थे। विवाह भिन्न प्रवर वालों में संभव था। कन्या अथवा लड़के के पिता से लेकर सात पीढ़ी तक प्रवर माना जाता था जिनसे विवाह का संबंध नहीं किया जाता था।[104]

उत्तरवैदिक कालीन समाज में स्त्री का महत्त्व कम होने लगा था। यद्यपि पति तथा पत्नी मिलकर दम्पति कहलाते थे, तथापि पति से पृथक् पत्नी का गृह सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं था। तैत्तिरीय संहिता से पता चलता है कि स्त्रियाँ शक्तिहीन होने से दायभाग से वंचित थी।[105]

वैदिक संस्कृति की अमिट छाप परवर्ती भारतीय जीवन पर दिखलाई पड़ती है। रोमिला थापर का मत है कि सामाजिक संस्थाओं तथा धर्म के क्षेत्र में वैदिक संस्कृति ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय जीवन की अनेक संस्थाएँ- विशेषतः हिंदू संस्था अपना उद्भव, आर्यों के आगमन से मानती है। आर्यों ने केवल संस्कृत भाषा, वर्णव्यवस्था और धार्मिक यज्ञ का विचार तथा औपनिषदिक दर्शन ही नहीं प्रदान किया, बल्कि एक बड़े पैमाने पर खेती के लिए भूमि साफ करने का शारीरिक कार्य भी किया। इससे भी अधिक

---

[99] *गौ.ध.सू.*, 2/1/7-13

[100] वैश्यस्याधिकं कृषिवणिक्पाशुपाल्यकुसीदम्। वही, 2/1/50

[101] शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिः। वही, 2/1/51

[102] अथ हास्य वेदमुपश्रृणवतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणमुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेदः॥ वही, 2/3/1

[103] ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षुर्वैखानसः। वही, 1/3/2

[104] वही, 1/4/2-3

[105] स्त्रियाँ निरिन्द्रिया अदायादीः। *तैत्तिरीय संहिता*, 6/5/8/2

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आर्यों के इन विचारों के कारण- या तो इन विचारों की स्वीकृति के द्वारा अथवा उनका विरोध करके-अन्य विचारों एवं संस्थाओं का जन्म संभव हो सका।[106]

1.4.5. पुनर्जागरण काल में भारतीय संस्कृति

छठी शताब्दी ई.पू. तक भारतीय संस्कृति की वैदिक धारा में व्याप्त कर्मकाण्ड, भोगवाद, वेदवाद, देववाद, यज्ञवाद, पशुबलि, सामाजिक बिखराव जैसी अनेक जटिलताओं ने एक सहज एवं सर्वसुलभ धर्म की आवश्यकता को जन्म दिया। इस युग में कई प्रकार के स्वतंत्र आचार्य हुए जिन्होंने कई सम्प्रदाय चलाये जैसे निगंठनातपुत्त का जैन, पूरणकस्सप का अक्रियावादी, मक्खलि गोसाल का नियतिवादी अर्थात् आजीवक (भाग्यवादी), अजितकेसकम्बलिन् का उच्छेदवादी, पकुधकच्चायन का नित्यवादी, संजय वेलट्ठपुत्त का सन्देहवादी सम्प्रदाय। इन सम्प्रदायों में केवल महावीर तथा बुद्ध के सम्प्रदाय ही भारत में बने रहे, शेष सभी कालचक्र के गर्त में समा गए।

महावीर स्वामी के महाकरुणा के सिद्धांत तथा गौतम बुद्ध के धार्मिक आंदोलन से अहिंसा को व्यापक स्तर पर सामाजिक मान्यता प्राप्त हुई। जैनों की अहिंसा नीति अतिवादी थी, जिसमें जीव मात्र का समावेश है और उन्हें जाने-अनजाने सभी प्रकार के विनाश से बचाना परम कर्त्तव्य के रूप में विहित किया गया है। लेकिन बौद्ध हिंसा करने या न करने के मामले में मनुष्य के कर्मों के नैतिक पहलू पर जोर देते दिखाई देते हैं।[107] बुद्ध ने खुलकर अश्वमेध, सम्यक्पाश, वाजपेय और निरर्गल यज्ञों का विरोध किया क्योंकि वे खर्चीले तथा अकल्याणकारी थे। बकरे, गाएं, भेड़े इत्यादि सैकड़ों पशु मारे जाते जिनमें कोई महर्षि भी नहीं आते थे।[108] जिन पशुओं का यज्ञ के कारण वध कर दिया जाता था, अब उनका प्रयोग कृषि कार्यों में किया जाने लगा जिससे भारत में कच्चा माल का उत्पादन बढ़ा जिससे व्यापार में वृद्धि हुई। बुद्ध के समय भारत में उद्योगों के विकास ने नगरीकरण को जन्म दिया, जिससे शीघ्र ही भारत निर्माण की प्रक्रिया को बल मिला।

सामान्य जनता यज्ञों की विरोधी कैसे हो गई? इसके पीछे कारण बौद्धों का डटकर यज्ञों का विरोध तथा अहिंसा का पालन करना था। सम्राट अशोक ने अपने प्रथम अभिलेख में पशुओं की बलि का निषेध किया

---

[106] *भा.इ.*, पृ. 41

[107] थापर, रोमिला, *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास*, आदित्यनारायण सिंह (अनु.), ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001, पृ. 51

[108] अस्समेधं पुरिसमेधं, सम्मापासं वाजपेय्यं निरग्गळहं। महायञ्ञा महारम्भा न ते होन्ति महप्फला॥

अजेळका च गावो च, विविधा यत्थ हञ्ञरे। न तं सम्मग्गता यञ्ञं, उपयन्ति महेसिनो॥ *सं.नि.*, 3/9

तथा अपनी रसोई में पकने वाले मांस को भी लगभग बन्द करवा दिया था।[109] अशोक के दूसरे अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने पशुओं तथा मानव दोनों के लिए न केवल भारत देश में अपितु ग्रीक, चोल, पाण्डय, सतयपुत्र तथा केरलपुत्र राज्यों में भी अस्पताल खुलवाये।[110]

जब भगवान् बुद्ध और महावीर के सन्देशों से भारत में पुनर्जागरण हुआ, उस समय वर्ण व्यवस्था को नकारा गया। गौतम बुद्ध नें सदियों से चले आ रहे असमतामूलक समाज को नकार दिया तथा समता मूलक समाज का आदर्श रखा। भगवान् बुद्ध ने बताया कि मानव मात्र समान हैं और कोई उच्च वर्ण में जन्म लेने से महान् नहीं होता, अपितु अपने सत्कर्मों द्वारा ही उसकी महत्ता की पुष्टि होती है।[111]

भगवान् बुद्ध जन्म की प्रधानता को अस्वीकार करते हुए कर्म को प्रधान मानते हैं। बुद्ध का मत है कि जैसे क्षत्रिय की काया से दुराचार एवं मिथ्यादृष्टि हो सकती है तथा वह नरक में उत्पन्न हो सकता है, वैसे ही ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र भी हो सकते हैं।[112] इसी तरह सम्यक् दृष्टि व काया से सदाचार करने पर स्वर्ग मिलता है।[113] जहाँ वर्णव्यवस्था समाज को खण्डित करती है, वहीं बौद्ध धर्म के ग्रन्थों में समाज को समानान्तर क्रम में रखकर समाज में एकता की बात उठायी गई है। बौद्ध धर्म में माना गया है कि मनुष्य जन्म से नहीं, अपितु विद्या व आचरण से श्रेष्ठ होता है।[114]

मानव एक सामाजिक प्राणी है। वह जन्म से मरण तक समाज में रहता है। समाज से रहित मानव पशु के समान है। सामाजिक सम्पर्क के कारण ही व्यक्ति समाज के रीति-रिवाजों, प्रथाओं, मूल्यों, विश्वासों, संस्कृति एवं सामाजिक गुणों को सीखकर उन्हें ग्रहण करता है। किसी भी समाज के विकास का मापदण्ड स्त्रियों की स्थिति पर निर्भर है। समृद्धशाली और आदर्श समाज वही माना जा सकता है, जिसमें स्त्री और पुरूष को

---

[109] *TEKA*, p.1

[110] Ibid, p.1-2

[111] सिंह, मदन मोहन, *बुद्धकालीन समाज और धर्म*, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1972, पृ.12

[112] *दी.नि.*, 3/4

[113] खत्तियोपि खो, वासेट्ठ, कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो सत्तन्नं बोधिपक्खियानं धम्मानं भावनमन्वाय दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायति। ब्राह्मणोपि खो, वासेट्ठ...पे॰... वेस्सोपि खो वासेट्ठ... सुद्दोपि खो, वासेट्ठ ... समणोपि खो, वासेट्ठ, कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो...। वही, 3/4

[114] विज्जाचरण सम्पन्नो सो सेट्ठो देवमानुसेति। वही, 3/4

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करने का समान अवसर प्राप्त हो।[115] बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में प्रवेश देकर विश्व इतिहास में लैंगिक समानता का अद्‌भुत उदाहरण पेश किया।

जिस समय भारत में बौद्ध धर्म प्रतिष्ठित था, उस समय भिक्खुणी संघों की भरमार थी। इन भिक्खुणी संघों में प्रविष्ट हो जाने पर एक स्त्री एक स्वतंत्र व्यक्ति बन जाती थी। वह किसी पुरुष की अनुचर मात्र बनकर नहीं रहती थी।[116] डॉ. बी. आर. अम्बेडकर का मानना है कि तथागत द्वारा स्त्रियों को प्रदान की गई स्वतंत्रता खोखली स्वतंत्रता नहीं थी, अपितु ऐसी स्वाधीनता थी जिसका गौरव स्त्रियाँ अनुभव कर सकती थीं।[117] सुमुत्ता साधुमुत्ताम्हि[118] का उद्घोष कर मुत्ता थेरी मुक्त जीवन का उद्धार व्यक्त करती है। पटाचारा के उपदेश से प्रभावित हो भिक्खुणी बनी चन्दा थेरी स्वयं को तीनों विद्याओं अर्थात् बुद्ध, धम्म तथा संघ में निपुण मानते हुए समस्त चित्तमलों से विमुक्त होने की पुष्टि करती है।[119]

पालि साहित्य से पता चलता है कि बुद्ध प्रत्येक प्रकार की हिंसा के खिलाफ थे, चाहे वह मौज-मस्ती के लिए हो, चाहे वह यज्ञों के लिए हो और चाहे वह युद्ध के लिए हो। शान्तिपूर्ण उपायों से यदि किसी भी समस्या का समाधान निकल सकता है तो पहले उसे ही करना चाहिए। बिम्बिसार, शीलादित्य इत्यादि बौद्ध राजाओं ने युद्ध लड़े किन्तु उन्होंने हमेशा ही व्यर्थ के रक्तपात का विरोध किया।

बुद्ध से पूर्व प्राचीन भारत में नशीले पेय पदार्थों का सेवन सामान्य बात मानी जाती थी। यज्ञों में सोमरस का पान करना सामान्य बात थी। ऋग्वेद के कई सूक्तों में इसकी चर्चा की गई है।[120] सौत्रामणि तथा वाजसनेय यज्ञ में शराब का अपना विशिष्ट स्थान था। भारत में सर्वप्रथम नशीले पदार्थों का सेवन निषिद्ध ठहराते हुए पाँचवें पंचशील के रूप में इसे समाज में स्थापित किया।

1.4.6. राजतंत्रों के काल में भारतीय संस्कृति

बुद्ध के आविर्भाव के समय भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। तत्कालीन भारतवर्ष में एक सार्वभौम सत्ता का अभाव था। छठी शताब्दी ई.पू. का भारत षोडश महाजनपदों में विभक्त था। अंगुत्तरनिकाय में

---

[115] *सं.बौ.सा.इ.सं.,* पृ. 186

[116] नरसु, पी. लक्ष्मी, *दी एसेन्स ऑफ बुद्धीज्म (बौद्ध धर्म का सार)*, डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन (हि.अनु.), बुद्द भूमि प्रकाशन, नागपुर, द्वितीय संस्करण, 1997, पृ. 102

[117] अम्बेडकर, डॉ. भीमराव रामजी, *हिन्दू नारी का उत्थान और पतन,* गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, 2009, पृ. 15

[118] *थे.गा.*, 11

[119] अमोघो अय्यायोवादो, तेविज्जाम्हि अनासवा। वही, 126

[120] *ऋ.वे.*, 10/85/1, 5/51/15, 10/12/7, 10/68/10

इनका वर्णन मिलता है, जो हैं- काशी, कोशल, अंग, मगध, वज्जि, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पञ्चाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्मक, अवन्ति, गन्धार तथा कम्बोज।[121] इन महाजनपदों का शासन राजतंत्रात्मक तथा गणतंत्रात्मक अर्थात् प्रजातंत्रात्मक शासन पद्धतियों से संचालित होता था। वज्जि तथा मल्ल गणराज्य थे, शेष राजतंत्र थे।

प्रजातंत्र में या तो एक अकेला जन होता था, जैसे शाक्य, कौलीय और मल्ल; या जनों का एक संघ होता था, जैसाकि वज्जियों और यादवों में था। प्रजातंत्रों का उद्भव वैदिक जनों से हुआ था और उन्होंने राजतंत्र की अपेक्षा कहीं अधिक जनपरंपराओं को सुरक्षित रखा। जन से प्रजातंत्र में संक्रमण के दौरान उन्होंने जन के अनिवार्य लोकतांत्रिक ढाँचे को तो त्याग दिया, परंतु जन का प्रतिनिधित्व करनेवाली परिषद् के द्वारा शासन पर विचार बनाए रखा।[122] रोमिला थापर का मत है कि ब्राह्मण स्रोतों में प्रजातंत्रीय जनों को पतित क्षत्रिय और शूद्र कहा गया है। उन्होंने ब्राह्मणों का सम्मान और वैदिक आचार-विचारों का पालन करना त्याग दिया था। चैत्यों तथा वृक्षों के चारों ओर बाड़ों की पूजा का प्रचलन प्रजातंत्रों में स्थापित हो चुका था।[123]

राजतंत्रात्मक शासन पद्धतियों में राजा की दैवीय स्थिति निर्धारित की गई। राजा का सहायक पुरोहित बना जिसने वैदिक आचार-पद्धति को प्रचारित किया। सामाजिक तथा राजनीतिक सत्ता राजा और परिषद् के प्रतिनिधियों के हाथों में आ चुकी थी। सामान्यतः राजा क्षत्रिय वंश के ही होते थे। वैदिक परम्परा से प्रचलित एकराट तथा सम्राट बनने के स्वप्न साकार करने के लिए षोडश महाजनपदों में परस्पर संघर्ष हुआ जिसमें मगध एक शक्तिशाली राज्य बनकर उभरा। भारतीय इतिहास की धारा में मगध का उत्तरोत्तर विकास होता रहा। कालांतर में मगध का इतिहास ही भारत का इतिहास बन गया।

छठी शताब्दी ई.पू. से लेकर सातवीं-आठवीं शताब्दी ईस्वी पर्यन्त भारतीय संस्कृति की वल्गा हर्यंक, शिशुनाग, नंद, मौर्य, शुंग, सातवाहन, चेदि, हिन्द-यवन, शक, कुषाण, गुप्त, वर्धन, चालुक्य, राष्ट्रकूट, चोल, एवं पाण्डय प्रभृति विभिन्न वंशों के सम्राटों यथा बिम्बिसार, अजातशत्रु, कालाशोक, महापद्मनंद, चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक महान्, पुष्यमित्र, अग्निमित्र, गौतमीपुत्र शातकर्णी, खारवेल, मिनाण्डर, नहपान, रुद्रदामन,

---

[121] .....यो इमेसं सोळसन्नं महाजनपदानं पहूतरत्तरतनानं इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेय्य , सेय्यथिदं – अङ्गानं, मगधानं, कासीनं, कोसलानं, वज्जीनं, मल्लानं, चेतीनं, वङ्गानं, कुरूनं, पञ्चालानं, मच्छानं, सूरसेनानं, अस्सकानं, अवन्तीनं, गन्धारानं, कम्बोजानं, अट्ठङ्गसमन्नागतस्स उपोसथस्स एतं कलं नाग्घति सोळसिं। *अंगु.नि.*, 3/2/10

[122] *भा.इ.*, पृ. 43-44

[123] वही, पृ. 44

कनिष्क, चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त, हर्षवर्धन, पुलकेशिन द्वितीय, दन्तिदुर्ग, महेन्द्रवर्मन् प्रथम, राजेन्द्र प्रथम इत्यादि के अधीन कुसुमित हुई।

राजतंत्रीय शासकों के अधीन लिखे गए साहित्य, संगीत तथा कला में नवीन दृष्टियों को स्थान प्राप्त हुआ। साहित्य की विभिन्न विधाएं नाटक, महाकाव्य, गीतिकाव्य, चम्पू, कथा तथा आख्यायिका इत्यादि का विकास हुआ। रामायण, महाभारत की कथाओं की उपजीव्यता इन ग्रंथों पर प्रभावी रही। सात स्वरों से समन्वित संगीत में देशी तथा मार्गी का विधान किया गया। विभिन्न वाद्य यंत्रों यथा बांसुरी, वीणा, मृदंग से संगीत का आनन्द सामान्योन्मुखी हुआ। बुद्ध की मूर्ति निर्माण की गांधार तथा मथुरा शैली से मूर्तिकला का, कोणाकार नागर तथा पिरामिडाकार द्राविड़ शैलियों से मन्दिर निर्माण का विकास हुआ। मौर्य सम्राट अशोक ने बहुत से स्तूपों का निर्माण करवाया तथा अभिलेख खुदवाने की परम्परा का प्रारंभ किया। अजन्ता तथा ऐलोरा की गुफाएँ; सांची, सारनाथ, नागार्जुनकोण्डा, अमरावती के स्तूप; गिरनार, जूनागढ़, ऐहोल, प्रयागादि के अभिलेख, देवगढ़ का दशावतार मन्दिर भारतीय संस्कृति की कला के आदर्श प्रतिमान हैं।

राजतंत्रों के अधीन भारतीय समाज की संरचना में व्यापक परिवर्तन आया। परम्परागत वर्ण व्यवस्था का स्थान जन्मजात जाति व्यवस्था ने ले लिया। अमरकोश के शूद्र वर्ग से तत्कालीन मालाकार, कुम्भकार, कुविन्द, लेपक, चित्रकर, शास्त्रमर्ज, चर्मकार, लोहकारक, स्वर्णकार, रथकार, तक्षा, ताम्रकुट्टक (ठठेरा), मुण्डिन् अर्थात् नापित, नट, चारण, शाम्बरी अर्थात् जादूगर, वीणावादक, वागुरिक(व्याध), मांसिक, कर्मकार, वार्तावह अर्थात् सन्देशवाहक, भारवाह, चण्डाल, निषाद, पुक्कस, शबर तथा पुलिन्द इत्यादि अनेक जातियों का उल्लेख मिलता है।[124] न्याय व्यवस्था में कानून तथा दण्ड वर्ण के अनुसार निश्चित किए गए। उदाहरण के तौर पर मनुस्मृति में कहा गया है कि यदि कोई क्षत्रिय किसी ब्राह्मण अर्थात् पुरोहित की मानहानि करता है तो उस पर सौ पण का जुर्माना, वैश्य पर एक सौ पचास अथवा दो सौ पचास पण का जुर्माना लगाया जाए किन्तु इस प्रकार के अपराधबोध के लिए शूद्र को मृत्युदण्ड दिया जाए। इसके विपरीत अर्थात् यदि पुरोहित किसी क्षत्रिय की मानहानि करे तो उस पर पचास पण का जुर्माना, वैश्य की मानहानि करने पर पच्चीस पण तथा शूद्र की भर्त्सना करने पर बारह पण का जुर्माना लगाया जाए।[125]

ईसा की प्रथम तथा दूसरी शताब्दियों तक आते-आते भारतीय समाज में स्मृति ग्रंथों को महत्त्व मिलने लगा। प्राचीनकाल के स्त्री संबंधी विचार धूमिल हो रहे थे। स्त्रियों पर बंधन लगाए जा रहे थे। मनु ने स्त्रियों को

---

[124] *अमरकोषः*, 2/10/5-20

[125] शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति। वैश्योऽप्यर्धशते द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्ति॥
पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्डयः क्षत्रियस्याभिशंसने। वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः॥ *म.स्मृ.*, 8/267-68

अहर्निश बंधन में रखने की बात कही है। विषयासक्त स्त्रियों को तो विशेष रूप से वश में करके रखना चाहिए। उसका मानना है कि अगर इन्हें बंधन में नहीं रखा गया तो वे परिवार को ही नहीं समाज को भी बिगाड़ देती हैं। स्त्रियों की बाल्यकाल में पिता को रक्षा करनी चाहिए। जवानी में पति तथा बुढ़ापे में पुत्र उनकी रक्षा करे। इन्हें कभी भी स्वतन्त्र नहीं रखना चाहिए।[126] किसी स्त्री का पति यदि दुश्चरित्र, कामोपभोग में रत तथा गुणरहित है तो भी साध्वी स्त्री को उसकी सदैव देवता के समान सेवा तथा पूजा करनी चाहिए।[127] डॉ. बी. आर. अम्बेडकर का मानना है कि स्मृतिकार मनु का उद्देश्य तो बौद्ध काल में स्त्रियों को मिली स्वतंत्रता का अपहरण करना था। उन्हें अपने विधान के औचित्य अथवा अनौचित्य से क्या लेना-देना था? उन्हें तो स्त्रियों की स्वतंत्रता से सिर में पीड़ा हो रही थी और इस पीड़ा के निवारण का एक ही उपचार स्त्रियों की स्वतंत्रता का अपहरण था, जो उन्होंने किया।[128]

प्राचीन भारत में गणिकाओं की स्थिति का चित्रण करते हुए ए. एल. बाशम ने लिखा है कि प्राचीन भारत में गणिकाएं अधिकांश रूप में निर्धन तथा साधारण होती थी, किन्तु साहित्य में वर्णित वेश्याएं विशेष रूप से सुन्दर, निपुण तथा धनी होती थीं।[129] बौद्ध कथाओं में वैशाली की प्रसिद्ध वेश्या आम्रपाली की कथा आदर्श वेश्याओं की कथाओं में अग्रगण्य है। वह अत्यधिक धनी, प्रखर बुद्धिवाली तथा सभ्य समाज में प्रथित थी। भगवान् बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर वह भिक्खुणी हो गई। साहित्यिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि वेश्याओं की देखभाल राज्य द्वारा होती थी।[130] महावस्तु के अध्ययन से पता चलता है कि गणिकाएं नगरवासियों द्वारा समादृत होती थीं। इनके आवास स्थल मुख्य आबादी से पृथक् होते थे जिन्हें गणिका बीथि कहा जाता था।[131]

---

[126] अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशन्। विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे।
पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥ *म.स्मृ.*, 9/2-3

[127] विःशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः। उपचर्यः स्त्रियां साध्व्या सततं देववत्पतिः॥ वही, 5/154

[128] अम्बेडकर, *डॉ. भीमराव रामजी, हिन्दू नारी का उत्थान और पतन,* गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 19

[129] *अ.भा.*, पृ. 130-31

[130] वही, पृ. 131

[131] *म.व.*, जिल्द-2, 168/11

सम्राट अशोक ने समस्त प्रजा को अपनी संतान मानकर उनके ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सुख एवं हित के लिए लोकोपकारक कार्य किए।[132] बलि प्रथा में पशुओं की हत्या पर कानूनी तौर पर रोक लगाई। मानव तथा पशुओं के लिए चिकित्सालय खुलवाए। सड़क किनारे वृक्ष लगवाए तथा कूपों का निर्माण करवाया।

राजतंत्रों के अधीन आर्थिक क्षेत्र में कृषि की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। गंगा-यमुना के दोआब पर कृषि की अच्छी पैदावार होती थी। कृषि के लिए झील तथा नहरों का निर्माण करवाया जाता था। रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से सुदर्शन झील के बारे में पता चलता है।[133] मौर्य सम्राटों के अधीन भारतीय व्यापार में वृद्धि हुई। गरम मसाले तथा सूती वस्त्र का निर्यात किया जाता था। सम्राट कनिष्क के समय भारत सिल्क-मार्ग से जुड़ गया, जिससे सूती वस्त्र उद्योग तथा व्यापार में आशातीत वृद्धि हुई। भारत में पंचमार्क सिक्कों से स्वर्ण सिक्कों का प्रचलन कुषाणों की देन है।

बौद्ध धर्म की दार्शनिक शाखाओं सौत्रान्तिक, वैभाषिक, योगाचार तथा माध्यमिक का विकास, वैदिक दर्शन की नवीन शाखाओं मीमांसा, वेदांत, सांख्य, योग, न्याय तथा वैशेषिक का विकास इसी काल की देन है। बौद्ध धर्म हीनयान तथा महायान नामक दो सम्प्रदायों में बट गया। जहाँ हीनयान जीवन का अन्तिम लक्ष्य अर्हत् पद की प्राप्ति को मानता है, वहीं महायान बोधिसत्त्व को। क्लेशों तथा दुःखों से ग्रस्त करोड़ों लोगों को छोड़कर, अर्हत् प्रज्ञा के बल पर अपने क्लेशों से मुक्त होकर स्वयं को सफल समझता है। परन्तु महायानी साधक का मानना है कि अधिकतर मनुष्यों के लिए निर्वाण-मार्ग अकेले खोजना मुश्किल या असम्भव है और उन्हें इस कार्य में सहायता मिलनी चाहिए। वे समझते हैं कि ब्रह्माण्ड के सभी प्राणी एक-दूसरे से जुड़े हैं और सभी से प्रेम करना और सभी के निर्वाण के लिए प्रयत्न करना जरूरी है। किसी भी प्राणी के लिए दुर्भावना नहीं रखनी चाहिए क्योंकि सभी जन्म-मृत्यु के जंजाल में फंसे हैं। सभी अज्ञानी प्राणी दिन-रात असंख्य तरीकों से बुरे काम कर रहे हैं जिसके कारण उनके दुःखों का विस्तार हो रहा है। इस प्रकार दुःखग्रस्त प्राणियों को देखकर बोधिसत्व प्रतिज्ञा करता है कि वह स्वयं अज्ञानी लोगों के बोझ को ढोएगा तथा निर्वाण के अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने में उनकी सहायता करेगा। बाद में वज्रयान तथा तंत्रयान बौद्ध धर्म का विकास हुआ।

वैदिक धर्म में शैव तथा वैष्णव भक्ति शाखाओं का जन्म हुआ। पुराणों की सृष्टि ने भक्ति भावना को सहज बनाकर वैदिक ज्ञान को सर्वग्राह्य बनाया। श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण तथा महाभारत की उपजीव्यता ने

---

[132] सा मे पजा। अथ पजाए इछामि किंति मे सवेणा हित-सुखेन युजेयू अथ पजाए इछामि किंति मे सेवन हित सुखेन युजेयू ति हिदलोगिक-पाळलोकिकेण हेवमेव मे इछ सव मुनिसेसु। कलिंग का दूसरा शिलालेख, *भा.पु.अ.*, पृ. 113

[133] *TEKA*, p. 210

परवर्ती संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया। जैन धर्म में भी दार्शनिक प्रवृत्तियों का जन्म हुआ। जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण धर्म तीनों ने अपने ग्रंथों की सृजना संस्कृत भाषा में की जिससे संस्कृत भाषा को व्यापकता प्राप्त हुई।

नालन्दा, तक्षशिला, विक्रमशिला, उज्जैनी, काञ्ची, धारा, अवन्ति इत्यादि शिक्षण केन्द्रों ने भारत को विश्वगुरु की पदवी से विभूषित किया। भास, अश्वघोष, कालिदास, माघ, हर्ष, भारवि प्रभृति संस्कृत साहित्यकारों ने सम्राटों की राजसभाओं की शोभा को बढ़ाया। साहित्य के प्रतिमान वर्ण-व्यवस्था पर आधारित थे। जैसे नाटक या किसी भी काव्य का नायक अधम वर्ण का व्यक्ति नहीं हो सकता था। वह केवल क्षत्रिय वर्ग से ही संबंधित हो सकता था।

सम्राट हर्षवर्धन का कोई उत्तराधिकारी न होने से भारतीय राजतंत्र के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति नष्ट हो गई। एक शक्तिशाली केन्द्र की कमी ने भारत को छोटे- छोटे राज्यों में विभाजित कर दिया। केन्द्रीय सत्ता मगध से कन्नौज में आकर सिमट गई। कन्नौज पर आधिपत्य के लिए राष्ट्रकूट, गुर्जर-प्रतिहार तथा बंगाल के पालवंशीय शासकों में आठवीं शताब्दी से नवीं शताब्दी ईस्वी तक त्रिपक्षीय संघर्ष चलता रहा जिसमें गुर्जर-प्रतिहार सफल हुए। राजपूतों के छोटे-छोटे वंशों ने उत्तर भारत में अपना-अपना शासन स्थापित किया। आठवी शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में अरब-प्रदेश में इस्लाम के उदय ने विश्व परिदृश्य को परिवर्तित कर दिया। इस्लाम के शासकों ने शीघ्र ही अपना विस्तार किया। धन सम्पदा लूटने तथा शक्तिशाली केन्द्र के अभाव में इस्लाम के शासकों ने अपने विस्तार का मार्ग भारत की ओर तलाशा, जिसमें वे सफल हो गए।

1.4.7. मध्यकाल में भारतीय संस्कृति

भारत में इस्लाम के आगमन से मध्यकालीन इतिहास का प्रारंभ माना जाता है। इस्लाम के आगमन से पूर्व बौद्ध, जैन तथा वैदिक धाराएं भारतीय संस्कृति में विद्यमान थी। किन्तु ग्यारवीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म का पतन हो चुका था। अब जो बौद्ध धर्म प्रचलित हुआ था, यह बौद्ध और शाक्त धर्मों का सम्मिश्रण था और केवल देश के एक कोने में बंगाल और बिहार तक सीमित था। इसके विपरीत जैन धर्म गुजरात और राजपूताना में फैल गया। सामाजिक स्तर पर ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा में वृद्धि से शैव तथा वैष्णव धर्म सामान्य जनता तक पहुँच चुके थे।[134]

इस्लाम की अपनी संस्कृति तथा परम्पराएं थी। एक व्यक्ति के सच्चा मुस्लिम होने की पहचान का निर्धारण करने वाले पाँच बिन्दु हैं- ऐकेश्वरवाद में विश्वास करना, दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ना, जीवन में एक बार

[134] वर्मा, हरिश्चन्द्र (सं.), *मध्यकालीन भारत,* हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भाग-1, 2005, पृ. 113

हज यात्रा करना, रमज़ान के दिनों में रोज़ा रखना तथा अपनी वार्षिक आय का चालीसवां हिस्सा दान करना।

मध्य एशिया में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना हेतु धन प्राप्ति के उद्देश्य से महमूद गजनवी द्वारा किए गए आक्रमणों से भारत के परिदृश्य में परिवर्तन हुआ। गजनवी से पहले भारत पर यूनानियों, कुषाणों, शकों, हूणों आदि के आक्रमण हुए किन्तु कालांतर में भारतीय संस्कृति ने इन्हें अपने में आत्मसात कर लिया। गजनवी के आक्रमण का व्यापक प्रभाव पड़ा। इन आक्रमणों से बारहवीं शताब्दी के मुस्लिम आक्रमणकारी मुहम्मद गौरी को प्रेरणा मिली तथा उसके माध्यम से भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना संभव हुई। गौरी ने तराईन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज चौहान को पराजित कर भारत में दिल्ली के निकट इन्द्रप्रस्थ को राजधानी बनाकर कुतुबुद्दीन ऐबक को शासक नियुक्त किया। परवर्ती काल में इल्तुतमिश की इक्ता व्यवस्था तथा तुर्कान-ए-चिहलगानी[135], रज़िया सुल्ताना की बहादुरी, बलबन के राजत्व सिद्धांत[136] ने भारत में सल्तनत के शासन की नीव का निर्माण किया जिसे दक्षिण तथा उत्तरी राज्यों में सल्तनत का विस्तारक एवं बाजार व्यापार नियंत्रण नीति[137] को लागू करने वाले अलाउद्दीन खिलजी, व्यापक स्तर पर प्रशासनिक सुधार करने वाले फिरोजशाह तुगलक, सैय्यदवंशीय खिज्र खाँ, बहलोल तथा सिकन्दर लोदी प्रभृति राजाओं ने भवन का रूप प्रदान किया।

पानीपत के प्रथम युद्ध (1526 ई.) तथा खानवा के युद्ध (1527) में बाबर की विजयों ने भारत में मुगल वंश की सत्ता की स्थापना की। मुगलवंश के महान् सम्राट अकबर ने भारतवर्ष के अधिकांश प्रदेशों पर अपना आधिपत्य जमाकर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की तथा उसमें सुदृढ़ शासन प्रबन्ध स्थापित किया। उसने भारतवर्ष में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए हर सम्भव प्रयास किया किन्तु परवर्ती मुगल सम्राट विशेषकर शाहजहाँ तथा औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीतियों ने भारतीय समाज में खलबली पैदा की।

मध्यकालीन सम्राटों ने भारत में इस्लाम का प्रसार करने के लिए दो तरीके अपनाये प्रथम तलवार के बल पर तथा दूसरा शान्तिपूर्ण तरीके से। मुस्लिम शासकों ने तलवार के बल पर हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान

---

[135] इक्ता व्यवस्था से आशय विजित भू-भाग के नियंत्रण से है। बड़े इक्ताओं को राजस्व वसूलने के साथ प्रशासनिक अधिकार प्राप्त थे। छोटे इक्ताओं का कार्य सैनिक सेवा के बदले भू राजस्व वसूलना था। इल्तुतमिश ने इसे प्रशासनिक नौकरशाही का रूपदे दिया था। केन्द्रीय प्रशासन को सुचारु रखने के लिए विश्वासपात्र 40 गुलामों का दल बनाया जिसे उच्च प्रशासनिक अधिकार प्राप्त थे जिसे तुर्कान-ए-चिहलगानी कहा गया।

[136] सुल्तान अर्थात् राजा का पद ईश्वरकृत है तथा सुल्तान की निरंकुशता ही प्रजा को उसके प्रति वफादार बना सकती है। दरबार में सिजदा तथा पैबोस की पृथाओं को लागू करना, भयंकर व्यक्तित्व, जनसाधारण में भय व्याप्त करना तथा खलीफा की सत्ता को स्वीकार करना ये बलबन के राजत्व सिद्धांत की विशेषताए हैं।

[137] सेना की आवश्यकता को देखते हुए अलाउद्दीन खिलजी ने वस्तुओं के दाम सस्ते तथा निश्चित कर दिए जिसे बाजार व्यापार नियंत्रण नीति कहते हैं।

बनाया। युद्ध में बन्दी बनाये गए स्त्री पुरूषों को भी बलपूर्वक मुस्लिम धर्म ग्रहण करवाया गया। कुछ उदाहरणों से पता चलता है कि मुसलमानों ने शान्तिपूर्ण तरीकों से भी इस्लाम- का प्रचार किया। अरब के व्यापारियों ने सर्वप्रथम दक्षिणी भारत में इस्लाम का प्रचार किया। उन्होंने भारत के पश्चिमी तट पर घरों का निर्माण किया। उन्होंने हिन्दुओं के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए। मुस्लिम सन्तों ने भी भारत में इस्लाम के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सूफी सन्तों के चरित्र, आदर्शों एवं चमत्कारों से हिन्दू लोग काफी प्रभावित हुए और उन्होंने इस्लाम धर्म को स्वीकार किया।

मुस्लिम शासक हिन्दुओं से अत्यधिक मात्रा में कर वसूल करते थे। जैसे कि जजिया कर एवं तीर्थ यात्रा कर हिन्दुओं से लिया जाता था, मुसलमानों से नहीं। जजिया एक धार्मिक कर था जो हिन्दू इस्लाम स्वीकार नहीं करता उसे यह कर देना पड़ता था। मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं से भूमि कर भी अधिक लिया जाता था। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं को अपने तीर्थ स्थानों की यात्रा करने के लिए भी कर देना पड़ता था। इसका परिणाम यह हुआ कि कई हिन्दू मुसलमान बन गए तथा उनकी स्त्रियों को मुस्लिम परिवारों के घर पर कार्य करने के लिए बाध्य होना पड़ा। हिन्दू समाज तथा धर्म की संकीर्णता के कारण भी भारत में इस्लाम का तीव्र गति से प्रसार हुआ। हिन्दू समाज में शूद्रों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। इसलिए इस जाति के अधिकांश लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया क्योंकि उन्हें मुस्लिम समाज समानता का अधिकार प्रदान कर रहा था। पुरुषोत्तम अग्रवाल का मानना है कि भारतीय संस्कृति में इस्लाम का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि इसने दलित जाति समूहों के सामने शोषण और आत्मगौरव- विलोपन से मुक्ति पाने की एक संभावना प्रस्तुत की।[138]

सल्तनतकालीन शासकों ने प्रशासन व्यवस्था शरीयत के कानूनों के अनुसार लागू की। उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था। सुल्तान की सहायता के लिए वजीर अर्थात् प्रधानमंत्री, दीवान-ए-मुमालिक अर्थात् सैन्य प्रमुख, दबीर-ए-खास (शाही आदेशों तथा पत्र व्यवहार का प्रमुख), विदेश मंत्री दीवान-ए-रसालात, सद्र-उस-सुदूर अर्थात् दान विभाग का अध्यक्ष, न्यायकर्ता काजी इत्यादि प्रमुख मंत्रालय हुआ करते थे। मुगल शासन एक अत्यंत केन्द्रीकृत नौकरशाही व्यवस्था थी। प्रभुसत्ता की मुगल अवधारणा में राजतंत्र की निरंकुश शक्ति पर बल दिया गया था।[139] मुगलकाल में राजस्व व वित्तीय मामलों का मंत्री वजीर, सैन्य प्रशासन का मीर बक्शी, धार्मिक तथा न्याय का प्रमुख सद्र तथा कारखानों एवं भण्डारों का प्रधान मीर सामान शासन

[138] अग्रवाल, पुरुषोत्तम, *संस्कृति: वर्चस्व और प्रतिरोध,* राधाकृष्ण, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1995, पृ. 29

[139] वर्मा, हरिश्चन्द्र, *मध्यकालीन भारत,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भाग- 2, 2006, पृ. 289

संचालन में सम्राट की सहायता करते थे। सल्तनतकाल तथा मुगल दोनों ही समय में प्रांतीय तथा स्थानीय शासन का भी इस्लामिक स्वरूप किया गया। मुगल सम्राट अकबर द्वारा विस्तृत साम्राज्य के सुचारू संचालन के लिए मनसबदारी प्रथा[140] का प्रचलन किया गया जिससे केन्द्रीय सत्ता अधिक मजबूत हुई।

स्थापत्य के क्षेत्र में इस्लामिक शैलियों के भारतीय शैलियों के साथ सम्मिश्रण से इण्डो-इस्लामिक शैली का जन्म हुआ जिसकी मुख्य विशेषताओं में नुकीले मेहराब, गुम्बद, ऊँची तथा संकरी मीनारें, चूने तथा कंकरीट का प्रयोग, इमारतों में चित्रकारी इत्यादि सम्मिलित थी। मुगलकाल में सफेद संगमरमर तथा लाल पत्थर के प्रयोग से स्थापत्य की चरम परिणति ताजमहल तथा लालकिला के रूप में दृष्टिगत होती है। संगीत के क्षेत्र में ख्याल, गज़ल, कव्वाली, वीणा वादन, लोकसंगीत प्रभृति विधाएं विकसित हुई।

मध्यकालीन संस्कृति के प्रभावस्वरूप भारत में हिन्दी, उर्दू तथा अधिकतर उत्तर भारतीय भाषाओं का जन्म हुआ। प्रशासन की भाषा फ़ारसी को बनाया गया। रोमिला थापर का मानना है कि फ़ारसी केवल सरकारी भाषा नहीं रही बल्कि इसका साहित्यिक प्रभाव भी पड़ा। सरकारी भाषा के रूप में फ़ारसी ने संस्कृत को उत्तरी भारत के अनेक राज्यों में अपदस्थ कर दिया, जिससे प्रादेशिक भाषाओं के प्रयोग को प्रोत्साहन मिला।[141] भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि मुस्लिम साहित्यकारों में प्रमुख अल्बेरेनी, अमीर खुसरो, बरनी, बाबर, गुलबदन बेग़म, अबुल फज़ल, बदायूँनी, जहाँगीर, अब्दुल हमीद लाहौरी, खाफ़ी खाँ इत्यादि मध्यकाल की ही देन हैं। हिन्दी भाषा के आदिकालीन रासो साहित्य, मध्यकालीन भक्ति साहित्य, रीतिकालीन श्रृंगारिक तथा ओजस्वी साहित्य इसी कालखण्ड में लिखा गया। संस्कृत के प्रमुख ग्रंथों गीत गोविन्द, मिताक्षरा, राजतरंगिणी, हम्मीर महाकाव्य, सौन्दर्यलहरी तथा रसगंगाधर इत्यादि का रचनाकाल यही युग था। दर्शन के क्षेत्र में अद्वैत-वेदांत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा अन्य संबधित दर्शन, नव्य-न्याय दर्शन, शैव तथा प्रत्यभिज्ञा दर्शन, इस्लामिक सूफ़ीवादी दर्शन का विकास इसी काल में हुआ।

1.4.8. आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति

सोलहवीं शताब्दी के आरंभिक दशक में यूरोप में वाणिज्यवाद[142] की नीति का विकास हुआ। वाणिज्यवाद ने विभिन्न देशों की कम्पनियों को व्यापार विस्तार करने के लिए प्रेरित किया। भारत तथा यूरोप के बीच प्राचीन काल से ही व्यापारिक संबंध रहे हैं। मध्यकाल में भी पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी तथा अंग्रेज कम्पनियों

[140] मनसब अधीनस्थ घोड़ों और सवारों की संख्या के आधार पर बनाया गया मुग़ल राजदरबार का एक पद था। मनसबदारी प्रथा अधीनस्थ घोड़ों और सवारों की संख्या पर आधारित सरकारी पदानुक्रम थी।

[141] *भा.इ.*, पृ. 283

[142] राज्य द्वारा व्यापार की वृद्धि हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करने तथा शक्ति के प्रयोग से उपनिवेशों में व्यापार का संरक्षण करने को ही वाणिज्यवाद कहा जाता है।

ने भारत के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित किए। कालांतर में औरंगजेब के मुगल उत्तराधिकारियों की शक्तिहीनता तथा अयोग्यता का फायदा उठाते हुए इग्लैण्ड की ईस्ट इण्डिया कंपनी ने प्लासी तथा बक्सर के युद्धों में विजय के पश्चात् बंगाल पर अपना शासन स्थापित किया। बंगाल के माध्यम से अंग्रेजों ने शीघ्र ही भारत को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन कर लिया। 1857 के विद्रोह के पश्चात् भारत पर प्रत्यक्षतः इंग्लैण्ड की महारानी का शासन स्थापित हो गया तथा भारत इंग्लैण्ड का उपनिवेश बन गया। डॉ. शिवकुमार गुप्त का मानना है कि आंग्ल प्रभुत्व स्थापित होने के बाद भारतीय संस्कृति अक्षुण्ण नहीं रह पाई क्योंकि आंग्ल विचारधारा ने संस्थागत परिवर्तन के साथ- साथ वैचारिक परिवर्तन का भी प्रयास किया। यह भारतीय मन को अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा से अभिप्रेरित था। पश्चिमी शिक्षा इस उद्देश्य की सिद्धि में एक सशक्त उपकरण सिद्ध हुई।[143]

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व हिन्दू शिक्षा के केन्द्र गुरुकुल थे जिनमें उच्च जातियों के लोग ही प्रवेश पा सकते थे। निम्न जातियों तथा स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था। मुस्लिम शिक्षा के केन्द्र मदरसे होते थे। हिन्दुओं की शिक्षा संस्कृत में तथा मुस्लिमों की फारसी एवं अरबी भाषाओं में दी जाती थी। अंग्रेजों के साथ भारत आये ईसाई मिशनरियों ने ईसाई धर्म के प्रचारार्थ यहाँ आधुनिक शिक्षण संस्थान खोले जिनमें बिना भेदभाव के कोई भी प्रवेश पा सकता था। अंग्रेजों के द्वारा प्रारंभ में भारतीय विद्याओं के अध्ययन के लिए कलकत्ता में मदरसा एवं फोर्ट विलियम कॉलेज तथा बनारस में संस्कृत कॉलेज की स्थापना की गई, जिनके माध्यम से प्राचीन भारतीय ज्ञान को संवर्धन का प्रयास किया गया। मीनाक्षी सहाय का मानना है कि प्राच्यवादियों ने भारत में स्कूलों की स्थापना, भाषाओं को नियोजित किया, भारत में छापाखाना व प्रकाशन-कार्य आरंभ किया, पुस्तकों, पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों और संपर्क के अन्य साधनों को विकसित किया। उन्होंने भारत में प्रथम वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं का निर्माण किया और यूरोपीय चिकित्सा का अध्ययन आरंभ किया।[144] प्राच्यवादी भारतीय संस्कृति के पाश्चात्यीकरण के विरोधी थे। वे भारतीय संस्कृति का आधुनिकीकरण प्राचीन हिन्दू जीवन मूल्यों के आधार पर चाहते थे जिसके लिए वे उपयोगी यूरोपीय विचारों के सम्मिश्रण को भी स्वीकार करते थे। इससे परम्परागत इस्लामी शिक्षा तथा जाति आधारित हिन्दू शिक्षा व्यवस्था का प्रचार-प्रसार हुआ।

भारत में शिक्षा के प्रसार हेतु 1813 के कंपनी के चार्टर में प्रथम बार कुछ राशि का प्रावधान किया गया जिसके तहत बम्बई, मद्रास, आगरा, मसलीपट्टम तथा नागपुर में कई आधुनिक अंग्रेजी महाविद्यालयों की

---

[143] *भा.सं.मू.,* पृ. 409

[144] शुक्ल, आर.एल. (सं.), *आधुनिक भारत का इतिहास,* हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2006, पृ. 302

स्थापना हुई। 1854 ई. में मैकाले ने घोषणा की कि कानूनों के ज्ञान के लिए संस्कृत, अरबी और फारसी के शिक्षालयों पर धन व्यय करना मूर्खता है। उन्हें बंद कर सरकार को हिंदू और मुस्लिम कानूनों को अंग्रेजी में संहिताबद्ध कर देना चाहिए। प्राच्य शिक्षा की वर्तमान संस्थाओं का अंग्रेजी शिक्षा के संवर्धन के लिए प्रयोग करना चाहिए। अंग्रेजी भाषा पाश्चात्य भाषाओं में भी सर्वोपरि है।[145] मैकाले-शिक्षा योजना के पश्चात् संपूर्ण भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी कर दिया गया। उसने देशी भाषाओं के साहित्य के विकास पर बल दिया। मैकाले की संरचना परवर्ती भारतीय शिक्षा व्यवस्था का प्रतिमान बनी जिसके आधार पर 1857 में कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई में विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भारतीयों द्वारा स्थापित किए गए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय संस्कृति के स्वरूप को पुनः प्रचारित किया। यूरोपीय शिक्षा पद्धति के फलस्वरूप जॉन लॉक, रूसो, दिदरो, वाल्तेयर, मिल्टन, बर्क, मिल, स्पेन्सर इत्यादि पाश्चात्य विद्वानों के आधुनिक विचारों से भारतीय प्रभावित हुए। कुछ यूरोपीयन देशों में जाकर अध्ययन करके लौटे। उन्होंने वहाँ का स्वतंत्र तथा आधुनिक वातावरण देखा जिसे वे भारत में लागू करवाना चाहते थे। दीन बंधु, बंकिमचन्द्र, भारतेन्दु प्रभृति भारतीय साहित्यकारों के स्वातंत्र्यप्रेम आधारित लेखन ने भारत में राष्ट्रवाद की लहर पैदा की। लगभग संपूर्ण भारत में हिन्दी भाषा को राष्ट्रवाद के प्रचार-प्रसार का माध्यम स्वीकार किया गया। कांग्रेस की स्थापना, क्रांतिकारी शक्तियों की उत्पत्ति तथा महात्मा गांधी के भारत की राजनीति में आगमन से भारतीयों में पनप रहे राष्ट्रवादी सिद्धांत ने चरम सीमा प्राप्त की। महात्मा गांधी द्वारा प्रायोजित सविनय अवज्ञा, असहयोग तथा भारत छोड़ो जैसे आन्दोलनों ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को ऊर्जा प्रदान की। महात्मा गांधी ने भारतीय राजनीति में धर्म का प्रयोग किया। धर्मविहीन राजनीति की तुलना आत्माविहीन शरीर से मानते हुए उनका मानना था, "मेरे नजदीक धर्मविहीन राजनीति कोई चीज नहीं है, बल्कि विश्वव्यापी सहिष्णुता का धर्म है। नीतिशून्य राजनीति सर्वथा त्याज्य है।[146]"

अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् भारतीय समाज में संस्कृतीकरण तथा पश्चिमीकरण का प्रभाव परिलक्षित होता है। संस्कृतीकरण से आशय श्रीनिवास ने एक ऐसी प्रक्रिया से माना है जिसके अन्तर्गत एक निम्न हिन्दू जाति, या जनजाति व अन्य समूह, प्रायः उच्च, द्विज जाति के अनुरूप अपनी प्रथाओं, रीति-रिवाजों, विचारधारा तथा जीवनशैली को परिवर्तित करते हैं।[147] भारतीय समाज और संस्कृति में 150 वर्ष से अधिक अंग्रेजी शासन के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए परिवर्तन, जिनमें विभिन्न स्तरों..... प्रौद्योगिकी, संस्थाओं विचारधारा

---

[145] शुक्ल, आर.एल. (सं.), *आधुनिक भारत का इतिहास,* हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2006, पृ. पृ. 305

[146] सिंह, महेश प्रसाद, *गांधी के सपनों का भारत,* ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2009, पृ. 34

[147] M.N. Srinavas, *Social Change in Modern India,* Los Angeles, California, 1996, p. 6

व मूल्यों में परिवर्तन शामिल है।[148] पश्चिमीकरण के महत्त्वपूर्ण हिस्से मानवतावाद तथा तार्किकवाद हैं जिसके फलस्वरूप भारत में अनेक संस्थात्मक व सामाजिक श्रृंखलाबद्ध सुधार हुए।[149]

धर्म का संस्कृतीकरण की प्रक्रिया के तहत पुनर्पाठन किया गया। जहाँ धर्म को प्राचीनकाल में आदर्शों का पिटारा अथवा नैतिकता का पुंज माना जाता था, वहीं आधुनिक काल में धर्म का आशय सम्प्रदाय के रूप में परिवर्तित हो गया। धर्म को प्राचीनकाल में कर्त्तव्य का पर्याय माना जाता था तथा उसी के अनुसार लोग व्यवहार करते थे। तत्कालीन समय में असमतामूलक वर्ण व्यवस्था तथा जाति व्यवस्था विद्यमान थी। जो एक वर्ग विशेष को सुविधा युक्त तथा एक वर्ग विशेष को नरकीय जीवन यापन करने पर विवश करती थी। समाज ईश्वरीय भय से तथा भाग्यवाद जैसे सिद्धांतों की वजह से इनका पालन करता था।

बीसवीं शताब्दी में भारत में पश्चिमीकरण के प्रभावस्वरूप तथा भारतीयों की ईसाई धर्म के प्रति निष्ठा की वृद्धि के फलस्वरूप धर्मसुधार आंदोलन प्रारंभ हुए। दयानन्द सरस्वती ने हिन्दुओं को 'वेदों की ओर लौटो' का संदेश सुनाया। उन्होंने जाति-पांति का विरोध किया तथा गुरुकुलों की स्थापना की जिनमें स्त्रियों तथा शूद्रों को भी प्रवेश दिया गया। विवेकानन्द ने प्राचीन भारतीय दार्शनिक पृष्ठभूमि को वैश्विक स्तर पर प्रचारित किया। राजाराम मोहन राय ने सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह के लिए प्रयास किए। ज्योतिबा फुले, राजाराम मोहन राय, अम्बेडकर, नारायण गुरु, पेरियार ई. वी. रामास्वामी प्रभृति समाज सुधारकों ने भारतीय समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था का विरोध किया तथा अधम समझी जाने वाली जातियों को अस्मिता तथा सम्मान के साथ रहने तथा उनका जीवन स्तर सुधारने के लिए विभिन्न प्रकार के आंदोलन किए जिसका प्रभाव इक्कीसवी सदी में दलित साहित्य, दलित राजनीति, दलित अर्थव्यवस्था इत्यादि की विकसित तथा पल्लवित अवधारणाओं में देखा जा सकता है।

अंग्रेजों के आगमन से भारतीय चित्रकला पर प्रभाव पड़ा। पाश्चात्य तकनीक, माध्यम तथा भारतीय कला के मिश्रण से उत्कृष्ट कला विकसित हुई। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में राजा रवि वर्मा ने पाश्चात्य तकनीक की सहायता से भारतीय समाज के जीवनयापन के तरीकों तथा पौराणिक कथानकों को अपनी कूची से तैल चित्रों में उतारा। चित्रकला के क्षेत्र में बंगाल स्कूल का उद्भव हुआ जिसने अवनीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे प्रख्यात चित्रकार को पैदा किया। स्वतंत्रता के पश्चात् अलक्षित संकेतों के माध्यम से रूपायन की पश्चिमी शैली को भारतीय चित्रकारों ने स्वीकारा। स्थापत्य के क्षेत्र में यूरोपीय शैली को सम्मान मिला। यांत्रिक

---

[148] M.N. Srinavas, *"A note on Sanskritization and Westernization" in caste in Modern India and other Essay,* London, Asia Publishing House, 1962, p. 55

[149] *भा.प.आ.,* पृ. 31

विकास तथा फैरो-कंक्रीट के प्रयोग से मजबूत भवनों का निर्माण संभव हुआ। राष्ट्रपति भवन, सचिवालय, संसद तथा आधुनिक विश्वविद्यालयों का निर्माण यूरोपीय शैली के आधार पर किया गया है।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वामी मुगल सम्राट थे। अंग्रेजों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को साम्राज्यवादी ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की आवश्यकता के अनुरूप बना दिया। 18 वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति हुई जिसके फलस्वरूप इंग्लैण्ड में विभिन्न प्रकार के औद्योगिक कारखानों का निर्माण हुआ। इनके लिए कच्चे माल की आवश्यकता ने भारत में कृषि व्यवस्था को बढ़ावा दिया। परम्परागत कृषि पद्धति में सुधार किया गया। नवीन तकनीकों का प्रयोग किया गया। अंग्रेज भारतीय कृषकों से चाय, कॉफी, नील, जूट, अफीम इत्यादि व्यवसायिक फसलें पैदा करवाते थे। सिंचाई व्यवस्था में परिवर्तन न के बराबर किए गए। अंग्रेजों ने भारत में भू-राजस्व हेतु भू-स्वामित्व के नवीन नियम लागू किए। ये नियम संपूर्ण भारत में एक जैसे नहीं थे। बंगाल, बिहार, उड़ीसा में जमींदारों के साथ समझौता किया गया। उत्तर-प्रदेश तथा पंजाब आदि पश्चिमी प्रदेशों में सम्पूर्ण ग्राम अर्थात् महल के साथ तथा दक्षिण में मद्रास एवं बम्बई, असम में रय्यत के साथ समझौता किया गया। भूमि के व्यक्तिगत सम्पत्ति हो जाने के कारण, इसके क्रय-विक्रय, नीलामी आदि का प्रचलन बढ़ा।

परंपरागत भारतीय उद्योग धन्धे, ब्रिटिश उत्पादित सामग्री के निर्बाध आगमन से नष्ट होने लगे। उद्योगों से उत्पन्न माल की खपत के लिए जनसंख्या के कारण भारतीय बाजार सर्वाधिक उपयुक्त था। इंग्लैण्ड की निर्मित सामग्री ने भारतीय बाजार में स्थान प्राप्त कर लिया क्योंकि वह भारतीय सामग्री की अपेक्षा सस्ती थी। अंग्रेजों ने औद्योगिक आवश्यकताओं के अनुरूप भारत में रेल, तार, डाक, सड़क तथा अन्य मूलभूत संरचनाओं का विकास किया।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में विश्वस्तरीय अर्थव्यवस्था दो भागों साम्यवादी तथा पूँजीवादी में बंट गई। इन दोनों अर्थव्यवस्थाओं के बीच स्वतंत्र भारत देश ने मिश्रित अर्थव्यवस्था को स्वीकार किया। कृषि के विकास के साथ-साथ ही भारतीय सरकारों ने वृहत् औद्योगिक ईकाइयाँ, महारत्न कम्पनियाँ, कुटीर उद्योग तथा लघु उद्योग सभी के विकास पर बल दिय। प्राचीनकाल में अर्थ को लेकर भारतीय दृष्टिकोण जहाँ इसे केवल सामाजिक दायित्वों के निर्वाह का साधन स्वीकार करता था, वहीं वर्तमान समय में यह सम्पन्नता तथा समृद्धता का आधार बन गया है। अमीरी-गरीबी के स्तर तथा किसी भी देश के विकसित तथा अविकसित होने का आधार अर्थ ही है। प्राचीन कालीन अर्थशास्त्र के प्रतिमान बदल रहे हैं। प्राचीनकालीन स्मृतिकारों ने भारत में शूद्र अर्थात् आधुनिक दलित, आदिवासी तथा पिछड़ा समाज को धन संचय करने पर

रोक लगा दी थी[150] वर्तमान में प्रतियोगिता तथा उद्यमिता कौशल के आधार पर कोई भी पूंजीपति बन सकता है तथा जनतंत्रीय सरकारें भी लोककल्याणकारी कार्यों के माध्यम से उनके उत्थान के लिए प्रयास कर रहीं है।

आधुनिक भारत में स्त्री सशक्तीकरण की अवधारणा पर बल दिया जा रहा है। स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए कानूनी तौर पर प्रयास किए गए हैं। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, दहेज निषेध अधिनियम, घरेलू हिंसा अधिनियम बनाकर सरकारों ने अपनी जबावदेही का परिचय दिया है। आज वैश्वीकरण के युग में अर्थ के क्षेत्र में महिलाओं को भी अवसर प्राप्त हुए हैं। वे भी आत्म निर्भर बनी हैं। वैश्वीकरण ने भारतीय जनमानस की उस परम्परागत छवि को झकझोर दिया है जहाँ वह आर्थिक रूप से कमजोर तथा सामाजिक रूप से शोषित थी। आज के विश्व में इन्द्रा नूयी, रेनू कोचर जैसी भारतीय महिलाओं ने अपना स्थान बनाया है।

वैश्वीकरण के दौर में बाजारीकरण तथा दिखावे की संस्कृति के विकास के कारण भारत में नैतिक संबंधों की व्याख्या परिवर्तित हुई है। प्राचीन काल में जहाँ काम एक पुरुषार्थ था जिसका आशय संतानोत्पत्ति के लिए गृहस्थों द्वारा निर्वाह किए गए एक कर्त्तव्य मात्र से लिया जाता था, सम्प्रति भौतिकवादी चका-चौंध में यह काम-वासना तथा यौन संबंधों का पर्याय मात्र बनकर रह गया है।

विवेचनोपरांत यह कहा जा सकता है कि संस्कृति मानव की सर्वश्रेष्ठ धरोहर है। जीवन जीने अथवा विचार करने के उन सभी तरीकों को समग्र रूप से संस्कृति कहा जाता है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते हैं तथा जिन्हें समाज स्वीकृति प्रदान करता है। सभ्यता का आधार संस्कृति में निहित होता है। संस्कृति मानव के व्यक्तिगत जीवन एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष की परिचायिका है और सभ्यता उसके सामाजिक जीवन एवं भौतिक अभ्युदय की प्रदर्शिका है। आध्यात्मिकता, मानववाद, कर्मवाद, पुनर्जन्म में विश्वास, समन्वयवाद तथा सहिष्णुता इत्यादि विशिष्टताएँ भारतीय संस्कृति के स्वरूप का निर्धारण करती हैं। भारतीय संस्कृति का पल्लवन विभिन्न कालखण्डों में हुआ है। पुरातनकालीन अच्छे अंशों के साथ ही नवीन विचारों को ग्रहण करते हुए भारतीय संस्कृति मानवीय सभ्यता के प्रारंभिक युग से आधुनिक युग तक पहुँची है।

****

[150] शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः। शूद्रोऽपि धनमासाद्य ब्राह्मणानैव बाधते॥ *म.स्मृ.,* 10/129

द्वितीय अध्याय

भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि ग्रंथ मिलिन्दपञ्ह

2.1. पालि साहित्य में मिलिन्दपञ्ह का वैशिष्ट्य

भगवान् बुद्ध ने जनसाधारण द्वारा बोली जाने वाली पालि भाषा को अपने उपदेशों का माध्यम बनाया। बुद्ध के समय उनके विचारों को लिखित रूप नहीं दिया गया था। उनके महापरिनिर्वाण के पश्चात् संघ के सम्यक् संचालन के लिए तथा बुद्ध वचनों को संकलित करने हेतु महाकस्सप के सभापतित्व में राजगृह में प्रथम बौद्ध संगीति बुलाई गई। इस बौद्ध संगीति में धम्म तथा विनय के नियमों को निश्चित किया गया। बुद्ध परिनिर्वाण के 100 वर्ष बाद वज्जि के भिक्खुओं ने धम्म से परे दस नियमों का पालन करना प्रारंभ कर दिया। ये नियम हैं- खाली सींग में नमक ले जाना, दो अंगुल चौड़ी छाया अर्थात् मध्यान्ह के बाद भोजन करना, एक ही दिन में दूसरे गांव में जाकर दुबारा भोजन करना, एक ही सीमा में अनेक स्थानों पर उपोसथ[151] करना, किसी कर्म को कर लेने के बाद उसके लिए अनुमति प्राप्त करना, रूढ़ियों को शास्त्र मान लेना, भोजनोपरांत छाछ पीना, ताडी पीना, किनारे रहित कंबल का प्रयोग करना और सोने तथा चांदी को स्वीकार करना।[152] इन नियमों पर विचार करने हेतु सब्बकामी के सभापतित्व में वैशाली में द्वितीय बौद्ध संगीति बुलाई गई, जिसमें इन दस वस्तुओं को धम्म तथा विनय के विरुद्ध घोषित किया गया। वज्जिपुत्रों ने दूसरी महासंगीति बुलाकर इन दस वस्तुओं को स्वीकार कर लिया। परिणामतः बौद्ध धर्म दो सम्प्रदायों स्थविरवाद तथा महासांघिक में विभक्त हो गया, जो आगे चलकर अट्ठारह उप-सम्प्रदायों[153] में बँट गया।

मौर्य सम्राट अशोक ने मोग्गलिपुत्त तिस्स के सभापतित्व में पाटलिपुत्र में तृतीय बौद्ध संगीति आयोजित की। इस संगीति में भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं का नये सिरे से विभाजन किया गया। सुत्तपिटक तथा विनयपिटक के अलावा अभिधम्म नाम से तीसरा पिटक जोड़ा गया, जिसमें धम्म के सिद्धांतों की दार्शनिक व्याख्या की गई थी। मोग्गलिपुत्त ने महासांघिकों के सिद्धांतों को खण्डित करने वाला कथावत्थु नामक ग्रंथ लिखा, जिसे

---

[151] बौद्ध भिक्खुओं द्वारा एक मास में चार दिन किए जाने वाले व्रत को उपोसथ कहा जाता है। ये चार दिन हैं मास की दोनों अष्टमी, अमावस्या तथा पूर्णिमा।

[152] तेन खो पन समयेन वस्ससतपरिनिब्बुते भगवति वेसालिका वज्जिपुत्तका भिक्खू वेसालियं दस वत्थूनि दीपेन्ति– कप्पति सिङ्गिलोणकप्पो, कप्पति द्वङ्गुलकप्पो, कप्पति गामन्तरकप्पो, कप्पति आवासकप्पो, कप्पति अनुमतिकप्पो, कप्पति आचिण्णकप्पो, कप्पति अमथितकप्पो, कप्पति जळोगिं पातुं, कप्पति अदसकं निसीदनं, कप्पति जातरूपरजतन्ति। *वि.पि* , (*चूळवग्ग*, 12/1)

[153] कथावत्थु में इन सम्प्रदायों के सिद्धांतों का निरसन करते हुए स्थविरवाद की स्थापना का विवेचन प्राप्त होता है।

अभिधम्मपिटक के ही अन्तर्गत परिगणित किया जाता है। तृतीय बौद्ध संगीति के बाद पिटक साहित्य का स्वरूप निर्धारित हो गया। सुत्त, विनय तथा अभिधम्म इन तीनों को सम्मिलित रूप में त्रिपिटक कहा गया।

पालि त्रिपिटक साहित्य का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भाग सुत्तपिटक है, क्योंकि बुद्ध के धम्म का यथातथ्य रूप में विवरण इसमें प्राप्त होता है। सुत्तपिटक के पाँच भाग दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुत्तनिकाय, अंगुत्तरनिकाय तथा खुद्दकनिकाय किए गए। दीघनिकाय में दीर्घ आकार के ब्रह्मजाल, सामञ्ञफल, लोहिच्च, महानिदान, सिंगालोवाद आदि 34 सुत्तों का संग्रह सीलक्खन्धवग्ग, महावग्ग तथा पाथिकवग्ग नामक तीन वर्गों में किया गया है। मज्झिमनिकाय में मध्यम आकार के 152 सुत्तों का संग्रह मूलपरियाय, सीहनाद, ओपम्म, महायमक, चूळयमक, गहपति, भिक्खु, परिब्बाजक, राज, बाह्मन, देवदह, अनुपद, सुञ्ञता, विभंग तथा सळायतन वर्गों में किया गया है। छोटे-बड़े सभी प्रकार के सुत्तों का संग्रह संयुत्तनिकाय में किया गया है। परम्परा के अनुसार संयुत्त निकाय के कुल सुत्त 7762 हैं।[154] अंगुत्तरनिकाय ग्यारह निपातों में विभक्त है, जिनका वर्गीकरण 169 वर्गों में किया गया है। इन वर्गों में 2308 सुत्तों का संग्रह है। संख्याबद्ध शैली इस निकाय की विशेषता है। उदाहरण के तौर पर एकक निपात में एक धर्म संबंधी, दुक निपात में द्विविध बल, ज्ञान इत्यादि का वर्णन किया गया है। खुद्दकनिकाय खुद्दकपाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, सुत्तनिपात, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा, जातक, निद्देस, पटिसम्भिदामग्ग, अपदान, बुद्धवंश, चरियापिटक इन पन्द्रह स्वतंत्र ग्रंथों का संग्रह है। बर्मा की परंपरा में खुद्दकनिकाय के पन्द्रह ग्रंथों के साथ ही अन्य चार मिलिन्दपञ्ह, सुत्तसंगह, पेटकोपदेस तथा नेत्ति अथवा नेत्तिपकरण को भी सम्मिलित किया जाता है।[155] भारतीय परंपरा इस मत से सहमत नहीं है। इन ग्रंथों को अनुपिटक साहित्य के अन्तर्गत रखा गया है।

राहुल सांकृत्यायन विनय का अर्थ नियम मानते हुए विनय पिटक के विषय में कहते हैं, "इस पिटक में भिक्खु-भिक्खुणियों के आचार-संबंधी नियम तथा उनके इतिहास और व्याख्याओं को जमा किया गया है।[156]" भरतसिंह उपाध्याय ने विनयपिटक को बौद्ध भिक्खु संघ का संविधान माना है।[157] पालि विनयपिटक को सुत्त-विभंग, खन्धक तथा परिवार इन तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है। सुत्त विभंग का वर्गीकरण दोषमय है। सुत्त विभंग के दो भागों 'पाराजिक' और 'पाचितिय' में वैसे इनके शीर्षकों के अनुसार क्रमशः उन अपराधों का उल्लेख होना चाहिए था, जिनका दण्ड क्रमानुसार संघ से निष्कासन या किसी प्रकार का

---

[154] *पा.सा.इ.,* पृ. 212

[155] Bode, Mabel Haynes, *The Pali Literature of Burma,* Burma Research Society, Rangoon, 1965 (reprint) The Royal Asiatic Society, London, 1909, p. 4-5.

[156] सांकृत्यायन, राहुल(हि.अनु.), *विनय पिटक,* गौतम बुक सेन्टर, द्वितीय आवृत्ति, 2010, पृ. 3

[157] *पा.सा.इ.,* पृ. 381

प्रायश्चित है।[158] सुत्त-विभंग में भिक्खु-भिक्खुणी संबंधी नियमों के इतिहास को छोड़कर केवल नियमों का संग्रह 'पातिमोक्ख' के नाम से प्रसिद्ध है।[159] राहुल सांकृत्यायन ने विनय पिटक का हिन्दी अनुवाद करते हुए पातिमोक्ख को दो भागों भिक्खु-पातिमोक्ख तथा भिक्खुणी-पातिमोक्ख में वर्गीकृत किया है। दोनों में ही पाराजिक (जिन दोषों से संघ से निष्कासन हो), संघादिसेस (दण्ड स्वरूप संघ से कुछ समय के लिए दूर रहना), अनियत (अनिश्चित स्वरूप वाले अपराध), निस्सग्गिय (स्वीकृति के साथ प्रायश्चित वाले दोष), पाचित्तिय (प्रायश्चितोत्तर अपराध मुक्ति के नियम), पाटिदेसनीय (क्षमा याचना संबंधी नियम), सेखिय(शैक्ष्य धर्म) तथा अधिकरणसमय (संघ में विवाद संबंधी नियम) नियमों का समाहार है। सुत्त विभंग जहाँ निषेधात्मक नियमों का संग्रह है, वहीं खन्धक विधेयात्मक नियमों का संकलन है। महावग्ग तथा चूळवग्ग दो भागों में खन्धक का विस्तार है। परिवार प्रश्नोत्तर रूप में लिखा गया परवर्ती संकलन है। विनय की गुरु-परम्परा का विश्लेषण करते हुए सुत्त-विभंग तथा खन्धक में उठाए गए प्रश्नों का परिवार में उत्तर दिया गया है।[160]

आचार्य बुद्धघोस ने अभिधम्म का अर्थ उच्चतर धम्म या विशेष धम्म माना है।[161] अभिधम्मपिटक में बुद्ध धम्म तथा दर्शन संबंधी विशिष्टताओं का वर्णन है। अभिधम्म के सात प्रकरण ग्रंथ हैं- धम्मसङ्गणि, विभङ्ग, धातुकथा, पुग्गलपञ्ञति, कथावत्थु, यमक, पट्ठान। धम्मसङ्गणि में मानसिक तथा भौतिक जगत् की अवस्थाओं का संकलन कर उनका नैतिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। विभंग में धम्मसङ्गणि का ही विशद विश्लेषण 18 विभङ्गों जैसे पंचस्कंध और आयतन, धातुओं, चार आर्य सत्यों, बोध्यंग इत्यादि के आधार पर किया गया है। विभंग के 18 विभंगों में से प्रथम तीन स्कन्ध, आयतन तथा धातु का विशेष अध्ययन धातुकथा में किया गया है। पुग्गलपञ्ञति में व्यक्तियों संबंधी ज्ञान का अध्ययन किया गया है। कथावत्थु में दर्शन संबंधी विभिन्न विपरीत मतों का निराकरण करते हुए स्थविरवाद के मौलिक स्वरूप की चर्चा की गई है। अभिधम्मपिटक की पारिभाषिक व्याख्या यमक में तथा प्रतीत्यसमुत्पाद का विवेचन पट्ठान में किया गया है।

त्रिपिटकेतर अथवा अनुपिटक पालि साहित्य को अट्ठकथाकार आचार्य बुद्धघोस के आधार पर तीन भागों पूर्व बुद्धघोस, बुद्धघोस कालीन तथा बुद्धघोसोत्तर में बांटा गया है। पूर्व बुद्धघोस काल के पालि साहित्य में नेत्तिपकरण, पेटकोपदेस तथा मिलिन्दपञ्ह नामक तीन ग्रंथों को गिना जाता है। बुद्धघोसकाल में त्रिपिटक के

---

[158] *पा.सा.इ.*, पृ. 407

[159] वही, पृ. 408

[160] *रा.पा.इ*, पृ. 133

[161] अतिरेकविसेसत्थदीपको हि एत्थ अभि सद्दो।... अथं पि धम्मो धम्मातिरेकधम्मविसेसट्ठेन अभीधम्मो' ति वुच्चति। *अट्ठसालिनी*, उद्धृत- वही, पृ. 425

ऊपर पालिभाषा में अट्ठकथाएं लिखी गईं। भरतसिंह उपाध्याय का मानना है कि अट्ठकथाओं का मुख्य उद्देश्य त्रिपिटक के अर्थ को प्रदर्शित करना है। अट्ठकथाएं यथासम्भव कालसंबंधी, स्थान-संबंधी और साधारण इतिहास संबंधी उन परिस्थितियों को भी स्पष्ट करती हैं जिनमें बुद्ध ने अपने उपदेश दिए थे।[162] बुद्धघोस ने विनयपिटक पर समन्तपासादिका, पातिमोक्ख पर कंखावितरणी, दीघनिकाय पर सुमंगलविलासिनी, मज्झिमनिकाय पर पपञ्चसूदनी, संयुत्तनिकाय पर सारत्थप्पकासिनी, अंगुत्तरनिकाय पर मनोरथपूरणी, खुद्दकपाठ तथा सुत्तनिपात पर परमत्थजोतिका, धम्मपद पर धम्मपदट्ठकथा, जातक पर जातकट्ठवण्णना, धम्मसंगणि पर अट्ठसालिनी, विभंग पर सम्मोहविनोदिनी तथा शेष अभिधम्म ग्रंथों पर पञ्चप्पकरणट्ठकथा लिखी। इस काल की अन्य रचनाओं में बुद्धदत्त की बुद्धवंस पर मधुरत्थविलासिनी अट्ठकथा तथा धम्मपाल की खुद्दकनिकाय के उदान, इतिवुत्तक, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा तथा चरियापिटक ग्रंथों की परमत्थदीपनी अट्ठकथा प्रसिद्ध हैं। बुद्धघोसोत्तर युग में अट्ठकथाओं पर टीका ग्रंथ लिखे गए। परवर्ती काल में स्वतंत्र ग्रंथों जैसे व्याकरण, काव्यशास्त्र, छन्दशास्त्र तथा दार्शनिक ग्रंथों की रचना की गई।

पालि साहित्य में मिलिन्दपञ्ह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह ग्रंथ 'मिलिन्दपञ्हो' अथवा 'मिलिन्दपञ्हा' नामों से भी व्यवहृत किया जाता है। बुद्धघोस ने मिलिन्दपञ्ह को अपनी अट्ठकथाओं में त्रिपिटक के समान ही आदरणीय एवं सर्वोत्तम माना है। पालि साहित्य में मिलिन्दपञ्ह का वैशिष्ट्य इसके विभिन्न भाषाओं में किए गए अनुवादों से ज्ञात होता है।[163] भरतसिंह उपाध्याय का मानना है कि चीनी भाषा में मिलिन्दपञ्ह का तीन बार अनुवाद किया गया। पहला अनुवाद तीसरी शताब्दी ईस्वी में किया गया, जो पाँचवीं शताब्दी में नष्ट हो गया। दूसरा अनुवाद गुणभद्र ने सन् 435-455 के बीच किया, वह भी कालान्तर में नष्ट हो गया।[164] सम्प्रति चीनी भाषा में *'न-सियन्-पि-कियु-चिंग्' (नागसेनभिक्खु सूत्र)*[165] के नाम से प्राप्त मिलिन्दपञ्ह का अनुवाद मिलता है।

---

[162] *पा.सा.इ.*, पृ. 594

[163] 1890 में टी. डब्ल्यू. रीस डेविड्स ने 'सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट' से, आई. बी. हॉर्नर द्वारा 1963-64 में सेक्रेड बुक्स ऑफ द बुद्धिस्ट लंदन से तथा भिक्खु पेसला द्वारा 1991 में मलेशिया से इसका अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित करवाया गया। अन्य भाषाओं के अनुवादों में 1896 में तक-कु-सु द्वारा चीनी भाषा में, 1905 में एफ. ओट्टो श्रेडर तथा 1985 में नयनपोनिका थेर द्वारा जर्मन भाषा में, 1923 में लुईस फिनोट द्वारा फ्रेन्च में, 1923 में जी. केग्नोला द्वारा इटेलियन में और 1978 में क्योन्ग-सू-सो द्वारा कोरियन में किए गये अनुवाद प्रमुख हैं।

[164] *पा.सा.इ.*, पृ. 571

[165] *न-सियन्-पि-कियु-चिंग्* का टिप्पणियों सहित अंग्रेजी अनुवाद दो खण्डों में *'नागसेन भिक्खु सूत्र'* नाम से गुआन्ग जिन्ग ने 2008 में ताईवान से प्रकाशित करवाया।

मिलिन्दपञ्ह में दर्शन तथा धर्म का विशद विवेचन किया गया है। मिलिन्द द्वारा पूछे गए प्रश्नों का समाधान नागसेन ने विभिन्न प्रकार की उपमाओं के माध्यम से किया है। इससे तात्कालिक विभिन्न सांस्कृतिक पहलुओं को समझने में सहायता मिलती है। मिलिन्दपञ्ह में प्रश्नोत्तरात्मक संवाद, पद्य-गद्य मिश्रण, उपमात्मक उदाहरणों की नवीनता तथा पिटक साहित्य के उद्धरणों से युक्त भाषा का प्रयोग किया गया है।

मिलिन्दपञ्ह की भाषा शैली को आचार्य नरेन्द्रदेव ने सम्पूर्ण पालि-वाङ्मय में बेजोड़ कहा है।[166] इस संदर्भ में मिलिन्द और नागसेन का ज्ञान तथा प्रज्ञा विषयक प्रश्नोत्तरात्मक संवाद द्रष्टव्य है-

राजा आह ''भन्ते नागसेन, यस्स ञाणं उप्पन्नं, तस्स पञ्ञा उप्पन्ना'' ति?

''आम, महाराज, यस्स ञाणं उप्पन्नं, तस्स पञ्ञा उप्पन्ना'' ति।

''किं, भन्ते, यञ्ञेव ञाणं सा येव पञ्ञा'' ति?

''आम, महाराज, यञ्ञेव ञाणं सा येव पञ्ञा''ति।

''यस्स पन, भन्ते, तञ्ञेव ञाणं सा येव पञ्ञा उप्पन्ना, किं सम्मुय्हेय्य सो, उदाहु न सम्मुय्हेय्या'' ति?

''कत्थचि, महाराज, सम्मुय्हेय्य, कत्थचि न सम्मुय्हेय्या'' ति।

''कुहिं, भन्ते, सम्मुय्हेय्या'' ति?

''अञ्ञातपुब्बेसु वा, महाराज, सिप्पट्ठानेसु, अगतपुब्बाय वा दिसाय, अस्सुतपुब्बाय वा नामपञ्ञत्तिया सम्मुय्हेय्या'' ति।

''कुहिं न सम्मुय्हेय्या'' ति?

''यं खो पन, महाराज, ताय पञ्ञाय कतं 'अनिच्च'न्ति वा 'दुक्ख'न्ति वा 'अनत्ता'ति वा, तहिं न सम्मुय्हेय्या'' ति।

''मोहो पनस्स, भन्ते, कुहिं गच्छती'' ति?

''मोहो खो, महाराज, ञाणे उप्पन्नमत्ते तत्थेव निरुज्झती'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

---

[166] *बौ. ध. द.*, पृ. 33

“यथा, महाराज, कोचिदेव पुरिसो अन्धकारगेहे पदीपं आरोपेय्य, ततो अन्धकारो निरुज्झेय्य, आलोको पातुभवेय्य। एवमेव खो, महाराज, ञाणे उप्पन्नमत्ते मोहो तत्थेव निरुज्झती’’ ति।

“पञ्ञा पन, भन्ते, कुहिं गच्छती’’ ति?

“पञ्ञापि खो, महाराज, सकिच्चयं कत्वा तत्थेव निरुज्झति, यं पन ताय पञ्ञाय कतं ‘अनिच्च’न्ति वा ‘दुक्ख’न्ति वा ‘अनत्ता’ति वा, तं न निरुज्झती’’ ति।

“भन्ते नागसेन, यं पनेतं ब्रूसि ‘पञ्ञा सकिच्चयं कत्वा तत्थेव निरुज्झति, यं पन ताय पञ्ञाय कतं ‘अनिच्च’न्ति वा ‘दुक्ख’न्ति वा ‘अनत्ता’ति वा, तं न निरुज्झती’ति, तस्स ओपम्मं करोही’’ ति।

“यथा, महाराज, यो कोचि पुरिसो रत्तिं लेखं पेसेतुकामो लेखकं पक्कोसापेत्वा पदीपं आरोपेत्वा लेखं लिखापेय्य, लिखिते पन लेखे पदीपं विज्झापेय्य, विज्झापितेपि पदीपे लेखं न विनस्सेय्य। एवमेव खो, महाराज, पञ्ञा सकिच्चयं कत्वा तत्थेव निरुज्झति, यं पन ताय पञ्ञाय कतं ‘अनिच्च’न्ति वा ‘दुक्ख’न्ति वा ‘अनत्ता’ति वा, तं न निरुज्झती’’ ति।[167]

मिलिन्दपञ्ह की साहित्यिक निपुणता तथा भाषा-सौष्ठव को देखकर ए. एल. बाशम ने शंका व्यक्त की है कि मिलिन्दपञ्ह की संवाद-शैली पर प्लेटो का प्रभाव परिलक्षित होता है।[168] लेकिन यह कल्पना निराधार है। बाशम सहित अन्य पाश्चात्य विद्वानों के पास ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है, जिससे प्रमाणित किया जा सके कि नागसेन ने संवाद शैली को ग्रीक भाषा विशेषकर प्लेटो से ग्रहण किया हो। उपनिषदों के संवाद जैसे आरुणि-श्वेतकेतु,[169] प्रवाहण-जावालि[170] इत्यादि तथा त्रिपिटकों के संवाद जैसे दीघनिकाय के पायासिसुत्त एवं सक्कपञ्हसुत्त आदि नागसेन के समय से बहुत पहले से ही विद्यमान थे। अभिधम्मपिटक के कथावत्थु में प्रश्नोत्तरात्मक शैली का स्पष्ट प्रभाव नागसेन पर परिलक्षित होता है।

मिलिन्दपञ्ह में प्रश्नों का उत्तर देने की चार शैलियों एकांशव्याकरणीय, विभज्यव्याकरणीय, प्रतिपृच्छाव्याकरणीय तथा स्थापनीय की जानकारी मिलती है।[171] एकांशव्याकरणीय प्रश्न वे हैं जिनका उत्तर सीधे तौर पर दिया जा सकता है। जैसे क्या संस्कार अनित्य है? प्रश्न का उत्तर ‘हाँ’ कहकर दिया जाता है।

---

[167] *मि.प.,* 2/2/3, पृ. 32-33

[168] *अ.भा.,* पृ. 194

[169] *छान्दोग्योपनिषद्,* 6/1

[170] *बृहदारण्यकोपनिषद्,* 6/2/1

[171] चत्तारिमानि, महाराज, पञ्हब्याकरणानि। कतमानि चत्तारि? एकंसब्याकरणीयो पञ्हो विभज्जब्याकरणीयो पञ्हो पटिपुच्छाब्याकरणीयो पञ्हो ठपनीयो पञ्होति। *मि.प.,* 4/2/2, पृ. 110

जिन प्रश्नों का उत्तर विभक्त करके दिया जाता है, वे विभज्यव्याकरणीय हैं। जैसे क्या रूप तथा वेदना अनित्य हैं? इस प्रश्न का उत्तर रूप तथा वेदना को पृथक् करके दिया जाता है। प्रतिपृच्छाव्याकरणीय प्रश्न वे हैं जिनका उत्तर एक दूसरा प्रश्न पूछ कर दिया जाता है। जैसे क्या बुद्ध अनुत्तर हैं? प्रश्न का उत्तर किसी की तुलना में प्रतिप्रश्न पूछकर दिया जाता है? स्थापनीय प्रश्न वे हैं जिनका कोई उत्तर नहीं दिया जाता है। क्या संसार का अन्त हो जायेगा? क्या संसार नित्य है? क्या संसार का आदि है? इत्यादि प्रश्न स्थापनीय हैं। स्थापनीय प्रश्न मानव समुदाय के कल्याण से संबंधित नहीं हैं, अतः इनका उत्तर न दिया जाना ही उचित है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पालि साहित्य में मिलिन्दपञ्ह का विशिष्ट स्थान है।

2.2. मिलिन्दपञ्ह का लेखक

मिलिन्दपञ्ह की भाषा शैली से इसके लेखक के भारतीय होने के प्रमाण मिलते हैं। श्रीमती रीस डेविड्स ने अपने ग्रंथ *'द मिलिन्द क्वेश्चेन्स'* में मिलिन्दपञ्ह का रचयिता माणव को स्वीकार किया है।[172] इसके पीछे उनका तर्क है कि मिलिन्दपञ्ह का संवाद संभ्रान्त तरीके से भिक्खु नागसेन तथा राजा मिलिन्द के मध्य सागल नगर में हुआ। वार्तालाप के दौरान माणव सभा में विद्यमान था। उसने दोनों की बातचीत को लिखित रूप प्रदान किया। राजा मिलिन्द की मृत्यु के बाद माणव ने इस वार्ता का ग्रंथ-रूप में संपादन किया। माणव बौद्ध नहीं था। वह ब्राह्मण परिवार से था। मिलिन्दपञ्ह का बाहिरकथा परिच्छेद बौद्ध विचारों से असंबद्ध प्रतीत होता है। इस परिच्छेद में देवपुत्र महासेन के तावतिंस लोक में निवास करने, भिक्खुसंघ द्वारा मनुष्यलोक में जन्म ग्रहण करने की प्रार्थना, महासेन द्वारा नागसेन के रूप में ब्राह्मण परिवार में जन्म, वेदाध्ययन, त्रिपिटकों को कंठस्थ करने की कथा इत्यादि के विवरणों से रीस डेविड्स ने अनुमान किया है कि मिलिन्दपञ्ह किसी बौद्धेतर व्यक्ति द्वारा लिखा गया है। इस अनुमान के आधार पर माणव नामक ब्राह्मण को उन्होंने मिलिन्दपञ्ह का लेखक स्वीकार किया है।

श्रीमती रीस डेविड्स के इस मत से अन्य कोई भी विद्वान् सहमत नहीं हैं। स्वामी द्वारिकादास शास्त्री का मानना है कि यदि माणव को मिलिन्दपञ्ह का लेखक स्वीकार कर भी लिया जाये तो उसके परवर्ती विद्वानों ने उसका नाम कहीं भी नहीं लिया है। अतः ऐतिहासिकता के अभाव में इस माणव नाम को श्रीमती रीस डेविड्स द्वारा कल्पनाप्रसूत ही माना जायेगा।[173]

---

[172] Caroline, A.F., Rhys Davis, *The Milinda Questions,* Routledge, London, 2000, p. 105-6

[173] *मिलिन्दपञ्हपालि,* स्वामी द्वारिकादासशास्त्री (सं. व अनु.), बौद्धभारती, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 2006, पृ. 10

उत्तर-पश्चिम भारत में लिखे गए मिलिन्दपञ्ह का रचनाकार स्याम (बर्मा) देशवासी सोलहवीं शताब्दी ईस्वी के 'स्थविर रतनपञ्ञ' भदन्त नागसेन को मानते हैं।[174] आचार्य बुद्धघोस ने अट्ठसालिनी तथा विसुद्धिमग्ग में स्थान-स्थान पर ग्रंथ का नाम न लेकर नागसेन को ही उद्धृत किया है जिससे नागसेन को ही इसका लेखक माना जा सकता है। विमला चरण लाहा, भरतसिंह उपाध्याय, स्वामी द्वारिकादास शास्त्री प्रभृति विद्वानों ने नागसेन को ही मिलिन्दपञ्ह का लेखक स्वीकार किया है।

भिक्खु नागसेन इस ग्रंथ के नायक होने के साथ-साथ लेखक भी हैं। भारतीय परम्परा में ऐसे कई उदाहरण हैं जब स्वयं ग्रंथकार भी उसी ग्रंथ का पात्र होता है। रामायण के लेखक वाल्मिकि स्वयं रामायण के पात्र भी हैं। महाभारत के लेखक वेदव्यास भी स्वयं ग्रंथ में एक विशिष्ट संवादक के रूप में सम्मुख आते हैं। अतः नागसेन ग्रंथ का लेखक होने के साथ-साथ, मिलिन्द द्वारा उठाई गई बौद्ध धर्म संबंधी शंकाओं के समाधानकर्त्ता के रूप में भी विद्यमान है।

2.3. मिलिन्दपञ्ह का काल निर्धारण

मिलिन्दपञ्ह ग्रंथ की सर्वमान्य तिथि का निर्धारण करना एक कठिन कार्य है फिर भी मिलिन्दपञ्ह में प्राप्त विभिन्न अन्तः साक्ष्यों, बाह्य साक्ष्यों, राजा मिलिन्द की ऐतिहासिकता तथा विभिन्न विद्वानों के मतों के आधार पर किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है।

मिलिन्दपञ्ह के बाहिरकथा के प्रारंभ में नागसेन तथा मिलिन्द के पूर्वजन्म की कथा के वर्णन में लेखक ने भगवान् बुद्ध के मुख से मोग्गलिपुत्त तिस्स को कहलावाया है, "मेरे महापरिनिर्वाण के पाँच सौ वर्षों के बाद ये दोनों जन्म ग्रहण करेंगे...।[175]" इसको आधार बनाकर थाई भिक्खु रतनपञ्ञ स्वग्रंथ जिनकालमालिनी में कहते हैं, "अनुराधापुर में जब कण्णतिस्स नामक राजा राज्य कर रहा था, तो उस समय जम्बूद्वीप (भारत) में 'सागल' नामक नगरी में मिलिन्द नामक राजा और महानागसेन नामक स्थविर, जो पण्डित थे, अपने प्रश्नोत्तरों से दसबल (बुद्ध) के शासन के परम गम्भीर भाव को जैसे द्योतित करते हुए एक दूसरे से मिले, इसीलिए 'मिलिन्दपञ्ह' में कहा गया है, "मेरे परिनिर्वाण के पाँच सौ वर्ष बाद ये उत्पन्न होंगे।[176]" भगवान् बुद्ध का महापरिनिर्वाण 483 ई.पू. माना जाता है जिससे अनुमान करने पर मिलिन्द तथा नागसेन के संवाद

---

[174] *पा.सा.इ,* पृ. 567

[175] एवमेतेपि दिस्सन्ति मम परिनिब्बानतो पञ्चवस्ससतेअतिक्कन्ते एते उप्पज्जिस्सन्ति...। *मि.प.,* 1/1/1, पृ. 2

[176] *पा.सा.इ,* पृ. 565-66

का समय प्रथम शताब्दी ई.पू. से प्रथम शताब्दी ईस्वी के मध्य ठहरता है। सिंहली राजा कण्णतिस्स का शासन-काल 16-38 ईस्वी है।[177] अतः मिलिन्दपञ्ह के संवाद का समय लगभग प्रथम शताब्दी ईस्वी ठहरता है।

मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है कि नागसेन ने अभिधम्मपिटक की सात पुस्तकों धम्मसङ्गणि, विभङ्गप्पकरण, धातुकथाप्पकरण, पुग्गलपञ्ञति, कथावत्थुप्पकरण, यमकप्पकरण, पट्ठनप्पकरण को कण्ठस्थ कर लिया था।[178] इन ग्रंथों को तृतीय बौद्ध संगीति में अभिधम्मपिटक के रूप में निबद्ध किया गया। तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन मौर्य सम्राट अशोक द्वारा लगभग 250 ई.पू. में में करवाया गया था।[179] इसके सभापति मोग्गलिपुत्त तिस्स का नाम मिलिन्दपञ्ह[180] में भी प्राप्त होता है। जिनके आधार पर मिलिन्दपञ्ह का रचना काल 250 ई.पू. के बहुत बाद का ठहरता है क्योंकि अभिधम्म के ग्रंथों को प्रसिद्ध होने में समय लगा होगा।

हिंद-यवन शासक मिनाण्डर की ऐतिहासिकता तथा उसके द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण किए जाने की पुष्टि से ग्रंथ का कालनिर्धारण करना सरल होगा। तृतीय शताब्दी ई.पू. एलेक्जेण्डर अर्थात् सिकन्दर ने भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश को अपने साम्राज्य के प्रदेश बैक्ट्रिया में मिला दिया। हिन्द-यवन राजा सेल्यूकस को पराजित कर चन्द्रगुप्त मौर्य ने पुनः इस प्रदेश को भारत में मिला लिया। बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि बौद्ध सम्राट अशोक ने तृतीय शताब्दी ई.पू. के अन्त में धम्म-प्रचारक ग्रीक की भूमि पर भेजे। इस कारण

---

[177] महाथेर, ए.पी. बुद्धदत्त, *जिनकालमाली,* भूमिका भाग, उद्धृत- *पा.सा.इ,* पृ. 566

[178] आयस्मा च नागसेनो "कुसला धम्मा, अकुसला धम्मा, अब्याकता धम्मा"ति तिकदुकपटिमण्डितं धम्मसङ्गणीपकरणं, खन्धविभङ्गादि अट्ठारस विभङ्गपटिमण्डितं विभङ्गप्पकरणं, "सङ्गहो असङ्गहो"ति आदिना चुद्दसविधेन विभत्तं धातुकथापकरणं, "खन्धपञ्ञत्ति आयतनपञ्ञत्ती"ति आदिना छब्बिधेन विभत्तं पुग्गलपञ्ञत्तिप्पकरणं, सकवादे पञ्चसुत्तसतानि परवादे पञ्चसुत्तसतानीति सुत्तसहस्सं समोधानेत्वा विभत्तं कथावत्थुप्पकरणं, "मूलयमकं खन्धयमक"न्ति आदिना दसविधेन विभत्तं यमकप्पकरणं, "हेतुपच्चयो आरम्मणपच्चयो"ति आदिना चतुवीसतिविधेन विभत्तं पट्ठानप्पकरणन्ति सब्बं तं अभिधम्मपिटकं एकेनेव सज्झायेन पगुणं कत्वा "तिट्ठथ भन्ते, न पुन ओसारेथ, एत्तकेनेवाहं सज्झायिस्सामी"ति आह। *मि.प.*, 1/1/10, पृ. 9-10

[179] *भा.इ.,* पृ. 63

[180] *मि.प.*, 1/1/1, पृ. 2

दूसरी शताब्दी ई.पू. तक ग्रीक-बैक्ट्रिया में बौद्ध प्रभाव बना रहा। राजा मिनाण्डर प्रथम तथा बौद्ध भिक्खु नागसेन के मध्य बौद्ध सिद्धांतों पर वाद-विवाद हुआ।[181]

भन्ते गुआन्ग जिन्ग का मानना है कि राजा मिलिन्द जो मिनाण्डर के नाम से जाना जाता है, सिकन्दर के हिन्द-यवन विजेताओं में सर्वश्रेष्ठ था। वह 150 ई.पू. में भारत के पश्चिमोत्तर भाग बैक्ट्रियन साम्राज्य पर शासन कर रहा था।[182] इतिहासकार स्मिथ ने बताया है कि पुष्यमित्र शुंग पर काबुल के शासक मिनाण्डर ने 155 ई.पू. में आक्रमण किया था।[183] हेमचन्द्र रायचौधरी मिनाण्डर का शासनकाल प्रथम शताब्दी ई.पू. मानते हैं।[184]

मिलिन्दपञ्ह में मिलिन्द तथा नागसेन के संलाप का प्रश्नोत्तरी शैली में वर्णन है। ग्रंथ के अन्त में परिचर्चा से संतुष्ट होकर मिलिन्द के बौद्ध उपासक बनने का प्रमाण मिलता है।[185] मिलिन्द ने अपना राज्य पुत्र को देकर, प्रव्रज्या स्वीकार की तथा विदर्शना को बढाते हुए अर्हत्-पद को प्राप्त किया।[186] टी. डब्ल्यू. रीज डेविस ने मिलिन्द के बौद्ध बनने का समर्थन उसके सिक्कों के आधार पर बताने का प्रयास किया है। उसके अनुसार राजा मिलिन्द के लगभग बाईस सिक्के प्राप्त हुए हैं। अधिकांश सिक्कों में मिलिन्द का नाम पढ़ा जा सकता है, आठ सिक्कों में उसकी आकृति भी देखी जा सकती है। ये सिक्के सुदूर पश्चिम में काबुल से, पूर्व में मथुरा से तथा सुदूर उत्तर में कश्मीर से प्राप्त हुए हैं।[187] सिक्कों से मिलिन्द के राज्य विस्तार का पता चलता है।

---

[181] According to Buddhist literature, the great Indian Buddhist emperor Asoka (fl. 3rd cent. BCE) sent Buddhist emissaries to the Greek lands in Asia to spread the Dharma towards the end of third century BCE. Thus the Buddhist presence in Greek Bactria during the second century BCE and the debates on certain important Buddhist doctrines between King Menander I and a Buddhist monk named Nagasena are quite certain. *NBS*, p. 320-21

[182] King Milinda, known as Meandner or Menander, is one of Alexander's Indo-Greek successors, and he ruled the Bactrian kingdom in Northwestern India around 150 BCE. Ibid, p. 320

[183] Menander, lord of Kābul, appears to have invaded India about 155 B.C., reached Oudh, and met the army of Pushyamitra Sunga. Smith, Vinceth A., *The Oxford Student's History of India*, The Clarendon Press, London, Fifth Edition, 1915, p. 73

[184] This tradition probably points to a date in the first century B.C. for Menander. Raychaudhuri, Hemchandra, *Political History of Ancient India*, University of Calcutta, Calcutta, 1923, p. 209

[185] उपासकं मं, भन्ते नागसेन, धारेथ अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं। *मि.प, निगमन*-2, पृ. 295

[186] पुत्तस्स रज्जं निय्यादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजित्वा विपस्सनं वड्ढेत्वा अरहत्तं पापुणि। वही, निगमन-3, पृ. 296

[187] *TQKM*, p. XX

बाईस सिक्कों में से इक्कीस पर एक तरफ ग्रीक भाषा में 'बेसिलियोस सोटेरस मिनेन्द्रो[188]' लिखा हुआ है तथा दूसरी तरफ खरोष्ठी लिपि तथा पालि भाषा में 'महरजस, तद्रतस मेनन्द्रस[189]' लिखा हुआ है।[190] जिससे सिक्कों के आधार पर मिनाण्डर की ऐतिहासिकता की पुष्टि होती है।

कुछ सिक्कों पर एक तरफ पृथक्-पृथक् विजय, उछलता घोडा, डॉल्फिन, सिर, दो कूबड़ वाला एक ऊँट, हाथी, सूअर, चक्र या ताड़ के पत्ते खुदे हैं जबकि हाथी, उल्लू तथा बैल का सिर दो-दो सिक्कों पर अंकित है। चक्र, ताड़-शाखा तथा हाथी वाले सिक्कों से बौद्ध धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है। किन्तु ये प्रकृति से संबंधित भी हो सकते हैं केवल बौद्ध धर्म से ही संबंधित नहीं।[191]

एक सिक्के से स्पष्ट होता है कि मिलिन्द ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। इस सिक्के के एक तरफ 'बेसिलियोस दिकेयो मिनेन्द्रो[192]' लिखा हुआ है तथा दूसरी तरफ 'महरजस, धार्मिकस मेनन्द्रस' लिखा हुआ है।[193] इस धार्मिकस पद का अर्थ भिक्खु जगदीश काश्यप ने 'धार्मिकस्य' करते हुए बताया है कि बौद्ध साहित्य में उपासक राजा के लिए बराबर 'धम्मराज' शब्द का प्रयोग होता है। अशोक का तो नाम ही हो गया था 'धर्माशोक'। अतः इस सिक्के में जो 'धार्मिकस्य' पद का प्रयोग आया है उससे सिद्ध होता है कि मिलिन्द अवश्य बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया था।[194]

विभिन्न इतिहासकारों तथा सिक्कों के साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मिनाण्डर ने बौद्ध धर्म संबंधी वाद-विवाद नागसेन के साथ किया तथा अन्त में प्रभावित होकर बौद्ध धर्म स्वीकार किया। मिनाण्डर का समय लगभग दूसरी शताब्दी ई.पू. निर्धारित किया जा सकता है। इसके बाद ही मिलिन्दपञ्ह लिखा गया होगा।

---

[188] ग्रीक भाषा के वाक्यांश 'बेसिलियोस सोटेरस मिनेन्द्रो' (βασιλέως σωτήρος μενάνδρου) में बेसिलियोस का अर्थ मुक्तिदाता, सोटेरस का अर्थ राजा तथा मिनेन्द्रो का अर्थ मिनाण्डर है।

[189] इसका अर्थ है- मुक्तिदाता महाराज मिनाण्डर।

[190] *मि.प्र.*, पृ. 6

[191] *TQKM*, p. XXI

[192] ग्रीक भाषा के वाक्यांश 'बेसिलियोस दिकेयो मिनेन्द्रो' (βασιλέως δικαιου μενάνδρου) में बेसिलियोस का अर्थ मुक्तिदाता, दिकेयो का अर्थ कानून अथवा न्याय तथा मिनेन्द्रो का अर्थ मिनाण्डर है।

[193] One coin, however, a very rare one, differs, as to its inscription, from all the rest that have the legend. It has on one side BASILEOS DIKAIOU MENANDROU, and on the other, MAHARAGASA *DHARMIKASA* MENANDRASA. *TQKM*, p. XXI

[194] *मि.प्र.*, पृ. 7

राजा मिनाण्डर के सिक्के

चित्र 1[195]

चित्र 2[196]

चित्र 3[197]

मिनान्डर के बौद्ध उपासक होने का संकेत देने वाला सिक्का

चित्र 4[198]

[195] www.columbia.edu/itc/mealac/pritchett/00routesdata/bce_199_100/menandercoins/menandercoins.html
[196] Ibid
[197] Ibid
[198] www.cngcoins.com/Coin.aspx?CoinID=96874

टी. डब्ल्यू. रीज डेविस ने मिलिन्दपञ्ह के अंग्रेजी अनुवाद '*दि क्वेश्चन्स ऑफ किन्ग मिलिन्द*' की प्रस्तावना में अट्ठकथाओं में बुद्धघोस द्वारा उद्धृत चार संदर्भों के आधार पर इसकी रचना 430 ईस्वी से पूर्व स्वीकार की है।[199] बिमला चरण लाहा का भी मानना है कि बुद्धघोस ने विसुद्धिमग्गो[200] तथा अट्ठकथाओं में कई स्थानों पर मिलिन्दपञ्ह को उद्धृत किया है। बुद्धघोस का समय पाँचवी शताब्दी ईस्वी है अतः मिलिन्दपञ्ह का रचना काल पाँचवी शताब्दी ईस्वी से पहले का स्वीकार किया जा सकता है।[201] मिलिन्दपञ्ह के एक प्रसंग में नारद, धम्मन्तरी, अङ्गीरस, कपिल, कण्डरग्गि, साम, अतुल एवं पूर्व कात्यायन जैसे वैद्यों[202] का उल्लेख किया गया है किन्तु प्रसिद्ध वैद्य चरक का नाम नहीं आया है। इस आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि या तो यह ग्रंथ चरक के समय अर्थात् कुषाण काल से पूर्व लिखा जा चुका था या इसकी रचना कुषाण काल में ही हुई जब चरक जीवित थे और प्रसिद्धि को प्राप्त नहीं हुए थे।[203]

मिलिन्दपञ्ह में महायान बौद्ध धर्म से संबंधित बोधिसत्त्व[204], धर्मकाय[205] इत्यादि शब्दावली के आधार पर रेनू शुक्ला का मानना है कि मिलिन्दपञ्ह का लेखन उस समय हुआ जब हीनयानी विचारधारा से भिन्न विचारधारा पनपने लगी थी तथा वह महायान के रूप में आने के लिए प्रयासरत थी। यह समय ई.पू. प्रथम शताब्दी से ईस्वी प्रथम शताब्दी का समय है।[206]

भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि से ज्ञात होता है कि प्रत्येक बौद्ध संगीति का आयोजन बौद्ध धर्म संबंधी किन्हीं समस्याओं अथवा शंकाओं को सुलझाने के लिए किया गया था। चौथी बौद्ध संगीति के आयोजन से पूर्व भारतीय समाज में बौद्ध धर्म संबंधी विभिन्न शंकाएं व्याप्त हो चुकी थी। अपने स्तर से नागसेन ने बौद्ध धर्म संबंधी विवादों को सुलझाते हुए नवीन विचारों को भी स्वीकार किया। किन्तु कनिष्क के शासनकाल में चतुर्थ बौद्ध संगीति के आयोजन से बौद्ध धर्म दो हिस्सों हीनयान तथा महायान में स्पष्ट रूप से बँट गया।

---

[199] *TQKM*, p. XIV-XVI

[200] तेनाह आयस्मा नागसेनो "दुक्करं, महाराज, भगवता कत"न्ति। किं, भन्ते, नागसेन भगवता दुक्करं कतन्ति? 'दुक्करं, महाराज, भगवता कतं यं अरूपीनं चित्तचेतसिकानं धम्मानं एकारम्मणे पवत्तमानानं ववत्थानं अक्खातं अयं फस्सो अयं वेदना, अयं सञ्ञा, अयं चेतना, इदं चित्त"'न्ति। *मि.प.,* 2/7/16 (*विसुद्धिमग्गो* के 14वें परिच्छेद में उद्धृत।)

[201] Law, B.C., *A History of Pāli Literature*, Abhisekh Prakashan, Delhi, 2007, p. 282

[202] *मि.प,* 5/2/8, पृ. 195

[203] *मि.प.ए.अ.,* पृ. 29

[204] *मि.प,* 4/4/4, पृ. 142; 4/4/7, पृ. 149; 5/3/2, पृ. 203

[205] वही, 3/5/10, पृ. 59

[206] *मि.प.ए.अ.,* पृ. 31

जापानी विद्वान् कोगेन मिज़ुनो ने अपने शोध में स्पष्ट किया है कि मिलिन्दपञ्ह का चीनी भाषा में प्रथम अनुवाद दूसरी शताब्दी ईस्वी में किया गया।[207] अतः मूल ग्रंथ का लेखन प्रथम शताब्दी ई.पू. में किया गया होगा।[208] भिक्खु गुआन्ग जिन्ग ने मिलिन्दपञ्ह का रचनाकाल ई.पू. 150 से 50 ईस्वी स्वीकार किया है।[209]

उपर्युक्त बाह्य तथा अन्तः साहित्यिक साक्ष्यों तथा मिनाण्डर के प्राप्त सिक्कों के ऐतिहासिक अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मिलिन्दपञ्ह की रचना प्रथम शताब्दी ई.पू. के उत्तरार्द्ध से प्रथम शताब्दी ईस्वी के प्रारंभिक दशकों के मध्य में हुई होगी।

2.4. मिलिन्दपञ्ह की विषय-वस्तु का परिचय

दर्शन एवं साहित्य की दृष्टि से यह स्थविरवाद बौद्ध धम्म का ग्रंथ है। मिलिन्दपञ्ह का आशय है- मिलिन्द के प्रश्न। ग्रीक राजा मिनाण्डर के नाम का भारतीयकरण मिलिन्द है। अतः मिलिन्द के प्रश्नों का विवरण देने वाले ग्रंथ को मिलिन्दपञ्ह कहते हैं। इन प्रश्नों का समाधान भदन्त नागसेन ने इसी पुस्तक में दिया है। ग्रंथ से ज्ञात होता है कि मिलिन्द तथा नागसेन के मध्य धर्म तथा दर्शन संबंधी संलाप हुआ था जिसके अन्त में संतुष्ट होकर मिलिन्द बौद्ध उपासक हो गया था।[210] तदनन्तर मिलिन्द अपना राज्य पुत्र को देकर, प्रव्रजित हो गया तथा विदर्शना को बढाते हुए अर्हत्-पद को प्राप्त किया।[211]

मिलिन्दपञ्ह के अध्याय विभाजन को लेकर विद्वानों में मतैक्य का अभाव है। छठी बौद्ध संगीति के आयोजन से पूर्व मिलिन्दपञ्ह को बाहिरकथा, लक्खणपञ्ह, विमतिच्छेदनपञ्ह, मेण्डकपञ्ह, अनुमानपञ्ह, धुतङ्गकथा, ओपम्मकथा इन सात अध्यायों में विभाजित किया जाता था। 1880 में वी. ट्रेंकनर के रोमन लिपि में संपादित मिलिन्दपञ्ह तथा सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट के 1890 के 35 वें तथा 1894 के 36 वें भागों में प्रकाशित टी. डब्ल्यू. रीज डेविस के अंग्रेजी अनुवाद में सात अध्यायों को ही स्वीकार किया गया है। भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के 2500 वर्ष पूर्ण होने पर अर्थात् वैशाख 1954 से वैशाख 1956 में अभिधज महारथ गुरु भदंत रेवत के सभापतित्व में बर्मा में आयोजित छठी बौद्ध संगीति अर्थात् छट्ठ

---

[207] According to Japanese scholar Kogen Mizuno's research, the Chinese translation of the Nagasena Bhiksu Sutra must has been done in the second century CE. *NBS*, p. 324

[208] So Mizuno comes to the conclusion that the original text must have been written down in its native land no later than the first century BCE. Ibid, p. 326

[209] Ibid, p. 326

[210] उपासकं मं, भन्ते नागसेन, धारेथ अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं। *मि.प.,* निगमन-2, पृ. 295

[211] पुत्तस्स रज्जं निय्यादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजित्वा विपस्सनं वड्ढेत्वा अरहत्तं पापुणि। वही, निगमन-3, पृ. 296

संगायन[212] में पालि साहित्य का नये तरीके से संकलन किया गया। पालि मिलिन्दपञ्ह को पुब्बयोग, मिलिन्दपञ्ह, लक्खणपञ्ह, मेण्डकपञ्ह, अनुमानपञ्ह, ओपम्मकथापञ्ह नामक छह अध्यायों में विभाजित किया गया। मिलिन्दपञ्ह के दो भाग लक्खणपञ्ह तथा विमतिच्छेदनपञ्ह हैं। मेण्डकपञ्ह के महावग्ग तथा योगीकथापञ्ह नामक दो भेद हैं।[213]

भारत में स्वामी द्वारिकादास शास्त्री द्वारा 1979 ई. में तथा विमलकीर्ति द्वारा 2000 ई. में संपादित किए गए मिलिन्दपञ्ह में छह अध्याय स्वीकार किए गए। इस प्रकार मिलिन्दपञ्ह के बाहिरकथा, लक्खणपञ्ह, विमतिच्छेदनपञ्ह, मेण्डकपञ्ह, अनुमानपञ्ह तथा ओपम्मकथापञ्ह नामक छह अध्याय हैं।

ग्रंथ का प्रारंभ पालि की पाँच गाथाओं[214] से होता है। ये गाथाएं मंगलाचरण के रूप में न होकर, मिलिन्द द्वारा पूछे गए प्रश्नों तथा नागसेन द्वारा दिए गए उत्तरों की गम्भीरता तथा विशिष्टता से युक्त हैं।

इसके पश्चात् सागल नगर (वर्तमान स्यालकोट) का भव्य वर्णन किया गया है। सागल नगर नदी और पर्वतों से शोभित, रमणीय भू-प्रदेश पर बसा हुआ है। वह आराम, उद्यान, तड़ाग, पुष्करिणियों से संपन्न तथा नदी, पर्वत एवं वनों से अत्यन्त रमणीय़ है।[215] सागल नगर धन-धान्य से समृद्ध तथा व्यापारिक रूप से उन्नत है। सागल नगर में क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, श्रमण तथा यवन सभी प्रकार के लोग निवास करते हैं। सागल नगर का बाजार बहुमूल्य रत्नों, सुदूरवर्ती कीमती वस्त्रों, सुगन्धित द्रव्यों इत्यादि से भरा हुआ है।

---

[212] *बौ.ध.प.व.*, पृ. 17

[213] एत्थ ठत्वा तेसं पुब्बकम्मं कथेतब्बं, कथेन्तेन च छधा विभजित्वा कथेतब्बं। सेय्यथीदं– पुब्बयोगो मिलिन्दपञ्हं लक्खणपञ्हं मेण्डकपञ्हं अनुमानपञ्हं ओपम्मकथापञ्हन्ति। तत्थ मिलिन्दपञ्हो लक्खणपञ्हो, विमतिच्छेदनपञ्होति दुविधो। मेण्डकपञ्होपि महावग्गो, योगिकथापञ्होति दुविधो। *मि.प.*, गन्थकथावत्थु, पृ. 1

[214] मिलिन्दो नाम सो राजा, सागलायं पुरुत्तमे। उपगञ्छि नागसेनं, गङ्गा च यथा सागरं॥
आसज्ज राजा चित्रकथिं, उक्काधारं तमोनुदं। अपुच्छि निपुणे पञ्हे, ठानाट्ठानगते पुथू॥
पुच्छा विसज्जना चेव, गम्भीरत्थूपनिस्सिता। हदयङ्गमा कण्णसुखा, अब्भुता लोमहंसना॥
अभिधम्मविनयोगाळ्हा, सुत्तजालसमत्तिता। नागसेनकथा चित्रा, ओपम्मेहि नयेहि च॥
तत्थ ञाणं पणिधाय, हासयित्वान मानसं।सुणाथ निपुणे पञ्हे, कङ्खाट्ठानविदालनेति॥ वही, गन्थकथावत्थु, पृ. 1

[215] सागलं नाम नगरं नदीपब्बतसोभितं रमणीयभूमिप्पदेसभागं आरामुय्यानोपवनतळाकपोक्खरणिसम्पन्नं नदीपब्बतवनरामणेय्यकं सुतवन्तनिम्मितं....। वही, गन्थकथावत्थु-2, पृ. 1

मिलिन्दपञ्ह में सागल को उत्तरकुरू के समान उपजाऊ तथा अलकनन्दा के समान शोभा सम्पन्न बताया गया है।[216]

2.4.1. बाहिरकथा

बाहिरकथा परिच्छेद में नागसेन तथा मिनाण्डर के पूर्वजन्म का वर्णन है। इसमें बताया गया है कि भगवान् काश्यप के समय गंगा किनारे आश्रम में भिक्खु संघ रहता था। नागसेन तथा मिनाण्डर दोनों ही उसी विहार में निवास करते थे। नागसेन अपने पूर्वजन्म में श्रमण तथा मिनाण्डर अपने पूर्वजन्म में श्रामणेर था। एक दिन भिक्खु ने श्रामणेर से कूड़े को फेंकने के लिए कहा। उसके मना करने पर भिक्खु ने उसे लकड़ी के झाड़ू से मारा। श्रामणेर ने भयभीत अवस्था में कूड़े को फेंकते हुए मध्यान्ह के सूर्य की भांति तेजस्वी होने का संकल्प लिया तथा गंगा के जल में स्नान करते हुए उस श्रामणेर ने प्रतिज्ञा की, "जहाँ जहाँ मैं जन्म ग्रहण करूँ, इन गंगा की तरंगों के वेग की तरह प्रत्युत्पन्न मति और प्रतिभा सम्पन्न होऊँ।[217]" भिक्खु ने भी श्रामणेर की प्रतिज्ञा से प्रभावित होकर संकल्प लिया, "जहाँ जहाँ मैं जन्म ग्रहण करूँ गंगा की इन तरंगों के वेग के समान प्रत्युत्पन्न मति और प्रतिभा सम्पन्न होऊँ तथा इस श्रामणेर के द्वारा पूछे गए सभी प्रश्नों का उत्तर देने में मैं समर्थ होऊँ।[218]"

श्रामणेर का जन्म जम्बूद्वीप के सागल नगर में मिलिन्द नामक राजा के रूप में हुआ। मिलिन्द बड़ा पण्डित, चतुर, बुद्धिमान तथा समर्थ शासक था। वह श्रुति, स्मृति, सांख्य, योग, न्यायादि उन्नीस विद्याओं में निष्णात तथा वाद-विवाद में पारंगत था।[219] उसने पूरण कस्सप तथा मक्खलि गोसाल के साथ संवाद किया, किन्तु वे उसकी शंकाओं का समाधान करने में असमर्थ रहे। उसने मन में विचार किया, "यह जम्बूद्वीप तुच्छ है। व्यर्थ ही इसका इतना नाम है। यहाँ कोई भी ब्राह्मण तथा श्रमण नहीं जो मेरे साथ संलाप कर सके तथा मेरी

---

[216] .....उत्तरकुरुसङ्कासं सम्पन्नसस्सं आळकमन्दा विय देवपुरं। *मि.प.*, गन्थकथावत्थु-2, पृ. 1

[217] निब्बत्तनिब्बत्तट्ठाने अयं ऊमिवेगो विय ठानुप्पत्तिकपटिभानो भवेय्यं अक्खयपटिभानो'ति। वही, 1/1/1, पृ. 2

[218]एत्थन्तरे निब्बत्तनिब्बत्तट्ठाने अयं गङ्गाऊमिवेगो विय अक्खयपटिभानो भवेय्यं, इमिना पुच्छितपुच्छितं सब्बं पञ्हपटिभानं विजटेतुं निब्बेठेतुं समत्थो भवेय्य'न्ति। वही

[219] बहूनि चस्स सत्थानि उग्गहितानि होन्ति। सेय्यथिदं, सुति सम्मुति सङ्ख्या योगा नीति विसेसिका गणिका गन्धब्बा तिकिच्छा धनुब्बेदा पुराणा इतिहासा जोतिसा माया केतु मन्तना युद्धा छन्दसा बुद्धवचनेन एकूनवीसति, वितण्डवादी दुरासदो दुप्पसहो पुथुतित्थकरानं अग्गमक्खायति...। वही, 1/1/1, पृ. 2-3

शंकाओं को दूर कर सके।[220]" मिलिन्द के प्रश्नों के आतंक से परेशान होकर विद्वान् श्रमण तथा ब्राह्मण इधर-उधर भाग गए। स्थिति यह थी कि ज्यादातर भिक्खु हिमालय पर्वत के रक्षिततल पर जाकर निवास करने लगे।

आयुष्मान् अस्सगुत ने युगन्धर नामक पर्वत पर भिक्खुसंघ की सभा बुलाई। राजा मिलिन्द की ज्ञानविषयक शंकाओं का समाधान करने में भिक्खु-संघ को असमर्थ जानकर अस्सगुत ने तावतिंसभवन[221] में केतुमति[222] नामक विमान (प्रसाद) में निवास करने वाले महासेन नामक देवपुत्र से मनुष्यलोक में जन्म लेने की प्रार्थना की जिससे मिलिन्द के तर्कों को निरस्त कर बुद्ध के शासन की रक्षा की जा सके।

अस्सगुत द्वारा आयोजित भिक्खुसंघ की बैठक में रोहण अनुपस्थित था। अतः विनय के नियमों का उल्लंघन करने के कारण रोहण को सात वर्ष तथा दस मास तक कजङ्गल ग्राम में सोणुत्तर के घर से भिक्षाटन करने का दण्ड दिया गया। दण्ड से मुक्ति नागसेन की प्रवज्या से निश्चित की गई। रोहण सात वर्ष दस माह तक निरंतर सोणुत्तर के घर भिक्षाटन के लिए गया किन्तु भिक्षा नहीं मिली। एक दिन सोणुत्तर ने उन्हें देखा तथा सदैव उनके घर ही भोजन करने का आमंत्रण दिया। भोजनोपरांत रोहण भगवान् बुद्ध का कुछ उपदेश सुनाते थे। दस मास पश्चात् देवपुत्र महासेन ने सोणुत्तर की भार्या की कोख से जन्म ग्रहण किया। उसका नाम नागसेन रखा गया। ब्राह्मण कुल में जन्म के कारण नागसेन ने तीनों वेदों का अध्ययन किया। एक दिन नागसेन समाधि लगाकर बैठे तो उन्हें ज्ञान हुआ कि 'ये वेद तुच्छ हैं, खोखले हैं। इनमें न कोई सार है, न अर्थ है और न तथ्य।[223]'

ध्यान बल से रोहण ने नागसेन के चित्त की बातों को जान लिया। सार सीखने का इच्छुक नागसेन माता-पिता की अनुमति से रोहण के साथ प्रव्रजित होने के लिए वत्तनीय आश्रम चला गया। वहाँ रोहण के द्वारा उसे अभिधम्मपिटक की सातों पुस्तकें पढ़ाई गईं, जिन्हें सात माह में उसने कंठस्थ कर लिया। गुरु के प्रति

---

[220] तुच्छो वत भो जम्बुद्वीपो पलापो वत भो जम्बुद्वीपो! नत्थि कोचि समणो वा बाह्मणो वा, यो मया सद्धिं सल्लपितुं सक्कोति, कंखं पटिविनोदेतुं" ति। *मि.प.,* 1/1/3, पृ. 4

[221] छह कामावचार देव भवन हैं- चातुर्महाराजिक, तावतिंस, याम, तुषित, निर्वाणरति तथा परिनिर्मित देवभवन। (तत्र षट् कामावचरा देवाः। तद्यथाचातुर्महाराजकायिकाः-, त्रायस्त्रिंशाः, तुषिताः, यामाः, निर्माणरतयः, परनिर्मितवशवर्तिनश्चेति॥ *ध.सं.,* 127) इनमें से तावतिंस देवभवन का अधिपति शक्र है। इस देवभवन में33 देवता निवास करते हैं। रीज डेविड्स का मानना है कि अच्छे बौद्ध मृत्यु के बाद तावतिंस देवभवन में जाते हैं जहाँ शक्र उनका स्वागत करता है। (*PED,* Vol. 3, p. 134) मिलिन्दपञ्ह में भी बताया गया है कि इसी देवभवन से देवपुत्र मृत्य-लोक अर्थात् पृथ्वी पर जन्म लेते हैं। वही, 1/1/5, पृ. 5

[222] देवभवन के देवों के निवास हेतु पृथक्-पृथक् प्रासाद बने होते हैं, जिन्हें विमान कहते हैं। उन विमानों के नाम भिन्न-भिन्न होते थे। उन्हीं भवनों में से एक भवन जहाँ महासेन नामक देव निवास किया करता था।

[223] "तुच्छा वत भो इमे वेदा, पलापा वत भो इमे वेदा असारा निस्सारा"ति। *मि.प.*, 1.1.8, पृ. 8

अनुचित वितर्क करने पर नागसेन द्वारा क्षमा मांगने पर रोहण ने उसे सागल नगर जाकर मिलिन्द के मिथ्यादृष्टिविषयक शंकाओं का समाधान करने की आज्ञा दी तथा उसकी शंकाओं का सफलतापूर्वक समाधान ही क्षमा है ऐसा कहा।

तीन मास का वर्षावास अस्सगुत के पास व्यतीत करके पाटलिपुत्र स्थित अशोकाराम में अयुष्मान् धर्मरक्षित से बुद्ध के उपदेशों को संपूर्ण पढ़ने के लिए गए। नागसेन ने तीन महीनों में तीनों पिटकों को कण्ठस्थ कर तीन महीनों में उनके अर्थ को भी जान लिया। उन्होंने अर्हत् पद को प्राप्त किया। शतकोटि अर्हतों के निमंत्रण पर नागसेन हिमालय पर्वत के रक्षित तल पर पहुँचे। वहाँ से सागल नगर स्थित संखेय्य परिवेण में नागसेन ठहरे। संखेय्य परिवेण के भदन्त आयुपाल को मिलिन्द शास्त्रार्थ में पराजित कर चुका था। इसी संखेय्य परिवेण में अस्सी हजार भिक्खुओं से घिरे हुए नागसेन से शास्त्रार्थ के लिए मिलिन्द आए।

2.4.2. लक्खणपञ्ह

यह मिलिन्दपञ्ह का महत्त्वपूर्ण प्रकरण है। इसमें बौद्ध धर्म तथा दर्शन के दो प्रमुख सिद्धांतों अनात्मवाद तथा पुनर्जन्म का स्थविरवाद की दृष्टि से तार्किक तथा प्रभावी विश्लेषण किया गया है। यहीं नागसेन के द्वारा अनात्मवाद के सिद्धांत को रथ की उपमा से स्पष्ट किया गया है। आत्मा के अभाव में पुनर्जन्म किस चीज का होता है? इस प्रश्न के समाधान के लिए नाम-रूप सिद्धांत की चर्चा की गई है।

इनके अलावा लक्खणपञ्ह में आयुर्विषयक प्रश्न, पण्डितवाद तथा राजवाद संबंधी प्रश्न, प्रवज्या संबंधी प्रश्न, जन्म-मृत्युविषयक प्रश्न, विवेकज्ञानविषयक प्रश्न, पुण्य-धर्म के साथ ही शील, श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, ज्ञान संबंधी विभिन्न प्रश्नों के बारें में मिलिन्द नागसेन से पूछते हैं। नागसेन भी तत्परता के साथ उनके प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

लक्खणपञ्ह के अद्धानवग्ग में वस्तु के अस्तित्वविषयक प्रश्न के संदर्भ में पुनर्जन्म, प्रतिसन्धि, ज्ञान तथा प्रज्ञा अर्हत्संबंधी, नाम-रूप संबंधी प्रश्नों पर विचार किया गया है। मिलिन्द नागसेन के पुनर्जन्म तथा त्रिविध काल के संबंध में प्रश्न पूछता है। नागसेन ने काल की उत्पत्ति का कारण अविद्या को मानते हुए काल के आदि को अज्ञात कहा है। संस्कार, मनोविज्ञान इत्यादि से संबधित प्रश्नों का समाधान नागसेन ने अपनी मेधा से किया है।

2.4.3. विमतिच्छेदनपञ्ह

इस परिच्छेद में अनेक छोटे-छोटे विषयों पर राजा मिलिन्द के सन्देहों (विमति) का निवारण भदन्त नागसेन द्वारा किया गया है। इस परिच्छेद को ग्रंथकार ने चार भागों में विभाजित किया है- निब्बान वग्ग, बुद्ध वग्ग, सतिवग्ग, अरूपधम्मववत्थानवग्ग।

निब्बानवग्ग में बताया गया है कि चक्षु, कर्ण इत्यादि पाँच इन्द्रियाँ नाना कर्मों के फल से उत्पन्न हुई है। कर्म की प्रधानता संसार में रहती है। कर्मों के फलों को रोकने के लिए मानव को प्रयास करना चाहिए। निर्वाणविषयक मिलिन्द के प्रश्न के उत्तर में नागसेन कहते हैं, "निरोध हो जाना ही निर्वाण है।[224]" पुण्य कर्म करने वाले तथा योग्य धर्मों का अभ्यास करने वाले व्यक्ति निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। निर्वाण के सुख को अन्य भी जान सकते हैं।

बुद्धवग्ग में बुद्ध के अस्तित्व संबंधी शंका, बुद्ध के अनुत्तर होने की शंका का समाधान नागसेन द्वारा किया गया है। इसके साथ ही पुनर्जन्म, कर्म फल के प्रवाह तथा निर्वाण के बाद व्यक्तित्व के लोप संबंधी वार्तालापों का संग्रह है। सतिवग्ग में बुद्ध की सर्वज्ञता, भिक्खुओं के शरीर प्रेम, बुद्ध में विद्यमान 32 महापुरुषों के लक्षणों, बुद्ध के ब्रह्मचर्य, बुद्ध की उपसम्पदा, संसार तथा स्मृति संबंधी विभिन्न शंकाओं का निराकरण नागसेन द्वारा किया गया है।

अरूपधम्मववत्थानवग्ग में स्मृति की उत्पत्ति के सोलह प्रकारों, मृत्यु के समय बुद्ध के स्मरण से देवत्व लाभ, अतीत के दुःखों के नाश के लिए भिक्खुओं के प्रयास, मृत्यु के पश्चात् अन्यत्र उत्पत्ति में समय की आवश्यकता नहीं, बोध्यंग, पाप-पुण्य, ज्ञात-अज्ञात पाप, चित्त के अधीन समस्त लोक, श्वास-प्रश्वास का निरोध, समुद्र नाम तथा लवणीय जल संबंधी, सूक्ष्म धर्म संबंधी, विज्ञान, प्रज्ञा तथा जीव इन तीनों शब्दों के पृथक् पृथक् अर्थ का निर्धारण इन सभी प्रश्नों तथा समाधानों का विवेचन किया गया है।

प्रश्नों से संतुष्ट हुए राजा मिलिन्द ने नागसेन के लिए मूल्यवान चीवर भेंट कर आठ सौ दिनों तक भोजन का निमंत्रण दिया, जिसे नागसेन ने स्वीकार किया।

---

[224] निरोधो निब्बानं। *मि.प.,* 3/4/8, पृ. 55

2.4.4. मेण्डकपञ्ह

मेण्डक का अर्थ है भेड़। भेड़ के दो नुकीले सींग होते हैं। मेण्डक प्रश्न में भेड़ के सींगों की भांति ऐसे दो विकल्प रखे जाते हैं, जो दोनों समान रुप से आपत्तिजनक होते हैं।[225] इसमें परस्पर विरोधी तथा द्विविध वचनों के विरोध का परिहार कर नागसेन द्वारा बौद्ध-सिद्धांत संबंधी उत्तर दिए गए हैं। मिलिन्द की त्रिपिटक पढ़ने के बाद पारस्परिक विरोधी विचारों से जागृत शंकाओं जैसे बुद्ध पूजा, धार्मिक मंत्रणा, गर्भाशय में जन्म, बुध्द-धर्म के अन्तर्धान, मोग्गलान की मृत्यु, निर्वाण के सुख, भिक्खुओं के प्रश्न इत्यादि का समाधान नागसेन बड़ी सहजता से करता है। मेण्डकपञ्ह को दो भागों महावग्ग तथा योगिकथापञ्ह में बाँटा गया है।

महावग्ग में प्रसंगवश धार्मिक मंत्रणा के स्थलों, अयोग्य व्यक्तियों, गुप्त बातों की पोल खोलने वाले नौ व्यक्तियों, बुद्धि की परिपक्वता के आठ कारणों, शिष्य के प्रति आचार्य के पच्चीस कर्तव्यों तथा उपासक के दस गुणों का वर्णन किया गया है। बुद्ध पूजा का फल, बुद्ध की सर्वज्ञता, सप्तविध चित्त, देवदत्त की प्रवज्या, शिवि के नेत्रदान, बड़े भूकम्प के कारण, गर्भाशय में जन्म ग्रहण, बुद्ध धर्म के अन्तर्धान, बुद्ध की निष्कलंकता, बुद्ध की समाधि तथा ऋद्धि बल संबंधी वाद-विवाद का विवेचन महावग्ग में किया गया है।

योगीकथापञ्ह को चार वर्गों में बांटा गया है- अभेज्जवग्ग, पणामितवग्ग, सब्बञ्ञुतञाणवग्ग एवं सन्थवग्ग। अभेज्जवग्ग में भिक्खु वर्ग द्वारा छोटे-मोटे विनय नियमों में सुधार, अव्याकृत प्रश्न, मृत्यु भय, मृत्यु से मुक्ति, ज्ञानप्राप्त बुद्ध को भिक्षा का न मिलना, पाप-पुण्य की गति, भिक्खुओं के प्रति बुद्ध का निरपेक्ष भाव, बौद्धों को बहकाना सहज नहीं इत्यादि मिलिन्द प्रश्नों का उत्तर नागसेन ने दिया। पणामितवग्ग में उपासक द्वारा भिक्खुओं का आदर करने, श्रमण के गुण तथा चिन्ह, बुद्ध के सर्वहितकारी होने, बुद्ध के भाषण में कटुता का अभाव, बुद्ध के अन्तिम भोजन, भिक्खुओं के लिए बुद्ध पूजा की आवश्यकता, बुद्ध के पैर पर पत्थर की पपड़ी के गिर जाने, श्रेष्ठ तथा अश्रेष्ठ श्रमण, अहिंसा तथा स्थविरों को निकालने संबंधी समस्याओं का समाधान नागसेन ने किया है।

सब्बञ्ञुतञाणवग्ग में मोग्गलान की मृत्यु, प्रातिमोक्ष सिद्धांत का भिक्खुओं द्वारा छिपाया जाना, द्विविध मिथ्या भाषण, बोधिसत्त्व की धर्मता, आत्महत्या की बौद्ध मान्यता, मैत्री भावना के फल, क्षीणास्रव लोगों का अभय होना, बुद्ध की सर्वज्ञता का अनुमान आदि का विवेचन किया गया है। सन्थवग्ग में भन्ते नागसेन द्वारा घर बनवाने, भोजन में संयम बरतने, भगवान् के निरोगी होने, अर्हतों द्वारा अनुत्पन्न मार्ग को उत्पन्न

---

[225] *मि.प्र.*, पृ. 114

करने, पूर्व जन्म में लोमस कास्यप के रूप में बुद्ध द्वारा अहिंसा पालन करने, घटीकार कुम्भकार की कुटी में वृष्टि न होने, बुद्ध की जाति ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय होने, धर्मोपदेश भोजनोपरांत करने, बुद्ध के आचार्य न होने का विशद विवेचन किया गया है।

2.4.5.अनुमानपञ्ह

इस परिच्छेद को लेखक ने चार वर्गों में विभाजित किया है- बुद्धवग्ग, निप्पपञ्चवग्ग, वेस्सन्तरवग्ग तथा अनुमानवग्ग। बुद्धवग्ग में बताया गया है कि संसार में एक साथ दो बुद्ध नहीं हो सकते। महाप्रजापति गौतमी द्वारा दिए गए वस्त्रदान को बुद्ध द्वारा न लेकर भिक्खु संघ द्वारा ग्रहण करने का वर्णन मिलता है। ठीक राह पर चल रहा गृहस्थ तथा भिक्खु दोनों ही श्रेष्ठ होते हैं। दुःखचर्या के दोष, भिक्खु द्वारा चीवर छोड़ देने के विषय, अर्हत् को शारीरिक तथा मानसिक वेदनाओं के होने में, गृहस्थ के पापों, गृहस्थ तथा भिक्खु के दुःशीलता में अंतर, जल में प्राणों के अस्तित्व संबंधी विचारों को बुद्धवग्ग में बतलाया गया है।

निप्पपञ्चवग्ग में मिलिन्द ने नागसेन से प्रपञ्चों से छुटकारा पाने, गृहस्थ के अर्हत् हो जाने, अर्हत् के दोषों, तीन प्रकार के नास्ति भाव, निर्वाण के निर्गुण होने, कर्म की उत्पत्ति के कारण, यक्षों के मुर्दे, समस्त शिक्षापद एक साथ क्यों नहीं निश्चित किए गए, सूर्य की गर्मी का घटना, हेमन्त में सूर्य चमक की अधिकता से संबधित अनेक प्रश्न पूछे।

वेस्सन्तरवग्ग में नागसेन द्वारा मिलिन्द के इन सभी प्रश्नों का उत्तर संकलित किया गया है- वेस्सन्तर राजा के दान की विशेषता, अन्य बोधिसत्त्वों से बुद्ध की दुःखचर्या का अंतर, पाप-पुण्य में बलाबल कौन, मृत व्यक्ति के निमित्त दान से उसे लाभ का फायदा, स्वप्न आने का कारण, काल तथा अकाल मृत्यु के कारण, चैत्यों की अलौकिकता, ज्ञान किसे होता है तथा किसे नहीं, निर्वाण एकान्तसुखमय है अथवा दुःखमिश्रित, निर्वाण का रूप तथा संस्थान, अरूप निर्वाण का साक्षात्कार तथा पहचान कैसे हो इत्यादि।

अनुमानवग्ग दो भागों में बंटा हुआ है। प्रथम भाग में धम्म नगर की स्थापना, उसकी दुकानों, नागरिकों तथा कर्मचारियों की विशद चर्चा की गई है। दूसरे भाग में धुतांग का वर्णन है। यह एक व्रत है जिसकोभिक्खु घने जंगलों में अकेले बैठकर करते हैं। धुतांग की उपयोगिता, धुतांग के फलों तथा धुतांग करने वाले व्यक्ति के गुणों का वर्णन इस भाग में किया गया है।

2.4.6. ओपम्मकथापञ्ह

ओपम्मकथापञ्ह को छह भागों में बाँटा गया है। ओपम्मकथापञ्ह में अर्हत् पद प्राप्त करने वाले भिक्खुओं के 104 गुणों की चर्चा विस्तार से की गई है। इस परिच्छेद में बताया गया है कि अच्छे गुण प्रत्येक व्यक्ति, प्राणी अथवा जीव से ग्रहण करने चाहिए। ओपम्मकथापञ्ह में बताया गया है कि भिक्खु में गिलहरी का एक गुण होना चाहिए। जैसे किसी शत्रु के आने पर गिलहरी (कलन्दक) अपनी पूंछ को पटक-पटक कर फुला लेती है तथा उसी से शत्रु को भगा देती है, वैसे ही योगसाधक भिक्खु को क्लेशरूपी शत्रु के निकट आने पर स्मृति-प्रस्थान की लाठी से भगा देना चाहिए।[226] जैसे बाँस हवा के अनुरूप झुक जाता है वैसे ही योगसाधक भिक्खु को नवांग बुद्ध-वचन के अनुरूप आचरणशील होना चाहिए।[227]

भिक्खु में कमल के तीन गुण होना चाहिए। कमल जल में पैदा होता है तथा जल में ही वृद्धि करता है, तो भी पानी से लिप्त नहीं होता। उसी प्रकार भिक्खु को किसी कुल से, गण से, लाभ से, यश से, सत्कार से या किसी भी उपभोग के पदार्थ से लिप्त नहीं होना चाहिए। जैसे कमल पानी से ऊपर उठकर खड़ा रहता है, वैसे ही भिक्खु को संसार छोड़ लोकोत्तर धर्म में खड़ा रहना चाहिए। थोड़ी हवा चलने पर कमल नाल हिलने लग जाता है वैसे ही भिक्खु को थोड़े से क्लेश से भी दूर हट जाना चाहिए।[228] इसी प्रकार भिक्खु को अन्य मादा-चीता, नर-चीता, हाथी, बिल्ली, गधा, कुत्ता, मुर्गा, नाव, चक्रवर्ती राजा इत्यादि से भी गुण ग्रहण करना चाहिए।

मिलिन्दपञ्ह के अन्त में नागसेन द्वारा किए गए बौद्ध धर्म संबंधी शंकाओं के समाधान से प्रभावित होकर राजा मिलिन्द प्रव्रज्या ग्रहण कर लेता है तथा अर्हत् पद को प्राप्त करता है। ग्रंथ का अंत निम्न गाथाओं से होता है-

---

[226] 'कलन्दकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बन्ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्ब' न्ति? "यथा, महाराज, कलन्दको पटिसत्तुम्हि ओपतन्ते नङ्गुट्ठं पप्फोटेत्वा महन्तं कत्वा तेनेव नङ्गुट्ठलगुळेन पटिसत्तुं पटिबाहति, एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन किलेससत्तुम्हि ओपतन्ते सतिपट्ठानलगुळं पप्फोटेत्वा महन्तं कत्वा तेनेव सतिपट्ठानलगुळेन सब्बकिलेसा पटिबाहितब्बा। इदं, महाराज, कलन्दकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। *मि.प.*, 6/1/3, पृ. 259

[227] "यथा, महाराज, वंसो यत्थ वातो, तत्थ अनुलोमेति, नाञ्ञत्थमनुधावति, एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन यं बुद्धेन भगवता भासितं नवङ्गं सत्थु सासनं, तं अनुलोमयित्वा कप्पिये अनवज्जे ठत्वा समणधम्मं येव परियेसितब्बं। वही, 6/1/7, पृ. 262

[228] वही, 6/2/2, पृ. 264

"पञ्ञा पसत्था लोकस्मिं, कता सद्धम्मट्ठितिया।
पञ्ञाय विमतिं हन्त्वा, सन्तिं पप्पोन्ति पण्डिता॥

यस्मिं खन्धे ठिता पञ्ञा, सति तत्थ अनूनका।
पूजा विसेसस्साधारो, अग्गो सेट्ठो अनुत्तरो।

तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं हितमत्तनो।
पञ्ञवन्तंभिपूजेय्य, चेतियं विय सादरो"ति॥[229]"

अर्थात् जगत् में प्रज्ञा तथा धर्म में स्थिर कर देने वाला उपदेश प्रशस्त है। प्रज्ञा से समस्त सन्देहों का निवारण होता है जिससे बुद्धिमान शान्तपद प्राप्त करते हैं। जिसे पुद्गल में प्रज्ञा का अंकुरण हो तथा स्मृति भी बनी रहे, वह विशेष पूजा के योग्य है। वह श्रेष्ठ तथा अलौकिक है। अतः एव अपना हित दृष्टि में रखकर पण्डित की सेवा करनी चाहिए। चैत्य की भांति ही ज्ञानी व्यक्ति की पूजा तथा सेवा करनी चाहिए।

2.5. भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि ग्रंथ मिलिन्दपञ्ह

यवन सम्राट मिलिन्द द्वारा उठाई गई बौद्ध धर्म संबंधी विभिन्न शंकाओं का समाधान कर नागसेन ने भारतीय ज्ञान तथा संस्कृति की प्रतिष्ठा की। राजा मिलिन्द द्वारा नागसेन से 262 प्रश्न पूछे गए। ये प्रश्न छह काण्डों तथा बाईस वर्गो में विभक्त हैं। बयालीस प्रश्न ऐसे हैं जो लुप्त हो गए हैं। विलुप्त तथा प्राप्त प्रश्नों की कुल संख्या 304 है जिन्हें समन्वित रूप में मिलिन्दपञ्ह के नाम से पुकारा जाता है।[230]

विश्व-गुरु की उपाधि से भारत को सुशोभित कराने वाले ग्रन्थों में एक यह पालि-ग्रंथ भारतीय ज्ञान के चरम का द्योतक है। बौद्ध धर्म एवं दर्शन की अकूट निधि यह ग्रंथ त्रिपिटक का अनुसरण करते हुए भी पालि भाषा के क्षेत्र में नवीन सृजन है। राहुल सांकृत्यायन का मानना है कि भारत में रचित पालि ग्रन्थ और भी हो सकते हैं, पर उत्तरी भारत का उपलब्ध अन्तिम ग्रन्थ 'मिलिन्दपञ्ह' ही है।[231] उन्होंने मिलिन्दपञ्ह में वर्णित मिनाण्डर तथा नागसेन के संवाद को इतिहास की विस्तृत घटना का एक नमूना स्वीकार करते हुए हिन्दी

---

[229] *मि.प.*, निगमन-2, पृ. 296

[230] इति छसु कण्डेसु बावीसतिवग्गपतिमण्डितेसु द्वासट्ठिअधिका द्वेसता इमस्मिं पोत्थके आगता मिलिन्दपञ्हा समत्ता, अनागता च पन द्वाचत्तालीसा होन्ति, आगता च अनागता च सब्बा समोधानेत्वा चतूहि अधिका तिसतपञ्हा होन्ति, सब्बाव मिलिन्दपञ्हाति सङ्खं गच्छन्ति। वही, निगमन, पृ. 295

[231] *रा.पा.इ*, पृ. 151

(भारतीय) तथा यूनानी प्रतिभाओं के मिलन से भारत में उत्पन्न नवीन विचारधाराओं का आरम्भ बिन्दु कहा है।[232]

पाषाणकाल से लेकर अद्यावधि भारतीय संस्कृति परिवर्तित होती रही है। इसके अध्ययन को सहज बनाने के लिए विद्वानों द्वारा इसे विभिन्न कालखण्डों में वर्गीकृत किया गया है। प्राचीन काल की भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म एवं दर्शन ने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा कर भारत को विश्व गुरु की पदवी पर आसीन करवाया। मिलिन्दपञ्ह में विदेशी यवन राजा मिनाण्डर द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकार करना भारतीय धर्म-दर्शन तथा संस्कृति की महानता को प्रदर्शित करता है। मिलिन्दपञ्ह के काल को भारतीय संस्कृति का गौरव मानते हुए भरतसिंह उपाध्याय ने कहा है, "भारतीय ज्ञान का वह गौरव ही मिलिन्दपञ्ह में प्रतिध्वनित हुआ है, जिससे नमित होकर ही बुद्धिवादी मिलिन्द राजा बुद्ध धर्म में उपासकत्व गृहीत करता है। यह भारतीय ज्ञान की महान् विजय का द्योतक है- उस ग्रीक ज्ञान पर जिसकी पाश्चात्य जगत् बड़ा दम भरता है और जिससे ही उसने अपना सारा ज्ञान वास्तव में प्राप्त भी किया है। मिलिन्दपञ्ह उस ज्ञान-विजय अथवा धम्म विजय का स्मारक और परिचायक है, जिसे भारत ने उस समय के, अपने अलावा, सबसे अधिक ज्ञान-सम्पन्न देश पर प्राप्त किया था।"[233]

संस्कृति एक अमूर्त परिकल्पना है, जिसे समाज, धर्म, राजनीति, प्रशासन, चिकित्सा, दर्शन इत्यादि विषय मूर्त रूप प्रदान करते हैं। मिलिन्दपञ्ह यद्यपि धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रंथ है तथापि इसमें बौद्ध धर्म एवं दर्शन संबंधी शंकाओं को उद्धृत करते हुए उनके समाधान के साथ-साथ प्रश्नोत्तर के क्रम में भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों यथा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, दार्शनिक, राजनैतिक, भौगोलिक इत्यादि का निदर्शन होने से इसका सांस्कृतिक महत्त्व स्वीकार किया जाता है। साथ ही यह ग्रंथ सामयिक जीवन से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर भी व्यापक सामग्री को अपने में समेटे हुए है।

****

[232] *द.दि.*, पृ. 430

[233] *पा.सा.इ.*, पृ. 584

तृतीय अध्याय

मिलिन्दपञ्ह : भारतीय संस्कृति का विशेष विवेचन

3.1. दार्शनिक चिंतन

3.1.1. अनात्मवाद

मिलिन्दपञ्ह के लक्खणपञ्ह के प्रारंभ में राजा मिलिन्द तथा भिक्खु[234] नागसेन के मध्य हुए पुद्गल अर्थात् जीव विषयक संवाद से बौद्ध दर्शन के प्रसिद्ध अनात्मवाद सिद्धांत का परिचय प्राप्त होता है। मिलिन्द द्वारा भन्ते नागसेन से उनका नाम पूछे जाने पर नागसेन ने उत्तर दिया कि उन्हें नागसेन नाम से जाना जाता है। उनके सब्रह्मचारी भिक्खु भी उन्हें नागसेन नाम से ही पुकारते हैं। माता-पिता नागसेन, सूरसेन, वीरसेन अथवा सिंहसेन इत्यादि ऐसा कुछ भी नाम दे देते हैं, किन्तु ये सभी व्यवहार करने के लिए संज्ञामात्र हैं, क्योंकि यथार्थ में कोई एक पुद्गल अर्थात् आत्मा नहीं होता है।[235]

नागसेन द्वारा आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करने पर मिलिन्द ने कहा कि यदि कोई एक पुद्गल नहीं है तो कौन आपको चीवर, भिक्षा, शयनासन, औषध देता है? कौन उसका भोग करता है? कौन शील की रक्षा करता है? कौन ध्यान-भावना का अभ्यास करता है? कौन आर्यमार्ग के फल निर्वाण का साक्षात्कार करता है? कौन पंचशीलों का उल्लंघन करता है। कौन पाँच अन्तरायकारक कर्मों[236] को करता है? कौन पाप-पुण्य करता है? यदि कोई आपको मारता है तो इसका आशय आपको किसी ने नहीं मारा? तब कोई आपका आचार्य तथा उपाध्याय भी नहीं हुआ और न ही आपकी उपसंपदा हुई? आप कहते हैं कि आपके सब्रह्मचारी आपको नागसेन नाम से पुकारते हैं तो यह नागसेन क्या है?[237]

---

[234] संसारे भयं इक्खतीति भिक्खु। पब्बतोव न वेधतीति मोहक्खया भिन्नसब्बकिलेसो भिक्खु। संसारे भयं इक्खन्ति, भिन्दन्ति वा पापक अकुसले धम्मेति भिक्खु। भिन्दति पापके अकुसले धम्मेति वा भिक्खु। *पा. भा. को.,* पृ. 259

[235] "नागसेनो"ति खो अहं, महाराज, ञायामि, "नागसेनो"ति खो मं, महाराज, सब्रह्मचारी समुदाचरन्ति, अपि च मातापितरो नामं करोन्ति "नागसेनो"ति वा "सूरसेनो"ति वा "वीरसेनो"ति वा "सीहसेनो"ति वा, अपि च खो, महाराज, सङ्खा समञ्ञा पञ्ञत्ति वोहारो नाममत्तं यदिदं नागसेनोति, न हेत्थ पुग्गलो उपलब्भतीति। *मि. प.,* 2/1/1, पृ. 19

[236] अन्तरायकारक कर्म हैं- मातृ वध, पितृ वध, अर्हत् वध, बुद्धशरीर से रक्त बहाना, संघ में फूट डालना।

[237] "सचे, भन्ते नागसेन, पुग्गलो नूपलब्भति, को चरहि तुम्हाकं चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं देति? को तं परिभुञ्जति? को सीलं रक्खति? को भावनमनुयुञ्जति? को मग्गफलनिब्बानानि सच्छिकरोति? को पाणं हनति? को अदिन्नं आदियति? को कामेसुमिच्छाचारं चरति? को मुसा भणति? को मज्जं पिवति? को पञ्चानन्तरियकम्मं करोति? तस्मा नत्थि कुसलं, नत्थि अकुसलं, नत्थि कुसलाकुसलानं कम्मानं कत्ता वा कारेता वा, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको। सचे, भन्ते

‘नागसेन क्या है’ इसके संबंध में मिलिन्द तथा नागसेन के मध्य जो संवाद[238] हुआ वह निम्न प्रकार है-

“क्या ये केश नागसेन हैं?”

“नहीं महाराज।”

“क्या ये रोएं नागसेन हैं?”

“नहीं महाराज।”

“क्या ये नख, दाँत, चमड़ा, माँस, स्नायु, मज्जा, अस्थि, वृक्क, हृदय, लसिका, दिमाग इत्यादि नागसेन हैं?”

“नहीं महाराज।”

“भन्ते! क्या आपका रूप नागसेन है?”

“नहीं महाराज।”

“क्या आपकी वेदनाएं नागसेन हैं?”

“नहीं महाराज।”

“क्या आपकी संज्ञा नागसेन है?”

“नहीं महाराज।”

“क्या आपके संस्कार नागसेन है?”

“नहीं महाराज।”

“क्या आपका विज्ञान नागसेन है?”

“नहीं महाराज।”

“भन्ते! तो क्या रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान सभी एकसाथ नागसेन है?”

“नहीं महाराज।”

“भन्ते! तो क्या इन रूपादि से भिन्न कोई नागसेन है?”

“नहीं महाराज।”

“भन्ते! मैं आपसे पूछते-पूछते थक गया किन्तु यह पता नहीं लगा कि नागसेन क्या है? क्या नागसेन केवल शब्दमात्र है? अन्ततः नागसेन कौन है? भन्ते! आप झूठ बोलते हैं कि नागसेन कोई नहीं है?”

नागसेन, यो तुम्हे मारेति, नत्थि तस्सापि पाणातिपातो। तुम्हाकम्पि, भन्ते नागसेन, नत्थि आचरियो, नत्थि उपज्झायो, नत्थि उपसम्पदा। ‘नागसेनोति मं, महाराज, सब्रह्मचारी समुदाचरन्ती’ति यं वदेसि, ‘कतमो एत्थ नागसेनो? *मि.प.*, 2/1/1, पृ. 19

[238] वही, 2/1/1, पृ. 19-20

मिलिन्द की आत्मा विषयक शंका का समाधान प्रतिप्रश्न पूछकर नागसेन रथ के उदाहरण[239] से इस प्रकार करते हैं-

“महाराज! क्या ईषा रथ है?”

“नहीं भन्ते।”

“क्या अक्ष रथ है?”

“नहीं भन्ते।”

“क्या चक्र रथ है?”

“नहीं भन्ते।”

“क्या रथ का पञ्जर रथ है?”

“नहीं भन्ते।”

“क्या रथ की रस्सियाँ रथ है?”

“नहीं भन्ते।”

“क्या लगाम रथ है?”

“नहीं भन्ते।”

“क्या चाबुक रथ है?”

“नहीं भन्ते।”

“क्या ईषा इत्यादि सभी एक साथ रथ है?”

“नहीं भन्ते।”

“क्या ईषा इत्यादि से परे कहीं रथ है?”

“नहीं भन्ते।”

“महाराज! आपसे पूछते-पूछते थक गया किन्तु यह पता नहीं लगा कि रथ कहाँ है? क्या रथ केवल एक शब्द मात्र है? महाराज! सम्पूर्ण जम्बूद्वीप के आप सबसे बड़े राजा हैं, भला आप किससे डर कर झूठ बोलते हैं?”

राजा मिलिन्द ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा कि वह झूठ नहीं बोल रहा है। ईषा इत्यादि अवयवों के आधार पर मात्र व्यवहार के लिए ‘रथ’ ऐसा एक नाम दिया जाता है। तब नागसेन ने मिलिन्द की शंका (नागसेन क्या है?) का समाधान करते हुए कहा कि जैसे आपने रथ को जान लिया वैसे ही केश इत्यादि के आधार पर

---

[239] *मि.प.*, 2/1/1, पृ. 20-21

व्यवहार के लिए नागसेन ऐसा एक नाम कहा जाता है। वास्तविक रूप में नागसेन ऐसा कोई एक जीव विद्यमान नहीं है। संयुत्तनिकाय को उद्धृत करते हुए नागसेन ने कहा कि जिस प्रकार अवयवों के आधार पर रथ संज्ञा होती है, उसी तरह पञ्चस्कन्ध[240] के होने से जीव समझा जाता है।[241]

नागसेन ने किसी भी अजन्म, अमर, सनातन, नित्य अथवा पुरातन तत्त्व को स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया है। उनका मानना है कि संसार में अजर, अमर, सचेतन अथवा अचेतन कोई भी तत्त्व नहीं होता है। संस्कारों की नित्यता भी नहीं होती है। परमार्थतः कोई आत्मा अथवा जीव जैसी वस्तु भी नहीं है।[242]

लक्खणपञ्ह में आत्मा के लिए वेदगू शब्द का प्रयोग मिलता है।[243] मिलिन्द नागसेन से प्रश्न करता है कि जानने वाला (ज्ञाता) कोई है अथवा नहीं? नागसेन प्रति प्रश्न करते हैं कि यह जानने वाला कौन? इसका उत्तर देते हुए मिलिन्द कहता है, "जो जीव हमारे भीतर रहकर आँख से रूपों को देखता है, कान से शब्दों को सुनता है, नाक से गन्ध लेता है, जीभ से स्वाद लेता है, शरीर से स्पर्श का अनुभव करता है और मन से धर्मों को जानता है। जैसे हम महल में बैठकर किसी भी पूर्व, पश्चिम, दक्षिण अथवा उत्तर वाली खिड़की से जिसे देखना चाहे, देख सकते हैं। वैसे ही यह आभ्यन्तर जीव जिस माध्यम से देखने की इच्छा करता है तो देखता है।[244]" नागसेन मिलिन्द के प्रश्न में ही दोष दिखा देते हैं तथा पहले कहे हुए की पीछे कहे हुए से असंबद्धता बताते हुए कहते हैं कि जैसे महल में बैठा हुआ कोई व्यक्ति किसी भी पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी अथवा दक्षिणी खिड़की से देख सकता है, वैसे ही यदि यह जीव जिस माध्यम से देखना चाहे देख सकता है तो इसे आँख, कान, नाक, जीभ, काया तथा मन से भी रूप को देखना चाहिए। इसी तरह शब्द का श्रवण, गन्ध का ग्रहण,

---

[240] पञ्चस्कन्ध हैं- रूपस्कन्ध, विज्ञानस्कन्ध, वेदनास्कन्ध, संज्ञास्कन्ध तथा संस्कारस्कन्ध। (पञ्च स्कन्धाः। रूपम्, वेदना, संज्ञा, संस्कारा, विज्ञानं चेति। *ध.स.,* 22)

[241] यथा हि अङ्गसम्भारा, होति सद्दो रथो इति। एवं खन्धेसु सन्तेसु, होति सत्तो ति सम्मुती'ति॥ *मि.प.,* 2/1/1, पृ. 21

[242] सचेतना वा अचेतना वा अजरामरा लोके नत्थि, सङ्खारानं निच्चता नत्थि, परमत्थेन सत्तूपलद्धि नत्थि, इमानि खो, महाराज, तीणि लोके नत्थी'ति। वही, 5/2/4, पृ. 191

[243] वही, 2/3/6, पृ. 43

[244] राजा आह "भन्ते नागसेन, वेदगू उपलब्भती"ति? "को पनेस, महाराज, वेदगू नामा'ति? "यो, भन्ते, अब्भन्तरे जीवो चक्खुना रूपं पस्सति, सोतेन सद्दं सुणाति, घानेन गन्धं घायति, जिव्हाय रसं सायति, कायेन फोट्ठब्बं फुसति, मनसा धम्मं विजानाति, यथा मयं इध पासादे निसिन्ना येन येन वातपानेन इच्छेय्याम पस्सितुं, तेन तेन वातपानेन पस्सेय्याम, पुरत्थिमेनपि वातपानेन पस्सेय्याम, पच्छिमेनपि वातपानेन पस्सेय्याम, उत्तरेनपि वातपानेन पस्सेय्याम, दक्खिणेनपि वातपानेन पस्सेय्याम। एवमेव खो, भन्ते, अयं अब्भन्तरे जीवो येन येन द्वारेन इच्छति पस्सितुं, तेन तेन द्वारेन पस्सती"ति। वही, 2/3/6, पृ. 43

रस का ग्रहण, स्पर्श तथा धर्म का ग्रहण प्रत्येक इन्द्रिय से होना चाहिए।[245] किन्तु मिलिन्द "नहीं, भन्ते" कहकर अपनी सीमा स्वीकार कर लेता है।

नागसेन ज्ञाता को स्पष्टरूप में नकारते हैं तथा प्रश्न करते हैं कि खिड़कियों को खोल देने से महल में बैठे-बैठे ही जिस तरह खुले आकाश की ओर साफ-साफ देखा जा सकता है, क्या इसी तरह व्यक्ति विशेष के भीतर रहने वाला जीव आँखों के खुल जाने से खुले आकाश के सभी रूपों को देख सकता है? कान, नाक, जीभ और काया के खुल जाने पर क्रमशः क्या शब्दों को साफ-साफ सुन सकता है, गंधों को सूँघ सकता है, रसों का आस्वादन कर सकता है और वस्तुओं का स्पर्श कर सकता है?[246] मिलिन्द "नहीं, भन्ते" कहकर नागसेन से सहमत हो जाते हैं।

चक्षु व रूपों के होने से चक्षु विज्ञान उत्पन होता है। उसके उत्पन होने के साथ ही स्पर्श, वेदना, संज्ञा, चेतना, एकाग्रता, जीवितेन्द्रिय एवं मनस्कार ये सब एक के बाद एक उत्पन होते हैं। इसी तरह दूसरी इन्द्रियों के साथ भी इस त्रिक को समझ लेना चाहिए। ये धर्म एक-दूसरे के होने से ही उत्पन्न होते हैं। दूसरा किसी जानने वाले अर्थात् आत्मा का अस्तित्व नहीं है[247] धर्म अर्थात् गुण के अतिरिक्त आत्मा नामक कोई स्थाई तत्त्व नहीं होता है।

'जान लेना' जीव का लक्षण न होकर विज्ञान की पहचान का द्योतक है। किसी भी चीज को ठीक से समझ लेना प्रज्ञा का लक्षण है तथा जीव नामक कोई वस्तु नहीं होती है।[248] मिलिन्द शंका करता है कि यदि जीव जैसी कोई चीज नहीं है तो वह क्या है जो लोगों में आँख से रूप को देखता है, कान से शब्दों को सुनता है,

---

[245] *मि.प.*, 2/3/6, पृ. 43

[246] "न खो ते, महाराज, युज्जति पुरिमेन वा पच्छिमं, पच्छिमेन वा पुरिमं, यथा वा पन, महाराज, मयं इध पासादे निसिन्ना इमेसु जालवातपानेसु उग्घाटितेसु महन्तेन आकासेन बहिमुखा सुट्ठुतरं रूपं पस्साम, एवमेतेन अब्भन्तरे जीवेनापि चक्खुद्वारेसु उग्घाटितेसु महन्तेन आकासेन सुट्ठुतरं रूपं पस्सितब्बं, सोतेसु उग्घाटितेसु...पे०... घाने उग्घाटिते...पे०... जिव्हाय उग्घाटिताय...पे०... काये उग्घाटिते महन्तेन आकासेन सुट्ठुतरं सद्दो सोतब्बो, गन्धो घायितब्बो, रसो सायितब्बो, फोट्ठब्बो फुसितब्बो"ति? वही, पृ. 43-44

[247] चक्खुञ्च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं, तंसहजाता फस्सो वेदना सञ्ञा चेतना एकग्गता जीवितिन्द्रियं मनसिकारोति एवमेते धम्मा पच्चयतो जायन्ति, न हेत्थ वेदगू उपलब्भति, सोतञ्च पटिच्च सद्दे च...पे०... मनञ्च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं, तंसहजाता फस्सो वेदना सञ्ञा चेतना एकग्गता जीवितिन्द्रियं मनसिकारोति एवमेते धम्मा पच्चयतो जायन्ति, न हेत्थ वेदगू उपलब्भती"ति। वही, पृ. 44

[248] "विजाननलक्खणं, महाराज, विञ्ञाणं, पजाननलक्खणा पञ्ञा, भूतस्मिं जीवो नुपलब्भती"ति। वही, 3/4/15, पृ. 70

नाक से गंधों को सूंघता है, जीभ से स्वादों को चखता है, शरीर से स्पर्श करता है और मन से धर्मों को जानता है।[249]

भन्ते नागसेन तार्किक ढंग से आत्मा के अस्तित्व को नकारते हुए कहता है कि यदि शरीर से भिन्न कोई जीव है, जो व्यक्तियों के भीतर रह कर आँख से रूप को देखता है, तो आँख निकाल लेने पर बड़े छिद्र से उसे और अच्छा दिखना चाहिए। कान काट लेने पर उसे और भी अच्छा सुनाई देना चाहिए। इसी तरह जीभ काट देने पर अच्छी तरह स्वाद आना चाहिए तथा शरीर को काट देने पर अच्छी तरह स्पर्श करना चाहिए।[250]

3.1.2. पुनर्जन्म

बौद्ध दर्शन आत्मा के अस्तित्व को नकारते हुए पुनर्जन्म के सिद्धांत को स्वीकार करता है। अनात्मवाद की पुनर्जन्मवाद के साथ संगति किस प्रकार की जाए? इस प्रश्न को समझ पाने में असमर्थ मिलिन्द नागसेन से प्रश्न करता है कि यदि आत्मा नहीं तो कौन जन्म ग्रहण करता है? नागसेन उत्तर देते हैं कि महाराज नाम व रूप जन्म ग्रहण करते है।[251] क्या वर्तमान जन्म के नाम-रूप ही भविष्य में जन्म ग्रहण करते हैं? इस प्रश्न के समाधान में नागसेन कहते हैं कि वर्तमान जन्म के नाम-रूप द्वारा मानव जो शुभ-अशुभ कर्म करके पाप-पुण्य कमाता है उन कर्मों के द्वारा अन्य नाम-रूप उत्पन्न होते हैं। कर्मों से मुक्ति न मिलने पर एक नाम-रूप नष्ट होता है तथा अन्य पुनर्जन्म ग्रहण करता रहता है।

यदि कोई व्यक्ति हेमन्त ऋतु में आग जलाकर तापे और बिना बुझाये छोड़कर चला जाए। उस आग से किसी दूसरे व्यक्ति के खेत की फसल जल जाए। राजा के सम्मुख आग लगाने वाला कहे कि उसके द्वारा जलाई गई आग दूसरी थी तथा खेत को जलाने वाली आग दूसरी है। अतः उसे दण्ड न मिले किन्तु उसी के द्वारा प्रदीप्त अग्नि ने बढ़ते-बढ़ते खेत को जलाया। अतः उसी व्यक्ति को दण्ड मिलना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्य वर्तमान जीवन के नाम और रूप से पाप-पुण्य कर्मों को करता है। उन कर्मों के प्रभाव से ही दूसरा नाम-रूप ग्रहण करता है।[252] सांसारिक आसक्ति के साथ मरने वाला व्यक्ति पुनर्जन्म ग्रहण करता है।[253] द्वितीय (नाम-रूप)

---

[249] यदि जीवो नुपलब्भति, अथ को चरहि चक्खुना रूपं पस्सति, सोतेन सद्दं सुणाति, घानेन गन्धं घायति, जिव्हाय रसं सायति, कायेन फोट्ठब्बं फुसति, मनसा धम्मं विजानाती'ति? *मि.प.,* 3/4/15, पृ. 70

[250] "यदि जीवो चक्खुना रूपं पस्सति...पे०... मनसा धम्मं विजानाति, सो जीवो चक्खुद्वारेसु उप्पाटितेसु महन्तेन आकासेन बहिमुखो सुट्ठुतरं रूपं पस्सेय्य, सोतेसु उप्पाटितेसु, घाने उप्पाटिते, जिव्हाय उप्पाटिताय, काये उप्पाटिते महन्तेन आकासेन सुट्ठुतरं सद्दं सुणेय्य, गन्धं घायेय्य, रसं सायेय्य, फोट्ठब्बं फुसेय्या"ति? वही

[251] राजा आह "भन्ते नागसेन, को पटिसन्दहती"ति? थेरो आह "नामरूपं खो, महाराज, पटिसन्दहती"ति। वही, 2/2/6, पृ. 36

[252] वही, 2/2/1, पृ. 36

प्रथम (नाम-रूप) से उत्पन होता है। अत: धर्म-सन्तति ही संसरण करती है, जन्म ग्रहण करती है। जब तक प्रथम नाम-रूप अपने कर्मों से मुक्त नहीं होगा तब तक वह जन्म ग्रहण करता रहेगा।

मिलिन्द पुन: प्रश्न करता है, "भन्ते! जो उत्पन्न होता है, क्या वह वही व्यक्ति होता है अथवा दूसरा?"[254] नागसेन क्षणिकता के सिद्धांत को आधार बनाकर स्पष्ट करते हैं कि किसी वस्तु के अस्तित्व के प्रवाह में एक अवस्था उत्पन्न होती है, एक लय होती है और इस तरह प्रवाह निरंतर चलता रहता है। एक प्रवाह की दो अवस्थाओं अर्थात् उत्पत्ति तथा विनाश के मध्य में एक क्षण का भी अंतर नहीं होता, क्योंकि एक अवस्था के नष्ट होते ही दूसरी अवस्था का जन्म हो जाता है।[255] एक जन्म के अन्तिम विज्ञान के लय होते ही दूसरे जन्म का प्रथम विज्ञान उठ खड़ा होता है। अत: न वही जीव रहता है और न दूसरा होता है।

नागसेन ने दीप के उदाहरण[256] द्वारा इस सिद्धांत को स्पष्ट किया है। रात्रिकाल में अन्धेरा दूर करने के लिए दीप जलाया जाता है। रात्रि के दूसरे प्रहर की लौ प्रथम प्रहर के दीप की लौ से कम होती है किन्तु जलते हुए दीप का प्रवाह निरंतर विद्यमान रहता है। एक अन्य उदाहरण[257] से भी स्पष्ट किया गया है। दूध जमकर दही बन जाता है। दही से मक्खन तथा मक्खन से घृत बना लिया जाता है। तब यदि कोई कहे कि 'जो दूध था वही दही है' गलत होगा। इसी प्रकार किसी वस्तु के अस्तित्व के प्रवाह में एक अवस्था उत्पन्न होती है, एक नष्ट होती है तथा प्रवाह बना रहता है।

तृतीय परिच्छेद में मिलिन्द नागसेन से प्रश्न करता है कि क्या संक्रमण हुए बिना पुनर्जन्म होता है? यदि होता है तो किस प्रकार होता है?[258] नागसेन एक उपमा के माध्यम से इस जटिल गुत्थी को सुलझाते हुए कहते हैं कि एक दीप से दूसरा दीप जला दें तो क्या प्रथम दीप दूसरे में संक्रमित हो जाता है? अर्थात् संक्रमित नहीं होता। इसी प्रकार बिना संक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है।[259] एक अन्य उदाहरण से भी इसे स्पष्ट

---

[253] *मि.प.,* 2/2/1, पृ. 38

[254] "भन्ते नागसेन, यो उप्पज्जति, सो एव सो, उदाहु अञ्ञो"ति? वही, 2/2/1, पृ. 31

[255] धम्मसन्तति सन्दहति, अञ्ञो उप्पज्जति, अञ्ञो निरुज्झति, अपुब्बं अचरिमं विय सन्दहति, तेन न च सो, न च अञ्ञो, पुरिमविञ्ञाणे पच्छिमविञ्ञाणं सङ्गहं गच्छती। वही, 2/2/1, पृ. 32

[256] वही, 2/2/1, पृ. 31

[257] वही

[258] वही, 3/5/5, पृ. 57

[259] "यथा, महाराज, कोचिदेव पुरिसो पदीपतो पदीपं पदीपेय्य, किंनु खो सो, महाराज, पदीपो पदीपम्हा सङ्कन्तो"ति? "न हि, भन्ते"ति। "एवमेव खो, महाराज, न च सङ्कमति पटिसन्दहति चा"ति। वही, 3/5/5, पृ. 57

किया गया है। आचार्य के मुख से निकलकर श्लोक शिष्य में प्रवेश नहीं करता, अपितु शिष्य भी सीख जाता है। ऐसा कोई जीव नहीं है जो इस शरीर से निकलकर दूसरे में प्रवेश करता है।

3.1.3.कर्मवाद

बौद्ध धर्म में पुनर्जन्म से जुड़ा हुआ सिद्धांत कर्मवाद का है। एक व्यक्ति नाम-रूप से अच्छे-बुरे कर्मों को करता है। उन कर्मों के प्रभाव से दूसरा नाम-रूप जन्म लेता है। अत: पाप कर्म से वह मुक्त नहीं होता।[260] कर्म प्रवाहमान बने रहते हैं तथा पुनर्जन्म होता रहता है। जिसके कर्मों का क्षय हो जाता है वह पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करता। अर्थात् जन्म ग्रहण करने के जो हेतु और प्रत्यय हैं उनके शान्त होने पर पुनर्जन्म नहीं होता।[261]

मिलिन्दपञ्ह[262] में बताया गया है कि सभी जीव अपने कर्मों के फल का ही भोग करते हैं, सभी जीव अपने कर्मों के स्वामी हैं, कर्मों के अनुसार ही नाना योनियों में जन्म ग्रहण करते हैं। सभी मनुष्यों के अपने-अपने कर्म भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं जिससे सभी एक ही तरह के नहीं हैं। कोई कम आयु वाला, कोई दीर्घ आयु वाला, कोई बहुत रोगी, कोई निरोगी, कोई भद्दा, कोई बड़ा सुन्दर, कोई प्रभावहीन, कोई बड़े प्रभाव वाला, कोई धनी, कोई नीचे कुल वाला, कोई उँचे कुल वाला, कोई मूर्ख और कोई बुद्धिमान होता है।

पूर्व जन्मों के कर्मों का फल बना रहता है। समय पर प्रयास करने से ही इन कर्मों के प्रवाह से बचा जा सकता है। जो कुछ करना शेष है उसे पूरा करने के लिए वर्तमान जन्म में ही प्रयत्न करना चाहिए। जैसे प्यास लगने पर कुआँ खुदवाकर जल पीना महत्त्वहीन है वैसे ही समय पड़ने पर प्रयत्न करना महत्त्वहीन है। पूर्वजन्म के कर्मों का फल स्वयं होता है।[263]

मानव द्वारा किए गए अच्छे-बुरे कर्म कभी भी पीछा न छोड़ने वाली छाया की भांति प्रवाहमान रहते हैं।[264] मिलिन्दपञ्ह[265] से ज्ञात होता है कि जो व्यक्ति किसी व्यक्ति को भूखा रखकर मारता है, वह लाखों वर्षों तक भूख से तड़पकर मरता है। जो किसी को प्यासा मारता है वह प्यास से व्याकुल होकर दुबला, पतला तथा शुष्क हृदय वाला होकर मरता है। जो अग्नि से जलाकर मारता है वह कई वर्षों तक आग से जलाकर मारा

---

[260] इमिना नामरूपेन कम्मं करोति सोभनं वा असोभनं वा, तेन कम्मेन अञ्ञं नामरूपं पटिसन्दहति, तस्मा न परिमुत्तो पापकेहि कम्मेही"ति। *मि.प.*, 3/5/7, पृ. 58

[261] वही, 2/2/2, पृ. 32

[262] वही, 3/4/4, पृ. 52

[263] वही, 3/4/5, पृ. 53

[264] वही, 3/5/8, पृ. 58

[265] वही, 5/5/6, पृ. 216-17

जाता है। जो किसी को जल में डुबाकर मारता है वह भी जल में डूबकर मरता है। जो किसी को भाला-तीर चलाकर मारता है वह भी लाखों वर्षों तक भाला या तीर के आघात से ही मारा जाता है।

3.1.4. प्रतीत्यसमुत्पाद

भगवान् बुद्ध ने दुःखों के कारण की चर्चा करते हुए कार्य-कारण सिद्धांत की विस्तृत व्याख्या की जिसे उन्होंने प्रतीत्य समुत्पाद (पटिच्चसमुप्पादो[266]) कहा। बुद्ध का कहना है कि बिना कारण के कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता। उनके अनुसार कारण के होने पर ही कार्य की उत्पत्ति होती है।[267] और जिसकी उत्पत्ति होती है उसका विनाश भी निश्चित ही होता है।

मिलिन्दपञ्ह में प्रतीत्य-समुत्पाद सिद्धांत के संदर्भ मिलते हैं। क्या ऐसे संस्कार हैं जो उत्पन्न होते हैं? मिलिन्द द्वारा पूछे गए इस प्रश्न पर नागसेन कहते हैं कि चक्षु तथा रूपों के रहने से चक्षुविज्ञान उत्पन्न होता है। चक्षुविज्ञान के होने से चक्षुःस्पर्श होता है। उससे वेदना होती है, वेदना से तृष्णा, तृष्णा से उपादान, उपादान से भव, भव से जन्म होता है। जन्म से जरा-मरण, शोक-परिवेदन, दौर्मनस्य इत्यादि दुःख होते हैं। इस दुःख से ही दुःखसमुदय तथा दुःख निरोध होता है।[268] चक्षु तथा रूपों के न होने पर चक्षुविज्ञान नहीं होता। चक्षुविज्ञान के न होने पर चक्षुःस्पर्श नहीं होता। इसी तरह दुःख नहीं होते। क्या ऐसे भी संस्कार हैं, जो न होकर भी पैदा हो जाते हैं? नागसेन कहते हैं नहीं, ऐसे संस्कार नहीं हैं जो नहीं होकर भी पैदा होते हैं। वे ही संस्कार पैदा होते हैं जिनका प्रवाह पहले से ही चला आ रहा है।

3.1.5. निर्वाण

बौद्ध धर्म तथा दर्शन का केन्द्रीय विषय निर्वाण है। नागसेन अपनी प्रव्रज्या का उद्देश्य मिलिन्द को स्पष्ट करते हैं कि दुःखों का नाश करने के लिए तथा नवीन दुःखों की उत्पत्ति को विरमित करने के लिए उन्होंने प्रव्रज्या

---

[266] *दी.नि.,* 2/2

[267] अस्मिन् सति इदं भवति। *म.नि.*, 1/48

[268] "चक्खुस्मिञ्च खो, महाराज, सति रूपेसु च चक्खुविञ्ञाणं होति, चक्खुविञ्ञाणे सति चक्खुसम्फस्सो होति, चक्खुसम्फस्से सति वेदना होति, वेदनाय सति तण्हा होति, तण्हाय सति उपादानं होति, उपादाने सति भवो होति, भवे सति जाति होति, जातिया सति जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति, एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। चक्खुस्मिञ्च खो, महाराज, असति रूपेसु च असति चक्खुविञ्ञाणं न होति, चक्खुविञ्ञाणे असति चक्खुसम्फस्सो न होति, चक्खुसम्फस्से असति वेदना न होति, वेदनाय असति तण्हा न होति, तण्हाय असति उपादानं न होति, उपादाने असति भवो न होति, भवे असति जाति न होति, जातिया असति जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा न होन्ति, एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती"ति। *मि.प.,* 2/3/4, पृ. 41

ग्रहण की है। पुनर्जन्म से छुटकारा प्राप्त कर परम निर्वाण पाना उनका उद्देश्य है।[269] मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि निर्वाण प्राप्ति हेतु प्रव्रजित होकर भिक्खु होने की अनिवार्यता नहीं होती है। गृहस्थ भी निर्वाण प्राप्त कर सकता है।[270] निर्वाण प्राप्त व्यक्ति को अर्हत्[271] कहा गया है। मिलिन्दपञ्ह में उल्लेख मिलता है कि गृहस्थ यदि अर्हत् पद प्राप्त कर ले तो उसे उसी दिन प्रव्रजित हो जाना चाहिए अथवा परिनिर्वाण प्राप्त कर लेना चाहिए, क्योंकि गृहस्थ वेश अर्हत्त्व को सँभालने में असमर्थ है।[272]

निर्वाण के स्वरूप के बारे में मिलिन्दपञ्ह में कहा गया है कि दुःखों से भरे हुए संसार में आते ही मनुष्य को चारों तरफ भय ही भय दिखाई देता है। इस सांसारिक बंधन से यदि छूटना चाहता है तो परमशान्त निर्वाण ही एकमात्र उपाय तथा शरण है जहाँ सारे संस्कार सदा के लिए रुक जाते हैं, सारी उपाधियाँ मिट जाती हैं, तृष्णा का नाम भी नहीं रह जाता, राग का अंत हो जाता है और आवागमन का निरोध हो जाता है।[273]

निरोध हो जाना अर्थात् बुझ जाना ही निर्वाण है। सभी संसारी अज्ञानी जीव इन्द्रियों एवं विषयों के उपभोग में लगे रहते हैं, उसी में आनन्द लेते हैं और उसी में डूबे रहते हैं। वे बार-बार जन्म लेते हैं, वृद्ध होते हैं, मरण को प्राप्त होते हैं, शोक करते हैं, रुदन करते हैं, दुःख तथा बैचेनी में पड़े हुए दुःख को ही प्राप्त करते हैं। ज्ञानी आर्यश्रावक जन इन्द्रियों तथा विषयों से विरत रहता है, उनमें आनन्द नहीं लेता। इससे तृष्णाओं का निरोध हो जाता है। तृष्णा-निरोध से उपादान का, उपादान से भव का, भव से जाति का, जाति से जरा-मरण, शोक, परिवेदन, दुःख, दौर्मनस्य अर्थात् बैचेनी का निरोध हो निर्वाण का मार्ग प्रशस्त होता है।[274]

---

[269] *मि.प.*, 2/1/5, पृ. 24

[270] वही, 5/2/2, पृ. 189

[271] अरीनं हतत्ता पच्चयादीनञ्च अरहत्ता अरहता। अन्तरायिकधम्मे वा जानता निय्यानिकधम्मे पस्सता, किलेसारीनं हतत्ता अरहता। *पा.भा.को.,* पृ. 44

[272] *मि.प.*, 5/2/2, पृ. 190

[273] तस्स पवत्ते भयदस्साविस्स एवं चित्तं उप्पज्जति 'सन्तत्तं खो पनेतं पवत्तं सम्पज्जलितं बहुदुक्खं बहूपायासं, यदि कोचि लभेथ अप्पवत्तं एतं सन्तं एतं पणीतं, यदिदं सब्बसङ्खारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हक्खयो विरागो निरोधो निब्बान'न्ति। वही, 5/3/11, पृ. 231

[274] "सब्बे बालपुथुज्जना खो, महाराज, अज्झत्तिकबाहिरे आयतने अभिनन्दन्ति अभिवदन्ति अज्झोसाय तिट्ठन्ति, ते तेन सोतेन वुय्हन्ति, न परिमुच्चन्ति जातिया जराय मरणेन सोकेन परिदेवेन दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि न परिमुच्चन्ति दुक्खस्माति वदामि। सुतवा च खो, महाराज, अरियसावको अज्झत्तिकबाहिरे आयतने नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति, तस्स तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो तण्हा निरुज्झति, तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो, उपादाननिरोधा भवनिरोधो, भवनिरोधा जातिनिरोधो, जातिनिरोधा जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति, एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति, एवं खो, महाराज, निरोधो निब्बान"न्ति। वही, 3/4/8, पृ. 55

निर्वाण प्राप्ति के बाद व्यक्तित्व का सर्वथा लोप हो जाता है।[275] व्यक्तित्व के लोप से आशय समस्त मानसिक धर्मों के नाश से है। निर्वाण का अर्थ जीवन मुक्ति नहीं है। निर्वाण प्राप्ति के बाद भी शरीर के नाश के लिए व्यक्ति को प्रतीक्षा करनी पड़ती है।[276] शारीरिक कर्मों का प्रवाह जब तक विद्यमान रहता है तभी तक शरीर रहता है। निर्वाण प्राप्ति के बाद शरीर त्यागने अथवा मृत्यु की स्थिति को परिनिर्वाण कहा जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति को निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती है। निर्वाण केवल उन्हें ही मिलता है जो पुण्य करने वाले, स्वीकृत तथा ज्ञेय धर्मों को मानने वाले, अनुचित धर्मों को छोड़ने वाले, अभ्यास में लाने योग्य धर्मों को अपनाने वाले तथा साक्षात्कार योग्य धर्मों का साक्षात्कार करने वाले हैं।[277] मिलिन्दपञ्ह में निर्वाण के अयोग्य 15 व्यक्तियों को सूचीबद्ध किया है। वे हैं- पशु आदि अधम योनि में जन्म लेने वाले, प्रेत योनि में उत्पन्न हुए, मिथ्या दृष्टि वाले, दूसरों को ठगने वाले, मातृघातक, पितृघातक, अर्हत् के हत्यारे, संघभेदी, बुद्ध शरीर से रक्त बहाने वाले, चोरी से संघ में प्रविष्ट हुए, तैर्थिकों अर्थात् मिथ्यावादियों के मत को मानने वाले, भिक्खुणी के साथ व्यभिचार करने वाले, तेरह बड़े पापों[278] का प्रायश्चित न करने वाले, नपुंसक, उभतो व्यंजक अर्थात् उभयलिङ्गी तथा सात वर्ष से कम उम्र के बालक।[279]

निर्वाण अहेतुक होता है क्योंकि निर्वाण को उत्पन्न नहीं किया जा सकता। निर्वाण निर्गुण (असंस्कृत) होता है क्योंकि किसी ने इसका निर्माण नहीं किया है। निर्वाण तीनों कालों से परे है। निर्वाण को न आँख से देखा जा सकता है, न कान से सुना जा सकता है, न नाक से सूंघा जा सकता है, न जीभ से चखा जा सकता है, न शरीर से स्पर्श किया जा सकता है। निर्वाण को केवल मन से जाना जा सकता है। अर्हत् पद पाकर भिक्खु विशुद्ध, प्रणीत, ऋजु, आवरण तथा कामनाओं से रहित मन से निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है।[280]

निर्वाण शान्त, सुखमय तथा प्रणीत है। जैसे गुरु से शिक्षा लेकर शिष्य अपनी समझ से विद्या का साक्षात्कार करता है, वैसे ही सन्मार्ग पर चलकर बुद्धोपदेश के द्वारा संसार के समस्त संस्कारों को अनित्य, दुःखमय तथा अनात्म की दृष्टि से देखते हुए कोई भी व्यक्ति प्रज्ञा से निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है। विघ्नों से रहित

---

[275] *मि.प.*, 3/5/10, पृ. 59

[276] वही, 2/2/4, पृ. 35

[277] वही, 3/4/9, पृ. 55

[278] विनयपिटक में तेरह बड़े पापों को संघादिसेस कहा गया है जिनके लिए दण्ड संघ ही दे सकता है। ये हैं जानबूझकर वीर्य मोचन, स्त्री स्पर्श, विकारयुक्त होकर स्त्री से मैथुन के संबंध में वार्ता करना, स्त्री या पुरूष का दूत बनना, प्रमाणयुक्त कुटी के निर्माण में भिक्खु वर्ग से सलाह न लेना, भिक्खुओं को न बुलाना, निर्मूल पाराजिक का दोषारोपण करना, संघ में फूट डालना, जिद्द पर अड़िग रहना, भिक्खु संघ की बात न सुनना, दुराचार से कुलों को बिगाड़ना।

[279] *मि.प.,* 5/3/8, पृ. 221

[280] वही, 5/2/5, पृ. 193

होने से, निरुपद्रव होने से, अभय, कुशल, शान्त, सुखमय, प्रसन्न, नम्र एवं शुद्ध होने से तथा शीलपालन करने से निर्वाण का दर्शन किया जा सकता है।[281]

मिलिन्द प्रश्न करता है क्या वह भी निर्वाण के सुख को जान सकता है जिसने निर्वाण को प्राप्त नहीं किया है? मिलिन्द के प्रश्न का उत्तर देते हुए नागसेन कहते हैं कि जैसे जिनके हाथ-पैर कभी भी नहीं काटे गए उन व्यक्तियों को, अन्य जिनके हाथ-पैर काटे गए हैं के रोने-पीटने को सुनकर दु:ख का पता लगता है, वैसे ही निर्वाण प्राप्त व्यक्ति के संतोष तथा प्रीतिपूर्ण वाक्यों को सुनकर अन्य जिन्होंने निर्वाण प्राप्त नहीं किया है, निर्वाण के सुख को जान सकते हैं।[282]

क्या निर्वाण में सुख ही सुख है अथवा कुछ दु:ख भी लगा रहता है? मिलिन्द के प्रश्न का समाधान करते हुए नागसेन ने कहा कि निर्वाण में दु:ख का लेश भी नहीं है। निर्वाण की अनुभूति सुखमय होती है। दुख तो निर्वाण के साक्षात् करने से पूर्व की अवस्था है। यह तो निर्वाण की खोज करने की अवस्था है।[283]

3.1.6.नाम-रूप

बौद्ध धर्म-दर्शन के अनुसार नाम व रूप का पुनर्जन्म होता है। यह नाम-रूप क्या है? मिलिन्दपञ्ह में नागसेन इनको परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार जितनी स्थूल चीजें हैं सभी रूप हैं और जितने सूक्ष्म मानसिक धर्म हैं सभी नाम हैं।[284] ये दोनों परस्पर आश्रित हैं। एक उदाहरण से नागसेन ने नाम-रूप की परस्पर आश्रितता को स्पष्ट किया है। यदि मुर्गी के पेट में अण्डा नहीं होगा तो बच्चा (चूजा) भी नहीं होगा। जैसे अण्डा तथा बच्चा दोनों एक-दूसरे पर आश्रित हैं वैसे ही नाम तथा रूप एक-दूसरे के बिना नहीं ठहर सकते।

3.1.7.काल

काल तीन हैं- भूत, वर्तमान व भविष्यत्। काल यथार्थ रूप में क्या है? क्या काल नाम की कोई वस्तु होती है? इन प्रश्नों के उत्तर में नागसेन कहते हैं कि काल कोई चीज है भी और नहीं भी। कुछ ऐसे संस्कार जो बीत चुके हैं, नष्ट हो गए हैं, विद्यमान नहीं हैं, सर्वथा परिवर्तित हो गए हैं, उनके लिए काल नहीं है। जो धर्म लय

---

[281] *मि.प.,* 5/3/11, पृ. 228

[282] वही, 5/3/9, पृ. 223

[283] वही, 3/4/10, पृ. 56

[284] ओळारिकं, एतं रूपं, ये तत्थ सुखुमा चित्तचेतसिका धम्मा, एतं नाम"न्ति। वही, 2/2/8, पृ. 38

हो रहे हैं, अथवा कहीं प्रतिसन्धि कर रहे हैं, उनके लिए काल है। परम निर्वाण के लिए काल नहीं है और जो मरकर जन्म ले रहे हैं, उनके लिए काल है।[285]

तीनों कालों का मूल क्या है? नागसेन बतलाते हैं कि अतीत काल का मूल अविद्या है। अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार से विज्ञान, विज्ञान से नाम-रूप, नाम-रूप से षडायतन, षडायतन से स्पर्श, स्पर्श से वेदना, वेदना से तृष्णा, तृष्णा से उपादान, उपादान से भव, भव से जन्म, जन्म से मृत्यु, मृत्यु से शोक-परिवेदन इत्यादि दुःख उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार दुखों का प्रारम्भ कहाँ से हुआ, इसका पता नहीं।[286]

अतीत काल का आरंभ कहाँ से हुआ यह ज्ञात नहीं किया जा सकता। जैसे कोई व्यक्ति एक छोटे से बीज को जमीन में रोप दे। उस बीज से अंकुर फूटे और धीरे-धीरे बड़ा होकर वृक्ष हो जाए। उस वृक्ष में उत्पन्न फल के बीज को कोई व्यक्ति पुनः रोप दे। यह प्रक्रिया निरन्तर गतिमान है। यदि अन्य व्यक्ति भी अन्य बीजों को इसी तरह रोपें तो इसके प्रवाह का अंत नहीं होगा।[287] इसे ही काल चक्र कहा गया। जैसे चक्र का न आदि है और न अन्त, वैसे ही अतीत काल का भी आदि तथा अन्त नहीं है।

3.2. धार्मिक चिंतन

3.2.1.बौद्ध धर्म संबंधी विचार

आर्यसत्य- मिलिन्दपञ्ह से बौद्ध धर्म के आधार स्तंभ चार आर्यसत्यों के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं।[288] आर्यसत्य हैं- दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध तथा दुःखनिरोधगामी मार्ग। निर्वाण का इच्छुक व्यक्ति इन चार आर्य सत्यों से युक्त बुद्धधर्म का श्रवण करता है तो वह जन्म, जरा तथा मरण के बंधनों से मुक्त हो जाता है। वह शोक, रोने-पीटने, दुःख, चिन्ता तथा उद्विग्नता से छूट जाता है।[289] मिलिन्दपञ्ह में नागसेन के द्वारा संसार में व्याप्त

---

[285] *मि.प.,* 2/2/9, पृ. 39

[286] वही, 2/3/1, पृ. 39

[287] वही, 2/3/2, पृ. 39

[288] वही, 4/1/5, पृ. 94, 5/1/1, पृ. 170, 5/4/1, पृ. 237

[289] चत्तारि अरियसच्चानि अक्खातानि। सेय्यथीदं, दुक्खं अरियसच्चं दुक्खसमुदयं अरियसच्चं दुक्खनिरोधं अरियसच्चं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं, तत्थ ये केचि अञ्ञापेक्खा चतुसच्चं धम्मं सुणन्ति, ते जातिया परिमुच्चन्ति , जराय परिमुच्चन्ति, मरणा परिमुच्चन्ति, सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासेहि परिमुच्चन्ति। वही, 5/4/1, पृ. 237

विभिन्न दुःखों का विश्लेषण सूक्ष्म ढंग से किया है[290], जिससे स्पष्ट होता है कि जन्म के साथ ही दुःखों का आरम्भ होता है तथा मृत्युपर्यंत भी मानव इनसे मुक्त नहीं हो पाता।

मिलिन्दपञ्ह में दुःखों के कारणभूत अविद्या को स्वीकार किया गया है। अतीत जन्म का मूल अविद्या को स्वीकार किया गया है। अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार से विज्ञान, विज्ञान से नाम-रूप, नाम-रूप से षडायतन, षडायतन से स्पर्श, स्पर्श से वेदना, वेदना से तृष्णा, तृष्णा से उपादान, उपादान से भव, भव से जन्म, जन्म से मृत्यु, मृत्यु से शोक-परिवेदन इत्यादि दुःख उत्पन्न होते हैं।[291] इस तरह यह भव चक्र चलता रहता है।

अविद्या के कारण ही व्यक्ति सांसारिक बंधनों में पड़ा रहता है। मिलिन्दपञ्ह में दस सांसारिक बंधन बताए गए हैं- माता, पिता, भार्या, पुत्र, बंधु, मित्र, धन, लाभ-सत्कार, ऐश्वर्य तथा पाँच काम गुण अर्थात् पाँचों इन्द्रियों के काम-भोग।[292] इन बंधनों के मोह से तृष्णा का जन्म होता है तथा व्यक्ति दुःखों से घिर जाता है। जब व्यक्ति अपनी प्रज्ञा से अनात्म तथा अनित्यता को जानते हुए इन्द्रियों तथा विषयों से विरत रहता है तो इससे तृष्णाओं का निरोध हो जाता है। तृष्णा-निरोध से उपादान का, उपादान से भव का, भव से जाति का, जाति से जरा-मरण, शोक, परिवेदन, दुःख, दौर्मनस्य अर्थात् बैचेनी इत्यादि दुःखों का निरोध हो निर्वाण का मार्ग प्रशस्त होता है।[293]

त्रिविध यान - मिलिन्दपञ्ह के चौथे परिच्छेद में सप्तविध चित्त का विवरण प्राप्त होता है, जिसके आधार पर निर्वाण प्राप्ति के त्रिविध यानों श्रावकयान, प्रत्येक बुद्धयान तथा बोधिसत्त्व यान का विश्लेषण किया जा सकता है। ज्ञान सीखने से पूर्व की अवस्था में चित्त संक्लेषावस्था में होता है। जो व्यक्ति रागयुक्त, द्वेषयुक्त,

---

[290] *मि.प.*, 4/4/5, पृ. 144

[291] "अतीतस्स च, महाराज, अद्धानस्स अनागतस्स च अद्धानस्स पच्चुप्पन्नस्स च अद्धानस्स अविज्जा मूलं। अविज्जापच्चया सङ्खारा, सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं, विञ्ञाणपच्चया नामरूपं, नामरूपपच्चया सळायतनं, सळायतनपच्चया फस्सो, फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा, तण्हापच्चया उपादानं, उपादानपच्चया भवो, भवपच्चया जाति, जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स अद्धानस्सपुरिमा कोटि न पञ्ञायती"ति। वही, 2/3/1, पृ. 39

[292] वही, 5/3/2, पृ. 205

[293] वही, 3/4/8, पृ. 55

क्लेषों से युक्त हैं तथा जिन्होंने शरीर, शील, चित्त तथा प्रज्ञा की भावना नहीं की है उनका चित्त भारी, मोटा और मन्द होता है।[294]

निर्वाण प्राप्ति के प्रथम श्रावक यान में साधक को चार अवस्थाओं अर्थात् भूमियों स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत् से गुजरना होता है। स्रोतापन्न की अवस्था में साधक का चित्त गलत मार्ग की ओर नहीं जाता, क्योंकि यह चित्त निर्वाण के सच्चे सिद्धांत से तथा बुद्ध के धर्म से परिचित हो जाता है। चित्त तीन भ्रममूलक विषयों सत्कायदृष्टि (नित्य आत्मा की स्थिति), विचिकित्सा (संदेह) तथा शीलव्रत परामर्श (व्रत, उपवासादि में आसक्ति) को छोड़कर स्रोतापन्न भूमि को प्राप्त करता है।[295] कामराग तथा प्रतिघ (किसी के प्रति अनिष्ट करने की संभावना) आदि क्लेशों के दूर न होने से पुनर्जन्म लेना पड़ता है। अधिक से अधिक सात बार तक जन्म ले वह निर्वाण प्राप्त करता है।[296]

सकृदागामी का अर्थ है एक बार जन्म ग्रहण करने वाला। सकृदगामी चित्त में राग, द्वेष, और मोह नाममात्र के रह जाते हैं।[297] सकृदागामी चित्त में पाँच स्थानों सत्कायदृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रत परामर्श, कामराग तथा प्रतिघ पर विजय प्राप्त की जाती है।[298] अनागामी चित्त में फिर जन्म नहीं होता। प्रकृत पाँच बंधनों के कट जाने से योगाचारी भिक्खु अनागामी होता है।[299] अर्हत् चित्त आस्रवक्षीण होता है। इसके सभी मैल साफ हो जाते हैं। सभी क्लेश हट जाते हैं। ब्रह्मचर्य वास पूर्ण हो जाते हैं। सभी भार उतर जाते हैं। सच्चे ज्ञान तक पहुँच जाते हैं।[300] अर्हत् भूमि में शेष बन्धनों के साथ पाँच बन्धन रूपराग, अरूपराग, मान, औद्धत्य और अविद्या का भी नाश हो जाता है।[301] अर्हत् पद की प्राप्ति ही श्रावकयान का अन्तिम लक्ष्य है।

दूसरा यान प्रत्येक बुद्धयान है। मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है कि जो प्रत्येक-बुद्ध हो गए हैं, जो अपने स्वामी आप हैं, जिनको किसी आचार्य की आवश्यकता नहीं रही, जो गैंडे की सींग की तरह अकेले रहने वाले हैं और जो अपने जीवन में परिशुद्ध तथा निर्मल हो गए हैं, उनका चित्त अपने विषय में हल्का और तेज होता है।[302]

---

[294] *मि.प.*, 4/1/2, पृ. 82

[295] वही, 4/1/2, पृ. 82

[296] *मि.प्र.,* पृ. 416

[297] *मि.प.,* 4/1/2, पृ. 82

[298] वही, 4/1/2, पृ. 83

[299] *मि.प्र.,* पृ. 416

[300] *मि.प.*, 4/1/2, पृ. 83

[301] *बौ.द.मी.*, पृ. 104

[302] *मि.प.*, 4/1/2, पृ. 84

प्रत्येक बुद्धयान अर्हत् से विलक्षण होता है, क्योंकि उसे प्रातिभ चक्षु के आधार पर ज्ञान प्राप्त होता है। बोधिसत्त्व की अपेक्षा कमतर होता है क्योंकि उसमें दूसरों के दु:ख को दूर करने का सामर्थ्यनहीं होता।[303]

तीसरा यान बोधिसत्त्व यान है। यह यान पूर्व दो की अपेक्षा विलक्षण है। बोधिसत्त्व का शाब्दिक अर्थ है बोधि अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक व्यक्ति।[304] अनेक जन्मों में निरन्तर साधना करने के पश्चात् कोई व्यक्ति बुद्धपद को प्राप्त करता है। बोधिसत्त्व से स्पष्ट तात्पर्य ज्ञान, सत्य, दया आदि मानवीय गुणों का अभ्यास करने वाले उस साधक से है, जिसका आगे चलकर बुद्ध होना निश्चित है।[305] मिलिन्दपञ्ह में बताया गया है कि जन्म ग्रहण करने से पूर्व बोधिसत्त्व आठ बातों का ध्यान रखते हैं। ये हैं- मनुष्य लोक में जन्म का उचित काल, किस द्वीप में जन्म होगा, किस जगह जन्म होगा, किस कुल में जन्म होगा, माता कौन होगी, कितने समय तक गर्भ में रहना होगा, किस मास में जन्म होगा, गृह-त्याग करके निष्क्रमण कब होगा?[306] मिलिन्दपञ्ह में बोधिसत्त्व के दस गुणों के बारे में बताया गया है। ये गुण हैं- निर्लोभ, सांसारिक वस्तुओं से प्रेम न करना, त्याग, वैराग्य, संकल्प से न गिरना, सूक्ष्मता, महत्ता, दुरनुबोधता, दुर्लभता और बौद्ध धर्म की असदृशता।[307]

बोधिसत्त्व का चित्त सम्यक् सम्बुद्ध चित्त कहलाता है। सम्यक् सम्बुद्ध का चित्त सर्वज्ञता से युक्त, दस बलों[308] को धारण करने वाला, चार प्रकार के वैशारद्यों से युक्त[309], अट्ठारह बुद्ध-धर्मों[310] से युक्त, इन्द्रिय को जय करने वाला, निर्बाध ज्ञान संपन्न होता है।[311] बोधिसत्त्व भी कर्म के फल से मुक्त नहीं हो सकता। बोधिसत्त्व

---

[303] *बौ.द.मी.*, पृ. 104

[304] बोधौ ज्ञाने सत्त्वं अभिप्रायोऽस्येति बोधिसत्त्वः। Prajñākara Mati, *Bodhicaryāvatārapañjikā*, ed. La Vallee Poussin, Bibliotheca Indica, Calcutta, 1901-1914, पृ. 421

[305] *पा.सा.इ.*, पृ. 337.

[306] *मि.प.,* 4/4/4, पृ. 142

[307] वही, 5/3/1, पृ. 197

[308] दस बल हैं- स्थानास्थान, कर्मविपाक, नानाधिमुक्ति, नानाधातु, इन्द्रिय परापर, सर्वत्र गामिनी प्रतिपदा, संक्लेशव्यदान व्युत्थान, पूर्वानिवासानुस्मृति, च्युति उत्पत्ति तथा आस्रवक्षय। *मि.प.ए.अ.,* पृ. 160

[309] सर्वधर्माभिसम्बोधि वैशारद्य, सर्वास्रवक्षयज्ञान वैशारद्य, अन्तरायिक धर्म व्याकरण वैशारद्य, नैर्माणिक प्रतिपद्व्याकरण वैशारद्य।

[310] अतीत काल की बातों में बुद्ध का अप्रतिहत ज्ञान, अनागत काल की बातों में बुद्ध का अप्रतिहत ज्ञान, तथा वर्तमान काल की बातों में बुद्ध का अप्रतिहत ज्ञान, बुद्ध के सभी कायकर्म ज्ञानपूर्वक तथा जानबूझकर होते हैं, बुद्ध के सभी वचनकर्म कर्म ज्ञानपूर्वक तथा जानबूझकर होते हैं, बुद्ध के सभी मनः कर्म ज्ञानपूर्वक तथा जानबूझकर होते हैं, धर्म देशना में कभी कोई हानि नहीं होती, वीर्य में कभी कोई हानि नहीं होती, समाधि में कभी कोई हानि नहीं होती, प्रज्ञा में कभी कोई हानि नहीं होती, विमुक्ति में कभी कोई हानि नहीं होती, दवा, रवा, अप्फुत, वेदयितत्तं अव्यावहमनो, अप्परिसङ्गमान उपेक्खा। *मि.प्र.,* पृ. 418

[311] *मि.प.*, 4/1/2, पृ. 84

अनेक बार जन्म ग्रहण करता है।[312] पुण्य कर्मों के संचय तथा प्रज्ञा द्वारा अज्ञान के नाश से ही बोधिसत्त्व बुद्धत्व की प्राप्ति करता है।

नैतिक विचार– बौद्ध धर्म में कर्म को मानव जीवन के नैतिक संस्थान का आधार स्वीकार किया गया है। बौद्ध धर्म के कर्म सिद्धांत में ईश्वर का कोई महत्त्व नहीं है। नैतिक क्रम को बनाए रखने में कर्म-नियम काम करता है। अतःएव बुद्ध के धम्म में सदाचार को ही केन्द्र में रखा गया है। ईश्वर को महत्त्व नहीं दिया गया है। 'धम्मं चरे सुचरितं[313]' कहकर भगवान् बुद्ध ने सदाचार को महत्त्वपूर्ण माना। मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है कि पुण्य करने वाला सुख पाता है और स्वर्ग को जाता है, पाप करने वाला दुःख पाता है तथा नरकगामी होता है।[314] सदाचार अर्थात् शील का पालन करके कोई भी व्यक्ति अर्हत्पद पा सकता है। संयुत्तनिकाय से भगवान् बुद्ध के कथन को उद्धृत करते हुए नागसेन ने कहा है कि शील में प्रतिष्ठित होकर प्रज्ञावान मनुष्य जब समाधि की भावना करता है, तो इस प्रकार उद्योगी और ज्ञानवान् भिक्खु होते हुए वह समस्त उलझनों को सुलझा सकता है।[315] कर्म के अनुसार ही संसार में मनुष्य फल प्राप्त करता है।

धम्मनगर का आदर्श - मिलिन्दपञ्ह में आदर्श नगर की परिकल्पना का उल्लेख मिलता है जिसे धम्मनगर कहा गया है। मिलिन्दपञ्ह का पाँचवा परिच्छेद[316] धम्म नगर का वर्णन प्रस्तुत करता है। भगवान् बुद्ध द्वारा बसाया गया धम्म नगर चारों ओर शील के प्राकार से घिरा हुआ है, पाप-कर्म से विरति की खाई खुदी हुई है, उसके द्वार के ऊपर ज्ञान की चौकसी है, वीर्य की अटारियाँ बनी हुई हैं, श्रद्धा की नीव दी गई है, स्मृति का द्वारपाल खड़ा है, प्रज्ञा के बड़े-बड़े भवन बने हुए हैं, धर्मोपदेश के सूत्र से उद्यान निर्मित है, धर्म की चौक बनी हुई है, विनय की कचहरी है, स्मृति प्रस्थान की सड़कों के दोनों ओर फूल, गन्ध, फल, दवाईयाँ इत्यादि की दुकाने हैं।

धम्मनगर में अनित्य संज्ञा, अनात्म संज्ञा, वैराग्य संज्ञा, निरोध संज्ञा, मैत्री, मुदिता इत्यादि पुष्पों की दुकान है। इस दुकान पर दुःखों तथा कर्मों के आवागमन से निवृत्ति अर्थात् निर्वाण प्राप्त कर शुद्ध, रागरहित, जरामरण से मुक्ति तथा अभय प्राप्ति हेतु मनुष्य कर्मरूपी धन से किसी एक अनित्य संज्ञादि पुष्प को खरीदता

---

[312] *मि.प.,* 4/4/7, पृ. 49

[313] *ध.प.,* 13.3

[314] *मि.प.,* 4/4/8, पृ. 150

[315] सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तं पञ्ञञ्च भावयं।आतापी निपको भिक्खु, सो इमं विजटये जटं॥ वही, 2/1/6, पृ. 26

[316] वही, 5/4/1, पृ. 235-44

है जिसके अभ्यास से वह मुक्ति प्राप्त करता है। त्रिशरण-शील[317], पञ्चशील[318], अष्टांगशील[319], दशांग-शील[320] तथा प्रातिमोक्ख संवर शील[321] गन्ध की दुकान पर प्राप्त होते हैं। स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत्, शून्यता अर्थात् निर्वाण, समापत्ति इत्यादि फलों की दुकान है। चार आर्यसत्यों की औषधि अर्थात् दवाई की दुकान है। जड़ी-बूटियों की दुकान पर चार स्मृतिप्रस्थान[322], चार सम्यक् प्रधान[323], चार ऋद्धिपाद[324], पाँच इन्द्रियाँ[325], पाँच बल[326], सात बोध्यंग[327] तथा आर्य अष्टांगिक मार्ग की बूटियाँ मिलती हैं। कायगता-स्मृति[328] रूप अमृत की दुकान है। वहाँ एक रत्न की दुकान है जिस पर शील[329], समाधि[330],

---

[317] बुद्धं सरणं गच्छामि। धम्मं सरणं गच्छामि। सङ्घं सरणं गच्छामि। *खु.पा.,* 1

[318] पञ्च सिक्खापदानि – पाणातिपाता वेरमणी, अदिन्नादाना वेरमणी, कामेसुमिच्छाचारा वेरमणी, मुसावादा वेरमणी, सुरामेरय- मज्जप्पमादट्ठाना वेरमणी। *दी.नि.,* 3/10

[319] इनका पालन उपासक तथा उपासिकाओं द्वारा किया जाता था। पञ्चशील तथा तीन अन्य (असमय भोजन भक्षण; नृत्य, गायन, वाद्य, अश्लील हाव-भाव, माला, गन्ध से शरीर को सजने-संवारने; उच्च तथा महँगे शयनासन से विरति) को अष्टांगशील कहा जाता है।

[320] पाणातिपाता वेरमणी-सिक्खापदं समादियामि। अदिन्नादाना वेरमणी-सिक्खापदं समादियामि। अब्रह्मचरिया वेरमणी-सिक्खापदं समादियामि। मुसावादा वेरमणी-सिक्खापदं समादियामि। सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणी-सिक्खापदं समादियामि। विकालभोजना वेरमणी-सिक्खापदं समादियामि। नच्च-गीत-वादित-विसूकदस्सना वेरमणी-सिक्खापदं समादियामि। माला-गन्ध-विलेपन-धारण-मण्डन-विभूसनट्ठाना वेरमणी-सिक्खापदं समादियामि। उच्चासयन-महासयना वेरमणी-सिक्खापदं समादियामि। जातरूप-रजतपटिग्गहणा वेरमणी-सिक्खापदं समादियामि। *खु.पा.,* 2

[321] उपसम्पदा प्राप्त भिक्खु के विनय के 227 नियम हैं। इनका वर्णन विनयपिटक के प्रातिमोक्ख में किया गया है।

[322] काया में कायानुपश्यी, वेदना में वेदनानुपश्यी, चित्त में चित्तानुपश्यी, धर्म में धर्मानुपश्यी ये चार स्मृति प्रस्थान हैं। *दी.नि.,* 2/9

[323] अनुत्पन्न अकुल (पाप) को उत्पन्न न होने देना, उत्पन्न अकुशल (पाप) का विनाश करना, अनुत्पन्न कुशल (पुण्य) धर्मों की उत्पत्ति तथा उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति तथा वृद्धि के लिए रुचि उत्पन्न करना- ये चार सम्यक् प्रधान हैं।

[324] चत्वारः ऋद्धिपादाः। तद्यथासंस् छन्दसमाधिप्रहाणाय-कारसमन्वागत ऋद्धिपादः। एवं चित्तऋद्धिपादः। वीर्यऋद्धिपादः। मीमांसासमाधिप्रहाणाय संस्कारसमन्वागतऋद्धिपादश्चेति॥ *ध.सं.,* 46

[325] पञ्चेन्द्रियाणि। तद्यथा -श्रद्धासमाधिवीर्यस्मृतिप्रज्ञेन्द्रियं चेति॥ वही, 47

[326] पञ्च बलानि। श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञाबलं चेति॥ वही, 48

[327] सत्तिमे, महाराज, बोज्झङ्गा, सतिसम्बोज्झङ्गो धम्मविचयसम्बोज्झङ्गो वीरियसम्बोज्झङ्गो पीतिसम्बोज्झङ्गो पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गो समाधिसम्बोज्झङ्गो उपेक्खासम्बोज्झङ्गो। *मि.प.,* 5/4/2, पृ. 241

[328] दीघनिकाय के महासतिपट्ठान सुत्त में इसका विशद विवेचन है। भिक्खु दुःखों के निवारणार्थ तथा निर्वाण प्राप्ति के चार स्मृति प्रस्थानों में प्रथम कायानुगता स्मृति है। आनापान, ईर्यापथ, संप्रजन्य, प्रतिकूल मनसिकार, धातुमनसिकार, श्मशानयोग को देखकर काया को देखने पर काया की अनित्यता का ज्ञान होता है तथा निर्वाण का मार्ग प्रशस्त होता है।

[329] कतमं, महाराज, भगवतो सीलरतनं? पातिमोक्खसंवरसीलं इन्द्रियसंवरसीलं आजीवपारिसुद्धिसीलं पच्चयसन्निस्सितसीलं चूळसीलं मज्झिमसीलं महासीलं मग्गसीलं फलसीलं। *मि.प.,* 5/4/2, पृ. 238

[330] कतमं, महाराज, भगवतो समाधिरतनं? सवितक्कसविचारो समाधि, अवितक्कविचारमत्तो समाधि, अवितक्कअविचारो समाधि, सुञ्ञतो समाधि, अनिमित्तो समाधि, अप्पणिहितो समाधि। वही

प्रज्ञा[331], विमुक्ति[332], प्रतिसंविद् रत्न[333] तथा बोध्यंग के रत्न मिलते हैं। धम्मनगर में एक सभी वस्तुओं की दुकान भी है जहाँ सुत्त, गेय (छन्दोबद्ध गीति ग्रंथ), व्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अभिधर्म तथा वेदल्ल (उपदेश) ये नवांग बुद्धवचन[334] शरीरधातु, बुद्ध प्रयुज्य वस्तुएँ, चैत्य तथा संघरत्न मिलते हैं।

धम्म नगर के नागरिक त्रिपिटकों के ज्ञाता हैं, धर्म के उपदेशक हैं, सुत्तपिटक के पाँचों भागों को याद करने वाले हैं, शीलसम्पन्न, प्रज्ञासम्पन्न, निर्वाणगामी इत्यादि विशेषताओं से युक्त हैं। प्रशासन विभिन्न भिक्खुओं के हाथ में सौंपा गया है। ऋद्धिपूर्ण तथा प्रतिसंविदा प्राप्त भिक्खु धम्म नगर के पुरोहित हैं। धुतांग धारण करने वाले भिक्खु इसके अधिकारी हैं। परिशुद्ध तथा अन्तिम निर्मल ज्ञान को प्राप्त कर चुके भिक्खु इसके प्रकाशक हैं। नवाङ्ग शासन के ज्ञाता, आगम के पण्डित, धम्म तथा विनय के जानकार इसके धर्मरक्षक अर्थात् चौकीदार हैं। विनय के ज्ञाता भिक्खु इसके रूपदर्शक हैं। विमुक्त भिक्खु पुष्प बेचने वाले हैं। आर्यसत्यों के रहस्य के ज्ञाता फल बेचने वाले हैं। शील की सुगन्धि से क्लेशरूपी दुर्गन्ध के नाशक भिक्खु यहाँ गन्ध बेचते हैं। केवल मात्र धम्म को ही चाहने वाले मद्यप हैं। घूमकर ध्यान भावना करने वाले भिक्खु इसके पहरेदार हैं। नवांग को अर्थ सहित तर्क से समझाने वाले न्यायविद् हैं। धम्म रत्न से धनी भिक्खु धम्म नगर के सेठ हैं। भिक्खु देशना के रहस्य को जानने वाले इस धम्मनगर के विधिवेत्ता (बैरिस्टर) हैं।

भिक्खुओं संबंधी नियम - बौद्ध धर्म में भिक्खु पद गौरवमय पद माना जाता है। भिक्खु बनने के लिए प्रव्रज्या ग्रहण करना जरूरी है। मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि लोग सांसारिक दुःखों से निवृत्ति तथा आवागमन से मुक्ति हेतु प्रव्रजित होते थे।[335] मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि बहुत से लोग बुद्ध धर्म में प्रव्रजित हो जाते थे तथा भिक्खु जीवन निर्वहन न कर सकने में असमर्थ पुनः गृहस्थ बन जाते थे।[336] कोई भी व्यक्ति भिक्खु

---

[331] पञ्ञाय अरियसावको 'इदं कुसल'न्ति यथाभूतं पजानाति, 'इदं अकुसल'न्ति यथाभूतं पजानाति, 'इदं सावज्जं, इदं अनवज्जं, इदं सेवितब्बं, इदं न सेवितब्बं, इदं हीनं, इदं पणीतं, इदं कण्हं, इदं सुक्कं, इदं कण्हसुक्कसप्पटिभाग'न्ति यथाभूतं पजानाति, 'इदं दुक्ख'न्ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो'ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो'ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा'ति यथाभूतं पजानाति। इदं वुच्चति महाराज 'भगवतो पञ्ञारतन'न्ति। *मि.प.,* 5/4/2, पृ. 239

[332] विमुत्तिरतनं...अरहत्तं वुच्चति। वही

[333] चतस्सो खो, महाराज, पटिसम्भिदायो अत्थपटिसम्भिदा धम्मपटिसम्भिदा निरुत्तिपटिसम्भिदा पटिभानपटिसम्भिदाति। वही, 5/4/2, पृ. 240

[334] नवांग बुद्ध वचन हैं- सुत्त, गेय्य (छन्दोबद्ध गीति ग्रंथ), वैयाकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अभिधर्म तथा वेदल्ल। (नवाङ्गप्रवचनानि। तद्यथासूत्रम्-, गेयम्, व्याकरणम्, गाथा, उदानम्, जातकम्, वैपुल्यम्, अद्भुतधर्मः, उपदेशश्चेति॥ *ध.सं.,* 62)

[335] *मि.प.,* 2/1/5, पृ. 24

[336] वही, 5/1/5, पृ. 179

माता-पिता की स्वीकृति लेकर बनता था।[337] मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि भिक्खु आश्रमों में अथवा कुटी निर्माण करके रहते थे तथा आश्रम की साफ-सफाई का कार्य स्वयं करते थे।[338] धर्म का संकट आ जाने पर भिक्खु संघ की बैठकों में सभी की उपस्थिति अनिवार्य थी। यदि कोई अनुपस्थित होता था तो उसे दण्ड दिया जाता था।[339] भिक्षाटन पर ही भिक्खु समुदाय का जीवन-यापन निर्भर था। भिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् धर्मोपदेश भी देते थे।[340]

मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है कि कुछ ऐसे लोग भी भिक्खु बन जाते थे जो राजदण्ड के डर से प्रव्रजित हो जाते थे, कुछ चोरी के भय से प्रव्रजित हो जाते थे, कुछ कर्जा चुकाने की वजह से तथा कुछ पेट पालने के लिए भी प्रव्रजित हो जाते थे।[341] ऐसे लोगों की वजह से भिक्खु संघ बदनाम भी होता होगा। कुछ भिक्खु लोग जो इस तरह से प्रव्रजित हो जाते होंगे, वे विनय के नियमों का पालन करने में असमर्थ होते होंगे। कभी-कभी आत्महत्या भी कर लेते होंगे। इसीलिए मिलिन्दपञ्ह में भिक्खुओं द्वारा आत्महत्या करने को विनयपिटक के नियमानुसार निषिद्ध ठहराया गया है।[342] मिलिन्दपञ्ह के अन्तिम परिच्छेद[343] में नागसेन ने मिलिन्द को भिक्खुओं के उन गुणों के बारे में बतलाया है जिनको पाकर कोई भी भिक्खु अर्हत् पद प्राप्त कर सकता है। नागसेन ने विभिन्न उपमाओं के माध्यम से ऐसे 104 गुणों के बारे बताया है। जैसे गधा जहाँ कहीं कूड़े-करकट पर, चौक चौराहे पर, गाँव के द्वार पर या भूसे के ढ़ेर पर कहीं भी लेट जाता है, किन्तु निश्चिन्त होकर सोता नहीं है, वैसे ही योग-साधना करने वाले भिक्खु को जहाँ कहीं भी लेट कर, निश्चिन्त सोना नहीं चाहिए।[344]

धुताङ्ग व्रत- मिलिन्दपञ्ह के अनुमानवग्ग में धुतांग का वर्णन मिलता है।[345] धुतांग ऐसे व्रत हैं जिनका पालन भिक्खुओं द्वारा श्रमणरूपी बीज तथा क्लेशरूपी मल को जमाने के लिए, ऋद्धिबल अर्थात् अलौकिक शक्ति को पाने के लिए, स्मृति व संयम को बांधने के लिए, शंका तथा भ्रम को काटने के लिए, तृष्णा की

---

[337] *मि.प.,* 1/1/9, पृ. 9

[338] वही, 1/1/1, पृ. 2

[339] वही, 1/1/6, पृ. 6

[340] वही, 1/1/7, पृ. 7

[341] केचि एतदत्थाय पब्बजन्ति, केचि राजाभिनीता पब्बजन्ति, केचि चोराभिनीता पब्बजन्ति, केचि इणट्टा पब्बजन्ति, केचि आजीविकत्थाय पब्बजन्ति। वही, 2/1/5, पृ. 24

[342] वही, 4/4/5, पृ. 143

[343] वही, *ओपम्मकथापञ्ह*, पृ. 256-96

[344] वही, 6/1/1, पृ. 257

[345] वही, 5/4/2, पृ. 246-55

प्यास बुझाने के लिए, अविद्या के अंधकार को दूर करने के लिए, निर्वाण के सुख के लिए, जरामरणादि विभिन्न दुःखों से बचने के लिए किया जाता है।[346] धुतांग के तेरह प्रकारों का उल्लेख मिलिन्दपञ्ह[347] में किया गया है- पंसुकूलिकङ्ग[348], तेचीवरिकङ्ग[349], पिण्डपातिकङ्ग[350], सपदानचारिकङ्ग[351], एकासनिकङ्ग[352], पत्तपिण्डिकङ्ग[353], खलुपच्छाभत्तिकङ्ग[354], आरञ्ञिकङ्ग[355], रुक्खमूलिकङ्ग[356], अब्भोकासिकङ्ग[357], सोसानिकङ्ग[358], यथासन्थतिकङ्ग[359], नेसज्जिकङ्ग[360]।

धुतांग के यथार्थ में अट्ठाईस गुण हैं जिसके कारण सभी बुद्धों ने धुतांग को अच्छा कहा है। ये गुण हैं शुद्ध जीविका का होना, सुखद फल की प्राप्ति होना, बुराई का खात्मा होना, कष्ट न देना, अभय रहना, किसी को नहीं सताना, धर्म की ओर वृद्धि, अधःपतन नहीं हो सकता, धोखा नहीं देना, पालन करने वाले की रक्षा करता है, मनोवांचित लाभ ग्रहण किया जा सकता है, स्ववश में सभी को किया जा सकता है, आत्मसंयम कर सकता है, भिक्खु जीवन के अनुकूल है, किसी के ऊपर बोझ नहीं बनता, स्वच्छन्द विचरण करता है, सांसारिक राग को काट देता है, द्वेष को दूर करता है, मोह को मिटाता है, अभिमान को हीन करता है, बुरे विचारों को हटाता है, शंकाएं दूर करता है, अकर्मण्यता का ह्रास करता है, असंतोष का नाश करता है,

---

[346] *मि.प.,* 5/4/2, पृ. 251-52

[347] वही, 5/4/2, पृ. 253

[348] पांशु अर्थात् धूल, श्मशान में पड़े हुए वस्त्र को ग्रहण करना ही पांशुकूलिक तथा इसका अंग पांशुकूलिकांग कहलाता है।

[349] भिक्खु द्वारा तीन वस्त्रों संघाटि, उत्तरासंग तथा अन्तर्वासक का ग्रहण करना ही त्रैचीवरिक तथा इसका अंग त्रैचीविरकांग है।

[350] भिक्षा के द्वारा अन्न अर्थात् पिण्डपात ग्रहण करने वाला पैण्डपातिक तथा अंग पैण्डपातिकांग कहलाता है।

[351] ग्राम में विना अन्तर किए प्रत्येक घर से भिक्षा ग्रहण करना ही सापदानचारिकांग व्रत है।

[352] एक आसन पर बैठकर अर्थात् रात-दिन में केवल एक बार भोजन करने वाला व्रत।

[353] भिक्षार्थ गृहीत पात्र से भिक्षा को ही ग्रहण करने वाला व्रत।

[354] एक बार भोजन करने के बाद दूबारा मिले भोजन का निषेध करने वाले नियम का पालन करने वाला व्रत।

[355] ग्राम में शयनासन छोड़कर अरण्य में रहने का नियम धारण करने वाला व्रत।

[356] ईंट, पत्थर इत्यादि से बनी कुटी को छोड़कर वृक्षमूल में रहने का नियम ग्रहण करने वाला व्रत।

[357] खुले आकाश में नीचे रहने का व्रत धारण करने वाला व्रत।

[358] योग्य निवास स्थल को छोड़कर श्मशान स्थान पर रहने का व्रत धारण करने वाला व्रत।

[359] 'यह आसन आपके लिए है' यह कहकर पहले से बिछाये गए आसन को ग्रहण करने वाला व्रत।

[360] भिक्खु के चार ईर्यापथ कहे जाते हैं- शयन, टहलना, खड़ा होना, बैठना। इनमें से शयन को छोड़कर सर्वदा अन्य तीन का ही पालन करने वाला व्रत।

सहनशक्ति का विकास करता है, अतुल्य पुण्यवान् होता है तथा सभी दुःखों का अंत करके निर्वाण तक पहुँचा देता है।[361]

निर्मल मन का धुतांग ही यथार्थ में धुतांग होता है। पापेच्छा या कामेच्छा से किए गए धुतांग के बुरे फल होते हैं, जैसे अवीचि नामक नर्क में जन्म। योग्य व्यक्ति के धुतांग का फल अच्छा होता है। उसके सभी आश्रव क्षीण हो जाते हैं। धुतांग पालन करने वाला अट्ठारह गुणों[362] से युक्त हो जाता है। जो श्रद्धालु, पापकर्म से संकुचाने वाले, धैर्य वाले, झूठा दिखावा न करने वाले, स्वोद्देश्य में लगे रहने वाले, निर्लोभी, सीखने को तैयार, दृढ़ संकल्प वाले, किसी भी बात से न चिढ़ने वाले, मैत्री भाव रखने वाले दस व्यक्ति ही धुतांग के योग्य हैं।[363]

गृहस्थ उपासक तथा उपासिकाएं – बौद्ध धर्म में जीवन का परम लक्ष्य अर्थात् निर्वाण की प्राप्ति के लिए प्रव्रज्या को अनिवार्य नहीं माना गया है। गृहस्थ भी भिक्खु के समान धर्म तथा पुण्य का अर्जन कर सकता है। गृहस्थ भी अर्हत् पद प्राप्त कर सकता है।[364]

मिलिन्दपञ्ह में गृहस्थ उपासकों के दस गुण बताए गए हैं- उपासक भिक्खुओं के साथ सहानुभूति रखे, धर्म को सर्वोच्च महत्त्व दे, यथाशक्ति दान दे, धर्म को गिरते देख उसे उठाने का प्रयास करे, सत्य को धारण करे, कुतूहलवश अन्य मतों में न फसें, शरीर तथा वचन का पूरा संयम रखे, शान्ति तथा एकता प्रिय हो, केवल आड़म्बर के लिए उपासक न बने, अपितु यथार्थ रूप में बुद्ध, धम्म तथा संघ की शरण में आया हो।[365]

मिलिन्दपञ्ह से उल्लेख मिलता है कि तीस वर्ष तक महाउपासिका ने धर्म की सेवा की।[366] इससे पता चलता है कि स्त्रियाँ कभी-कभी लंबे समय तक संघ की सेवा करती थी तथा भिक्खुओं से ज्ञान प्राप्त करती थी। रानी गोपालमाता द्वारा अपने सिर के बाल बेचकर महाकात्यायन तथा अन्य सात साथियों को पिण्डपात कराने, सुप्रिया द्वारा अपनी जांघ को काटकर किसी भिक्खु को मांस खिलाने, मल्लिका देवी द्वारा भगवान् को

---

[361] *मि.प.,* 5/4/2, पृ. 248-49

[362] आचारो तेसं सुविसुद्धो होति, पटिपदा सुपूरिता होति, कायिकं वाचसिकं सुरक्खितं होति, मनोसमाचारो सुविसुद्धो होति, वीरियं सुपग्गहितं होति, भयं वूपसम्मति, अत्तानुदिट्ठिब्यपगता होति, आघातो उपरतो होति, मेत्ता उपट्ठिता होति, आहारो परिञ्ञातो होति, सब्बसत्तानं गरुकतो होति, भोजने मत्तञ्ञू होति, जागरियमनुयुत्तो होति, अनिकेतो होति, यत्थ फासु तत्थ विहारी होति, पापजेगुच्छी होति, विवेकारामो होति, सततं अप्पमत्तो होति। वही, 5/4/2, पृ. 248-49

[363] वही, 5/4/2, पृ. 249

[364] वही, 5/2/2, पृ. 189

[365] वही, 4/6, पृ. 76

[366] वही, 1/1/12, पृ. 11

कुल्मासपिण्ड मट्ठा का दान देने के उदाहरणों से बौद्ध धर्म में उपासिकाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका का पता लगता है।[367]

3.2.2. बुद्ध के संदर्भ में प्रचलित मान्यताएं

बुद्ध के अस्तित्व संबंधी शंका – महासांघिकों[368] के प्रभावस्वरूप बुद्ध को लोकोत्तर माना जाने लगा, जिससे बुद्ध के अस्तित्व संबंधी शंकाएं उठने लगीं। मिलिन्दपञ्ह[369] से ज्ञात होता है कि मिलिन्द द्वारा बुद्ध के अस्तित्व संबंधी प्रश्न के विषय में नागसेन से कहा कि आपने तथा आपके आचार्यों ने भगवान् बुद्ध को नहीं देखा तब बुद्ध हुए ही नहीं। नागसेन तर्क का सहारा लेते हैं तथा मिलिन्द को समझाते हैं कि हिमालय पर ऊहा नदी बहती है। वह नदी न आपने देखी है तथा न आपके पिता ने। क्या इससे यह निष्कर्ष निकाल लिया जाए कि हिमालय पर ऊहा नदी नहीं हैं, परन्तु आपके तथा आपके पिताजी द्वारा न देख पाने के बाद भी ऊहा का अस्तित्व है, वैसे ही मेरे तथा मेरे आचार्यों द्वारा बुद्ध को न देख पाने पर भी उनका अस्तित्व है। मिलिन्द पुनः पूछता है यदि मान भी लिया जाए कि बुद्ध हुए हैं। तो क्या आप उन्हें दिखा सकते हो?[370]" नागसेन कहता है कि जैसे जलती हुई अग्नि की लपट बुझ जाने पर नहीं दिखाई जा सकती, वैसे ही परम निर्वाण को प्राप्त बुद्ध के व्यक्तित्व को जानने का साधन कुछ भी नहीं है। वे धर्मकाय से दिखाए जा सकते हैं। उनके द्वारा बताए गए धर्म के आधार पर ही उनके बारे में कहा जा सकता है।[371]

बुद्ध पूजा संबंधी विचार - मिलिन्द प्रश्न करता है कि क्या बुद्ध अपनी पूजा स्वीकार करते हैं? यदि बुद्ध अपनी पूजा स्वीकार करते हैं तो उन्हे निर्वाण नहीं मिला। वे मामूली जीव हैं तथा उनकी स्थिति इस संसार में कहीं न कहीं विद्यमान है। यदि उन्हें परिनिर्वाण प्राप्त हो गया है तो वे संसार से बिल्कुल छूट गए हैं और सम्पूर्ण स्थितियों से मुक्त हो गए हैं, तब भी उनकी पूजा करना व्यर्थ है क्योंकि जब वे हैं ही नहीं तो पूजा किसकी? दोनों ही स्थितियों में बुद्ध पूजा व्यर्थ है।[372]

---

[367] वही, 5/3/3, पृ. 207

[368] महासांघिक बौद्ध धर्म की एक शाखा विशेष थी जिन्होंने मूल थेरवादी सिद्धांतों को स्वीकार करते हुए बुद्ध को लोकोत्तर माना। उनके अनुसार बुद्ध का शरीर, आयु तथा शक्तियाँ असीम हैं। बुद्ध शयन तथा स्वप्न से परे हैं। बुद्ध आत्म स्थित हैं और समधि में अवस्थित हैं। वे नाम से उपदेश नहीं देते। वे एक क्षणिक चित्त हैं। जब तक परिनिर्वाण प्राप्त नहीं होता बुद्ध को क्षय ज्ञान नहीं होता अपितु अनुत्पाद ज्ञान होता है। *बौ.ध.प.व.,* पृ. 63

[369] *मि.प.*, 3/5/1, पृ. 56

[370] वही, 3/5/10, पृ. 59

[371] वही, 3/5/10, पृ. 59

[372] वही, 4/1/1, पृ. 77

नागसेन उत्तर देते हुए कहते हैं कि भगवान् परिनिर्वाण पा चुके हैं। भगवान् किसी पूजा को स्वीकार या अस्वीकार नहीं करते। बोधिवृक्ष के नीचे ही भगवान् बुद्ध इस प्रश्न के परे हो गए थे।[373] देवता व मनुष्य लोग उन भगवान् के शरीर-धातु रुपी रत्न की पूजा करते हुए तथा उनके बताए हुए ज्ञान रत्न के अनुकूल आचरण करते हुए तीनों सम्पतियों को प्राप्त करते हैं।[374] नागसेन आग की उपमा से इस गुत्थी को सुलझाते हैं। जैसे अरणियों को घिसकर तेज आग जलायी जाती है, वैसे भगवान् अपने तेज से दस हजार लोकों में प्रदीप्त होते हैं। जिस प्रकार वह अग्नि बुझ कर ठंडी हो जाती है वैसे ही बुद्ध निर्वाण प्राप्त कर संसार से बिल्कुल छूट गए हैं। जैसे आग ठंडी होने पर कोई घास या लकड़ी ग्रहण नहीं करती वैसे ही भगवान् भी पूजा स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के प्रश्न से मुक्त हो गए हैं। आग बुझ जाने पर स्वयं के बल से अरणि को घिसकर कोई व्यक्ति जिस प्रकार आग पैदा करता है वैसे ही देवता तथा मनुष्य लोग उन भगवान् के शरीर-धातु रूपी रत्न की पूजा करते हुए तथा उनके द्वारा बताए गए मार्ग के अनुकूल आचरण करते हुए तीनों सम्पतियों[375] को प्राप्त करते हैं।[376]

नागसेन आनन्द को कहे बुद्धवचन से सहमत दिखाई देते हैं। बुद्ध ने भिक्खुओं को बुद्ध-धातु पूजा करने के लिए मना किया था। नागसेन ने मिलिन्दपञ्ह में भिक्खुओं द्वारा बुद्ध-धातु पूजा का निषेध किया है।[377] उनका कहना है कि सर्वविध नश्वरता को मन में लाना, ध्यान-भावना का अभ्यास करना, सभी बातों से सार निकाल लेना, क्लेशों के नाश करने का प्रयत्न करना और पवित्र कार्यों में लगे रहना ही भिक्खुओं के कर्त्तव्य हैं। धातु पूजा देव तथा मानवों के लिए उचित है।[378]

बुद्ध की सर्वज्ञता - भगवान् बुद्ध की सर्वज्ञता पर मिलिन्द ने प्रश्न किया कि यदि बुद्ध सर्वज्ञ थे तो उन्होंने आवश्यकतानुसार ही शिक्षापदों का क्रमशः उपदेश क्यों किया? एक साथ उपदेश क्यों नहीं किया? नागसेन

---

[373] *मि.प.*, 4/1/1, पृ. 77

[374] वही, 4/1/1, पृ. 78

[375]Tisso sampattiyo. That is, to another life as a man, or as a god, or to Arahatship here, on earth, in this birth. *TQKM*, p. 146

[376] *मि.प.,* 4/1/1, पृ. 77-78

[377] "सब्बफालिफुल्ला खो, आनन्द, यमकसाला अकालपुप्फेहि। ते तथागतस्स सरीरं ओकिरन्ति अज्झोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय।.....न खो, आनन्द, एत्तावता तथागतो सक्कतो वा होति गरुकतो वा मानितो वा पूजितो वा अपचितो वा। यो खो, आनन्द, भिक्खु वा भिक्खुनी वा उपासको वा उपासिका वा धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो विहरति सामीचिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी, सो तथागतं सक्करोति गरुं करोति मानेति पूजेति अपचियति परमाय पूजाय। तस्मातिहानन्द, धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना विहरिस्साम सामीचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनोति। *दी.नि.,* 2/3 (*म.प.नि.सु.*, 4/1)

[378] *मि.प.*, 4/3/7, पृ. 131-32

बुद्ध की उपमा वैद्य से देते हुए उत्तर देते हैं कि जैसे वैद्य बीमार पड़ने पर ही दवाई देता है वैसे ही बुद्ध सर्वज्ञ तथा सर्वद्रष्टा होते हुए भी उचित अवसर आने पर ही शिक्षापदों का उपदेश करते हैं।[379] बुद्ध की सर्वज्ञता का अर्थ यह नहीं था कि वे प्रत्येक क्षण संसार की सभी बातों की सर्वथा जानकारी बनाए रखते थे। उनकी सर्वज्ञता इस बात में थी कि ध्यान करके वे किसी भी गतिविधि को जान लेते थे।[380]

बुद्ध का अनुत्तर होना - "क्या बुद्ध अनुत्तर अर्थात् श्रेष्ठ हैं?" मिलिन्द के इस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देते हुए नागसेन ने कहा, "जिन्होंने महासमुन्द्र को नहीं देखा, क्या वे नहीं जानते हैं कि वह बहुत विशाल, गंभीर तथा अथाह है और विविध नदियाँ उसमें जाकर मिलती हैं? इसी तरह निर्वाण प्राप्त श्रावकों को देखकर पता लगता है कि बुद्ध परम श्रेष्ठ हैं।[381]" अतीत काल के किसी श्रेष्ठ लेखक को उसके लेख से जैसे लोग जानते हैं वैसे ही 'बुद्ध श्रेष्ठ हैं' का ज्ञान उनके द्वारा उपदेशित धर्म से होता है।[382]

महापुरुषों के बत्तीस लक्षणों से युक्त अस्सी अनुव्यञ्जनों[383] की विद्यमानता, स्वर्ण-वर्ण तथा एक व्याम (दो हाथ वृत्त) तक चारों ओर फैले हुए प्रकाश[384] के आधार पर नागसेन ने भगवान् बुद्ध को अनुत्तर माना है। बुद्ध में विद्यमान महापुरुषों के 32 लक्षण इस प्रकार थे- सुप्रतिष्ठित पाद (जिसका पैर भूमि पर बराबर पड़ता है), पैर के तलवों में सर्वाकार परिपूर्ण नाभि-नेमि युक्त सहस्र अरों वाले चक्र की विद्यमानता, आयत पार्ष्णि, दीर्घ अंगुलियों से युक्त, मृदु तथा तरुण हस्त-पाद, जाल हस्त-पाद, उस्संखपाद, मृग जैसी जंघाओं से युक्त, आजानुबाहु, कोषाच्छादित वस्तिगुह्य (पुरुष इन्द्रिय), स्वर्ण के समान काया से युक्त, सूक्ष्म तथा साफ काया,

---

379 *मि.प.,* 3/2/2, पृ. 60

380 वही, 4/1/2, पृ. 82

381 वही, 3/5/2, पृ. 56

382 वही, 3/5/3, पृ. 56-57

383 अशीत्यनुव्यञ्जनानि। तद्यथाताम्रनखता। स्निग्धनखता। तुङ्गनखता। छत्राङ्गुलिता। चित्राङ्गुलिता। अनुपूर्वाङ्गुलिता। - गूढशिरता।निग्रन्थिशिरता। गूढगुल्फता। अविषमपादता। सिंहविक्रान्तगामिता। नागविक्रान्तगामिता। हंसविक्रान्तगामिता। वृषभविक्रान्तगामिता। प्रदक्षिणगामिता। चारुगामिता। अवक्रगामिता। वृत्तगात्रता। मृष्टगात्रता। अनुपूर्वगात्रता। शुचिगात्रता। मृदुगात्रता। विशुद्धगात्रता। परिपूर्णव्यञ्जनता। पृथुचारुमण्डलगात्रता। समक्रमता। विशुद्धनेत्रता। सुकुमारगात्रता। अदीनगात्रता। उत्साहगात्रता। गम्भीरकुक्षिता। प्रसन्नगात्रता। सुविभक्ताङ्गप्रत्यङ्गता। वितिमिरशुद्धालोकता। वृत्तकुक्षिता। मृष्टकुक्षिता। अभुग्नकुक्षिता क्षामकुक्षिता। प्रदक्षिणावर्तनाभिता। समन्तप्रासादिकता। शुचिसमुदारता। व्यपगततिलकगात्रता। तूलसदृशसुकुमारपाणिता। स्निग्धपाणिलेखता। गम्भीरपाणिलेखता। आयतपाणिलेखता। नात्यायतवचनता। बिम्बप्रतिबिम्बोष्ठता। मृदुजिव्हता। तनुजिव्हता। रक्तजिह्वता। मेघगर्जितघोषता। मधुरचारुमञ्जुस्वरता। वृत्तदंष्ट्रता। तीक्ष्णदंष्ट्रता। शूक्लदंष्ट्रता। समदंष्ट्रता। अनुपूर्वदंष्ट्रता। तुङ्गनासता। शुचिनासता। विशालनयनता। चित्रपक्ष्मता। सितासितकमलदलनयनता। आयतभ्रूकता। शुक्लभ्रूकता। सुस्निग्धभ्रूकता। पीनायतभुजलता। समकर्णता। अनुपहतकर्णेन्द्रियता। अविम्लाननललाटता। पृथुललाटता। सुपरिपूर्णोत्तमाङ्गता। भ्रमरसदृशकेशता। चित्रकेशता। गुडकेशता। असंमुणितकेशता। अपरुषकेशता। सुरभिकेशता। श्रीवत्समुक्तिकनन्द्यावर्तलक्षितपाणिपादतलता चेति॥ *ध.सं.,* 84

384 *मि.प.*, 3/5/3, पृ. 60

एक-एक रोमविवर में एक-एक रोम से युक्त, ऊर्ध्वाग्र लोम, लम्बा तथा अकुटिल शरीर, सातों अंगों में पूर्ण आकारवाला, सिंह पूर्वार्द्ध काया से युक्त, कंधों के मध्य भाग में चितपूर्णता से यक्त, न्यग्रोध परिमण्डल, समवर्त स्कन्धों से युक्त, सुन्दर शिराओं से युक्त, सिंह हनु, 44 दांतों से युक्त, सम दन्त, अविवर दंत, अच्छी श्वेत दाढ़ वाला, लम्भी जीभ वाला, ब्रह्मस्वर वाला, अभिनील नेत्रों वाला, गाय जैसी पलकवला, भौंहों के मध्य में श्वेत कमल से युक्त, उष्णीष शीर्ष वाला महापुरुष होता है।[385]

बुद्ध की निष्कलंकता - क्या भगवान् ने बुद्ध हो अपने सारे पापों को जला दिया था, या कुछ पाप उनमें शेष रहे थे? इस प्रश्न के उत्तर में नागसेन कहते हैं कि भगवान् ने सभी पापों को जला दिया था जिससे उन्होंने बुद्धत्व को प्राप्त किया था। बुद्ध को निर्वाण प्राप्ति के बाद शारीरिक वेदनाएं बनी हुई थी। संसार में समस्त वेदनाओं का कारण कर्म नहीं होता है। वेदनाओं के होने के आठ कारण हैं जिनसे संसार के सभी जीव दुःख पाते हैं। ये हैं- वायु का बिगड़ जाना, पित्त का प्रकोप होना, कफ का बढ जाना, सन्निपात का दोष हो जाना, ऋतुओं का परिवर्तित होना, बाह्य प्रकृति के प्रभाव, अपने कर्मों का फल।[386] मूर्ख लोगों का मानना है कि सभी कष्ट कर्म-फल के कारण उत्पन्न होते हैं, जबकि कष्ट की उत्पत्ति के वात-पित्तादि अन्य कारण भी होते हैं जो शारीरिक दुःखों को उत्पन्न करते हैं। भगवान् बुद्ध का पैर पत्थर से कट गया था, इसमें सन्निपात कारण था न कि कर्म।[387] अतः बुद्ध की निष्कलंकता सिद्ध होती है।

3.2.3.बौद्धेतर सम्प्रदाय

मिलिन्दपञ्ह से तत्कालीन कई सम्प्रदायों का नामोल्लेख मिलता है। वे हैं- मल्ल, पर्वत, धर्मगिरि, ब्रह्मगिरि, नटक, नृत्यक, लंघक, पिशाच, मणिभद्र, पूर्णभद्र, चन्द्र, सूर्य, श्रीदेवता, कालिदेवता, शैव, वासुदेव, धनिक, असिपाश, भद्रिपुत्र। इन सम्प्रदायों के अपने कुछ रहस्य होते थे, जिसे वे लोग आपस में छिपाकर रखते थे।[388]

---

[385] *दी.नि.,* 3/7

द्वात्रिंशल्लक्षणानि। तद्यथा चक्राङ्कितपाणिपादतलता। सुप्रतिष्ठितपाणिपादतलता। जालाबलबद्धाङ्गुलिपाणिपादतलता।-मृदुतरुणहस्तपादतलता। सप्तोत्सदता। दीर्घाङ्गुलिता। आयतपार्ष्णिता। ऋजुगात्रता। उत्सङ्गपादता। उर्ध्वाग्ररोमता। ऐणेजयङ्घता। प्रलम्बबाहुता। कोषगतबस्तिगुह्यता। सुवर्णवर्णता। शुक्लच्छविता। प्रदक्षिणावर्तैकरोमता। ऊर्णालंकृतमुखता। सिंहपूर्वान्तकायता। सुसंवृत्तस्कन्धता। चितान्तरांसता। रसरसाग्रता। न्यग्रोधपरिमण्डलता। उष्णीषशिरस्कता। प्रभूतजिव्हता। सिंहहनुता। शुक्लहनुता। समदन्तता। हंसविक्रान्तगामिता। अविरलदन्तता। समचत्वारिंशद्दन्तता। अभिनीलनेत्रता। गोपक्ष्मनेत्रता चेति॥ *ध.सं.,* 83

[386] *मि.प.*, 4/1/8, पृ. 103

[387] वही, 4/1/8, पृ. 105

[388] वही, 4/4/2, पृ. 140

इन सम्प्रदायों के अतिरिक्त छः अन्य सम्प्रदायों का पता मिलिन्दपञ्ह से चलता है। ये थे - पूरण कस्सप[389], मक्खलि गोसाल, निगण्ठ नाटपुत्त[390], सञ्जय वेलट्ठिपुत्त[391], अजित केसकम्बलिन्[392] तथा पकुध कच्चायन[393]।[394] मिलिन्दपञ्ह में आए ये सम्प्रदाय विशेष होंगे। इनके प्रतिपादकों द्वारा प्रस्तुत विचारों का विश्लेषण दीघनिकाय के सामञ्ञफलसुत्त में प्राप्त होता है। मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि पूरण कस्सप सम्प्रदाय का गणाचार्य मिलिन्द के प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ रहा।[395] आचार्य मक्खलि गोसाल से मिलिन्द ने प्रश्न किया, "भन्ते गोसाल! क्या पाप और पुण्य कर्म हैं? क्या अच्छे और बुरे कर्मों के फल भोगने पड़ते हैं?" गोसाल ने उत्तर दिया, "नहीं महाराज! पाप और पुण्य कर्म कुछ नहीं हैं। अच्छे और बुरे कर्मों के कोई फल भोगने नहीं पड़ते। महाराज! जो यहाँ क्षत्रिय हैं वे परलोक में भी जाकर क्षत्रिय होंगे, जो यहाँ ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल या पुक्कुस हैं वे परलोक में जाकर भी ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल या पुक्कुस ही होवेंगे। पाप और पुण्य कर्मों से क्या होता है? अर्थात् इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।[396]" इन विचारों के आधार पर गोसाल का मत दैववादी, अहेतुवादी तथा नियतिवादी कहा जा सकता है।

3.2.4.ब्राह्मण धर्म संबंधी मान्यताएं

मिलिन्दपञ्ह के सन्दर्भों से तत्कालीन ब्राह्मण धर्म के उपास्य देवी-देवता, उनकी पूजा पद्धति का इतस्ततः विवरण प्राप्त होता है। मिलिन्दपञ्ह में इन्द्र, यम, वरुण, वैश्रवण (कुबेर), प्रजापति, सुयाम, सन्तुसित देव,

---

389 पूरण कस्सप अक्रियावादी थे। ये कर्मफल का विरोध करते थे। इनका मानना था कि अच्छे कर्मों से न तो पुण्य होता है औरबुरे कर्मों से न ही पाप लगता है।

390 जैन मत के उपदेशक महावीर स्वामी को ही बौद्ध ग्रंथों में निगण्ठ नाटपुत्त कहा गया है। दीघनिकाय में बताया गया है कि ये चार प्रकार के संवर अर्थात् संयम अपनाते हैं- जीवहिंसा के भय से जल के व्यवहार का संयम, सभी पापों का वारण करना, सभी पापों का वारण करने से धुतपाप अर्थात् पापरहित हो जाना, सभी पापों के वारण करने में लगे रहना।

391 इनका मत अनिश्चिततावाद कहलाता है। इनके अनुसार किसी भी तत्त्व यथा परलोक, देवता, पुण्य, अपुण्य इत्यादि के विषय में निश्चित मत नहीं दिया जा सकता है।

392 ये उच्छेदवादी अथवा भौतिकवादी मत के समर्थक थे। इनके अनुसार पृथ्वी, जल, तेज तथा वायु इन्हीं चार भौतिक तत्त्वों के संयोग से मानव शरीर बना हुआ है तथा चेतना उसका आगंतुक गुण है। परलोक, पुनर्जन्म तथा आत्मा मिथ्या सिद्धांत हैं। पाप-पुण्य का कोई फल नहीं होता। इनका मत चार्वाक के सिद्धांतों पर अवलंबित है।

393 इनका सिद्धांत अकृततावादी कहलाता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सुख, दुःख तथा आत्मा ये सात तत्त्व अपरिवर्तनीय हैं। संसार में कोई किसी को नहीं मारता है क्योंकि सप्तकायों से अतिरिक्त विवर में गिरता है।

394 *मि.प.*, 1/1/1, पृ. 3

395 वही, 1/1/1, पृ. 3

396 वही, 1/1/1, पृ. 3-4

लोकपाल, महाब्रह्मा,[397] सूर्य, श्री एवं कलि देवता[398] का उल्लेख हुआ है। मिलिन्दपञ्ह के एक सन्दर्भ से शैव तथा वासुदेव संप्रदाय के बारे में जानकारी मिलती है।[399] इससे सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि ब्राह्मण धर्म में परम्परागत वैदिक देवों का महत्त्व घटने लगा होगा तथा नवीन देवों की पूजा, उपासना तथा भक्ति का विकास हुआ होगा। मिलिन्दपञ्ह में प्रयुक्त देवस्थल[400] शब्द पूजा के केन्द्र की ओर संकेत करता है। मिलिन्दपञ्ह से संकेत मिलता है कि देवस्थल में जन सामान्य भक्तिभाव से गंध, माला, वस्त्र या अन्य वस्तुएं चढ़ाने जाता होगा।[401]

3.3. सामाजिक चिंतन

3.3.1.समाज संरचना

मिलिन्दपञ्ह के अध्ययन से ज्ञात होता है कि समाज की संरचना में वर्ण व्यवस्था महत्त्वपूर्ण थी। तत्कालीन भारतीय समाज क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य तथा शूद्र इन चार वर्णों में बँटा हुआ था।[402] वर्ण व्यवस्था कर्म आधारित न होकर जन्म पर आधारित थी। व्यक्ति की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन असंभव था। जिसने जिस वर्ण में जन्म लिया है वह आजीवन उसी वर्ण में बना रहता था। मक्खलि गोसाल के विचारों से प्रतीत होता है कि मानव के पाप तथा पुण्य का कोई प्रभाव उसके जन्म ग्रहण पर नहीं पड़ता।[403] चारों वर्णों के साथ ही चण्डाल तथा पुक्कुस दो नवीन वर्गों का भी ज्ञान मिलिन्दपञ्ह से होता है।[404] चण्डाल अस्पृश्य अथवा बहिष्कृत जाति थी[405] जिसका कार्य मैला अथवा कूढ़ा साफ करना था। पुक्कुस भी एक निम्न जाति

---

[397] "उस्सहति, महाराज, अपि इन्दयमवरुणकुवेरपजापति सुयाम सन्तुसितलोकपालेहिपि पितुपितामहेन महाब्रह्मुनापि सद्धिं सल्लपितुं, किमङ्गं पन मनुस्सभूतेना"ति। *मि.प.,* 1/1/19, पृ. 17

[398] वही, 5/4/2, पृ. 140

[399] वही, 4/4/2, पृ. 140

[400] वही, 4/1, पृ. 74

[401] वही, 5/3/7, पृ. 220

[402] वही, 5/4/1, पृ. 233

[403] वही, 1/1/3, पृ. 4

[404] वही, 1/1/3, पृ. 3-4

[405] *पा.हि.को.,* पृ. 118

थी जिसका कार्य भी चण्डाल के समान ही था।[406] ए.एल.बाशम ने इनका कार्य मदिरा निर्माण तथा उसका विक्रय बताया है।[407]

मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है कि समाज में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। बोधिसत्त्व द्वारा जन्म ग्रहण करने से पहले ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय कुलों में से किसी एक का चयन[408] उपर्युक्त मत की पुष्टि करता है। मिलिन्दपञ्ह में बुद्ध की उपमा ब्राह्मण[409] तथा राजा[410] से देते हुए नागसेन ने ब्राह्मण तथा राजा को परिभाषित किया है। बुद्ध को ब्राह्मण कहने से नागसेन का आशय उस व्यक्ति से है जिसने अपने सारे संशयों को हटा दिया है, भ्रम को दूर कर दिया है, जिसकी तृष्णा मिट गई है, जो आवागमन से मुक्त हो गया है, जो पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करेगा, जो बुरे विचार और राग को नष्ट कर सर्वथा शुद्ध हो गया है, जो बिना किसी दूसरे पर विश्वास किए स्वयं पर ही निर्भर है, जो श्रेष्ठ तथा सुन्दर दैवी भावनाओं में विहार करता है, जो स्वयं अध्ययनशील रहकर दूसरों को भी विद्या-दान देता है, दान को स्वीकार करता है, इन्द्रियों को वश में करता है, आत्मसंयम करता है, कर्त्तव्यपरायण रहता है, वंश की अच्छी परंपराओं को बनाए रखता है, पूर्वजन्मों की बातों को पूर्णतः जानता है।[411] बुद्ध को राजा कहने से नागसेन का आशय पूर्व के बुद्धों द्वारा बताए गए नियम तथा न्याय को प्रदीप्त करने वाले, संसार के धर्म-गुरु, देवों तथा मानवों के प्रिय, धर्मबल से शासन को चिरकाल तक बनाए रखने वाले व्यक्ति विशेष से है।[412]

ब्राह्मण वेदों का अध्यापन कराके अपनी आजीविका चलाता था। नागसेन के पिता कजंगल ने उसके लिए वेद शिक्षा की व्यवस्था किसी ब्राह्मण शिक्षक को एक हजार मुद्राएं देकर की।[413] ब्राह्मण के लिए ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद का अध्ययन शिक्षा तथा अवशिष्ट अन्य विषय शिल्प कहलाते थे।[414]

मिलिन्दपञ्ह में उल्लेख मिलता है कि क्षत्रिय को युद्ध विद्या सीखनी पड़ती थी। युद्ध विद्या के लिए उसे हाथी, घोड़े, रथ, भाले, तीर चलाना सीखना अनिवार्य था। इन विद्याओं के साथ लिखना तथा पढ़ना भी

---

406 *पा.हि.को.,* पृ. 225

407 *अ.भा,* पृ. 102

408 *मि.प.,* 4/4/4, पृ. 142

409 वही, 4/5/8, पृ. 161

410 वही, 4/5/8, पृ. 163

411 वही, 4/5/8, पृ. 162

412 वही

413 वही, 1/1/8, पृ.7

414 वही, 1/1/8, पृ.7

सीखते थे।[415] मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है कि वैश्य, शूद्र तथा अन्य लोगों के कार्य कृषि, व्यापार तथा पशु-पालन थे।[416]

मिलिन्दपञ्ह में यवन शब्द का प्रयोग ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य शब्दों के साथ किया गया है।[417] इससे संकेत मिलते हैं कि यवन एक पृथक् सामाजिक वर्ग के रूप में भारतीय समाज में मान्य हो चुका था। समाज में श्रमणों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। कजंगल ब्राह्मण द्वारा भिक्खु रोहण को प्रतिदिन भिक्षा के लिए आमंत्रित करना श्रमण तथा ब्राह्मण के मध्य के सद्भाव को दर्शाता है। सांसारिक दुःखों से छुटकारा प्राप्त करने के लिए व्यक्ति प्रवज्या ग्रहण करता था।[418] ज्ञान प्राप्ति की चाह में लोग कठोर जीवनचर्या को भी स्वीकार करते थे।[419]

मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है कि सामाजिक जीवन में धन का महत्त्व बढ़ गया था। एक निर्धन व्यक्ति धन की खोज में कहीं भी जाने को तैयार था। वह संकरे रास्तों तथा बीहड़ों को भी पार करने को तैयार था। जल तथा स्थल मार्ग से व्यापार करते हुए वह शरीर, वचन तथा मन से केवल धन की खोज में ही रहता था।[420] यह उदाहरण धन के महत्त्व को प्रदर्शित करता है किन्तु इसका विवेचन नहीं है कि धन से सामाजिक स्तरीकरण किस तरह प्रभावित हो रहा था।

3.3.2. परिवार तथा रहन-सहन

परिवार मानव समाज के संगठन का प्रारंभिक आधार है। मिलिन्दपञ्ह के विभिन्न सन्दर्भों[421] में माता, पिता, पुत्र तथा पुत्री का उल्लेख मिलता है, जिनके आधार पर परिवार नामक संस्था का अनुमान लगाया जा सकता है। मिलिन्दपञ्ह में संयुक्त परिवारों के सन्दर्भ मिलते हैं। जमींदार द्वारा ग्राम के सभी लोगों को बुलाने पर ग्राम के परिवारों के सभी बुजुर्ग तथा अग्रणी लोगों के एकत्रित होने[422] का आशय परिवार के मुखिया के

---

[415] *मि.प.,* 4/3/7, पृ. 132

[416] वही, 4/3/7, पृ. 132

[417] वही, 3/4/6, पृ. 54

[418] वही, 3/4/5, पृ. 52

[419] वही, 5/1/4, पृ. 175

[420] पुरिसो अधनो धनत्थिको धनपरियेसनं चरमानो अजपथं सङ्कुपथं वेत्तपथं गच्छति, जलथलवाणिज्जं करोति, कायेन वाचाय मनसा धनं आराधेति, धनप्पटिलाभाय वायमति। वही, पृ. 5/3/1, पृ. 200

[421] वही, 4/3/1, पृ. 121; 5/1/2, पृ. 173

[422] वही, 4/2/3, पृ. 111

सन्दर्भ में स्पष्ट किया जा सकता है। तत्कालीन परिवार का मुखिया बुजुर्ग ही होता था। बुजुर्ग की अनुपस्थिति में कोई बड़ा व्यक्ति मुखिया होता था। परिवारीजनों से मिलने के लिए जाने पर, खाद्य सामग्री ले जाने का प्रचलन था।[423]

मिलिन्दपञ्ह में सागल जैसे बड़े नगर के वर्णन से नगरीय जीवन के बारे में उल्लेख मिलता है। सागल नगर में कोयम्बटूर तथा काशी के महंगे वस्त्रों की दुकानें थीं,[424] जिससे पता लगता है कि लोग पहनने के लिए इन वस्त्रों को खरीदते होंगे। धम्मनगर में जिस कल्पना के साथ गन्ध, फूल, रत्न आदि की दुकानों की बात कही गई है, उनसे नगरीय लोगों के आरामदायक तथा विलासिता से युक्त रहन-सहन का ज्ञान होता है। मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि पुरुष मोती, माला, मणि, स्वर्ण तथा मूंगे के आभूषणों का प्रयोग करते थे। अगर, तगर, तालसिक, चन्दन के लेप से अपने शरीर को सुगंधित बनाते थे। नाग, पुन्नाग, चंपक, जूही इत्यादि के पुष्पों से अपने को सुसज्जित करते थे।[425]

धनाढ्य लोगों के ऐशो-आराम के बारे में नागसेन ने बताया है कि जो सुख उठाने तथा विलासमय जीवन व्यतीत करने वाले लोग हैं वे पाँचों इन्द्रियों से संसार में भोग करते हैं और मस्त रहते हैं। अनेक प्रकार के अभिलषित सौन्दर्य को आँखों से देख कर भोग करते हैं। अनेक प्रकार के गीत-वाद्य को कान से सुनकर उसका आस्वादन करते हैं। अनेक प्रकार के मनचाहे फूल, पत्ते, छाल, जड़ या हीर के इत्र अथवा गन्ध को नाक से सूँघकर प्रसन्न होते हैं। अनेक प्रकार के मनचाहे अच्छे-बुरे या पाप-पुण्य के ध्यान से मन ही मन प्रसन्न रहते हैं।[426]

---

[423] *मि.प.,* 4/2/3, पृ. 110

[424] वही, गन्थकथावत्थु-2, पृ. 1

[425] वही, 5/4/1, पृ. 239

[426] ये केचि लोके सुखिता सुखसमप्पिता, ते सब्बेपि पञ्चहि कामगुणेहि आयतने रमेन्ति ब्रूहेन्ति, मनापिकमनापिकबहुविधसुभनिमित्तेन रूपेन चक्खुं रमेन्ति ब्रूहेन्ति, मनापिकमनापिकगीतवादितबहुविधसुभनिमित्तेन सद्देन सोतं रमेन्ति ब्रूहेन्ति, मनापिकमनापिकपुप्फफल- पत्ततचमूलसारबहुविधसुभनिमित्तेन गन्धेन घानं रमेन्ति ब्रूहेन्ति, मनापिकमनापिकखज्जभोज्जलेय्यपेय्यसायनीयबहुविधसुभनिमित्तेन रसेन जिव्हं रमेन्ति ब्रुहेन्ति, मनापिकमनापिकसण्हसुखुममुदुमद्दवबहुविधसुभनिमित्तेन फस्सेन कायं रमेन्ति ब्रूहेन्ति, मनापिक-मनापिककल्याणपापकसुभासुभबहुविधवितक्कमनसिकारेन मनं रमेन्ति ब्रूहेन्ति। वही, 5/3/9, पृ. 223

मिलिन्दपञ्ह से केशसज्जा के बारे में विशेष विवरण मिलता है। नागसेन द्वारा रोहण से उनके केशों के बारे में पूछने पर, उन्होंने उसे केश रखने में होने वाली सोलह बाधाओं के बारे में बताया।[427] इन बाधाओं के आधार पर लोगों द्वारा स्वीकार की गई केश सज्जा की सोलह विधियों का पता चलता है। ये सोलह तरीके हैं- संवारना, सजाना, तैल लगाना, धोना, माला पहनाना, गंध लगाना, सुगंधित करना, हर्र का व्यवहार करना, आँवले का व्यवहार करना, रंगना, बांधना, कंघी करना, नाई से बाल कटवाना, जटों को सुलझाना, जूं पड़ने पर तथा केश झड़ने पर चिंतित होते हुए उन समस्याओं दूर करने का प्रयास करना।

3.3.3.स्त्रियों की दशा

स्त्रियों का सामाजिक स्तर पुरुषों की अपेक्षा कम महत्त्वपूर्ण था। मिलिन्दपञ्ह के सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि स्त्रियों के प्रति पक्षपातपूर्ण तथा अनुदार दृष्टिकोण अपनाया जाता था। उन्हें कमजोर स्वभाव की मानकर उनके सम्मुख गुप्त मंत्रणा करने का निषेध किया गया है।[428] वेस्सन्तर राजा द्वारा अपनी पत्नी का दान देने[429] से पता चलता है कि पत्नी पर पति का संपूर्ण अधिकार होता था तथा वह संपत्ति की तरह उसका प्रयोग कर सकता था। ग्रंथ में ही दूसरी जगह स्त्री दान का निषेध बतलाया है।[430]

मिलिन्दपञ्ह के एक संदर्भ से पता चलता है कि कुछ वयस्क पुरुष कम उम्र की लड़कियों से विवाह करते थे।[431] अल्पावस्था में लड़कियों के विवाह से उनकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था का अभाव इंगित होता है। मिलिन्दपञ्ह से विवाहिता स्त्रियों के द्वारा अनैतिक संबंध बनाने की जानकारी मिलती है। ऐसी दुश्चरित्र स्त्रियों को पति के द्वारा शारीरिक व मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाता था तथा कभी-कभी दासी भी

---

[427] "सोळसिमे, दारक, पलिबोधे दिस्वा केसमस्सुं ओहारेत्वा पब्बजितो। "कतमे सोळस"? "अलङ्कारपलिबोधो मण्डनपलिबोधो तेलमक्खनपलिबोधो धोवनपलिबोधो मालापलिबोधो गन्धपलिबोधो वासनपलिबोधो हरीटकपलिबोधो आमलकपलिबोधो रङ्गपलिबोधो बन्धनपलिबोधो कोच्छपलिबोधो कप्पकपलिबोधो विजटनपलिबोधो ऊकापलिबोधो, केसेसु विलूनेसु सोचन्ति किलमन्ति परिदेवन्ति उरत्ताळिं कन्दन्ति सम्मोहं आपज्जन्ति, इमेसु खो, दारक, सोळससु पलिबोधेसु पलिगुण्ठिता मनुस्सा सब्बानि अतिसुखुमानि सिप्पानि नासेन्ती"ति। *मि.प.*, 1/1/9, पृ. 8

[428] वही, 4/2, पृ. 7

[429] वही, 5/3/1, पृ. 196

[430] वही, 5/3/1, पृ. 199

[431] वही, 2/2/6,, पृ. 37

बना दिया जाता था।[432] मिलिन्दपञ्ह में बताया गया है कि स्त्रियाँ अवकाश, एकान्त स्थान तथा किसी निम्न पुरुष को प्राप्त कर व्यभिचार कर सकती हैं तथा कोई न मिले तो अपंगों के साथ भी दुष्कृत्य कर सकती हैं।[433] ग्रंथ में ऐसी स्त्रियों के भी सन्दर्भ मिलते हैं जिनके पति परदेश चले गए थे। एकान्तवास तथा अवकाश भी उपलब्ध था। हजार रूपयों का प्रलोभन भी उसके पतिव्रत निष्ठा को नहीं डिगा पाया।[434]

3.3.4. शिक्षा-व्यवस्था

मिलिन्दपञ्ह के एक सन्दर्भ से ज्ञात होता है कि शिक्षित तथा पढ़ा-लिखा वर्ग कम था। लोग पत्र लिखवाने के लिए लेखक की सहायता लेते थे।[435] शिक्षा व्यवस्था वर्णानुसार थी। क्षत्रिय की शिक्षा व्यवस्था में जो प्रमुख विद्याएं थी, वे हैं- हाथी, घोड़े, रथ, भाले और तीर चलाने की शिक्षा, लिखना-पढ़ना, हिसाब-किताब देखना, क्षात्र धर्म का पालन करना, युद्ध करना, सैन्य सञ्चालन आदि।[436] ब्राह्मण बालकों को ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, आयुर्वेद, इतिहास, पुराण, निघण्टु, कैटुभ, अक्षर प्रभेद, पद, व्याकरण, ज्योतिषशास्त्र, शकुनविद्या, स्वप्नविद्या, निमित्तविद्या, षड् वेदाङ्ग, सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण विद्याएं, राहु के आकाश में आ जाने की विद्या, आकाश का गड़गड़ाना, नक्षत्र-संयोग विद्या, उल्कापात, भूकम्प, दिशादाह, आकाश और पृथ्वी के लक्षणों को देख कर फल बताने की विद्या, गणित, सामुद्रिक, कुत्ता-मृग-चूहा इत्यादि जीव-जन्तुओं की बोली समझ लेने की विद्या को पढ़ाया जाता था।[437]

राजा मिलिन्द उन्नीस विद्याओं[438] के जानकार थे जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि इन उन्नीस विद्याओं का अध्ययन किया जाता होगा। ये उन्नीस विद्याएं हैं- श्रुति, स्मृति, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक,

---

[432] इत्थी सपतिका अदस्सनेन निलीयित्वा परपुरिसं सेवति.....इत्थी सामिकस्स सम्मुखा परपुरिसं सेवति, अपि नु खो सा इत्थी सोत्थिं लभेय्या''ति? ''न हि, भन्ते, हनेय्यापि तं, भन्ते, सामिको वधेय्यापि बन्धेय्यापि दासित्तं वा उपनेय्या''ति। *मि.प.*, 4/2/5, पृ. 118

[433] सचे लभेथ खणं वा रहो वा, निमन्तकं वापि लभेथ तादिसं। सब्बाव इत्थी कयिरुं नु पापं, अञ्ञं अलद्धा पीठसप्पिना सद्धि'न्ति॥ वही, 4/4/8, पृ. 150

[434] वही, 4/4/8, पृ. 150

[435] वही, 2/2/3,, पृ. 33

[436] वही, 4/3/7, पृ. 132

[437] वही, 4/3/7, पृ. 132

[438] सुति सम्मुति सङ्ख्या योगा नीति विसेसिका गणिका गन्धब्बा तिकिच्छा धनुब्बेदा पुराणा इतिहासा जोतिसा माया केतु मन्तना युद्धा छन्दसा बुद्धवचनेन एकूनवीसति। वही, 1/1/1, पृ. 2-3

गणित, संगीत, वैद्यक, चारों वेद, सभी पुराण, इतिहास, ज्योतिष, मंत्र विद्या, तर्क, तंत्र, युद्ध विद्या, छंद और सामुद्रिक।

वेद पढ़ाने का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही था।[439] स्वतंत्र रूप से घरों में भी ब्राह्मण लोग शिक्षा देते थे। मिलिन्दपञ्ह में शैल नामक ब्राह्मण के तीन सौ छात्रों का उल्लेख मिलता है।[440] ब्राह्मणों द्वारा धन लेकर वेद पढ़ाने के सन्दर्भ मिलिन्दपञ्ह में मिलते हैं।[441] वैश्यों तथा शूद्रों की शिक्षा व्यवस्था का उल्लेख मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात नहीं होता है। शिल्पों की महत्ता तथा विकसित स्वरूप को देखने पर लगता है कि शायद शिल्प के बारे में व्यावसायिक शिक्षा दी जाती होगी। मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि वेद के अलावा शेष शिक्षाओं को शिल्प कहा जाता था।[442] मिलिन्दपञ्ह में बताया गया है कि योग्य आचार्य के गुणों को शिष्य के द्वारा अपनाना चाहिए। शिष्य के प्रति आचार्य के पच्चीस कर्त्तव्य होते थे, जो हैं-

- आचार्य को शिष्य के विषय में सदैव ध्यान रखना चाहिए।
- उसको कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य का सदैव ध्यान रखना चाहिए।
- किसमें सावधान रहे और किसमें नहीं- का उपदेश देना चाहिए।
- उसके शयनादि के बारे में ध्यान रखना चाहिए।
- रुग्णावस्था में उसका ध्यान रखना चाहिए।
- भोजन में क्या पाया है क्या नहीं इसका भी ध्यान रखना चाहिए।
- उसके विशेष चरित्र के बारे में जानना चाहिए।
- भिक्षा पात्र में जो मिले उसे बांट कर खा लेना चाहिए।
- उसे सदा उत्साह देते रहना चाहिए।
- किसके साथ जाना है- का उपदेश करना चाहिए।
- किस गांव में जाना चाहिए- के बारे में बताना चाहिए।
- किस विहार में जाए इसके बारे में बताना चाहिए।
- उसके साथ गप्प नहीं करना चाहिए।
- उसके दोषों को क्षमा कर देना चाहिए।
- पूरे उत्साह के साथ सिखाना चाहिए।

---

[439] *मि.प.*, 1/1/8, पृ.7

[440] वही, 4/3/10, पृ. 136

[441] वही, 1/1/8, पृ.7

[442] वेदा सिक्खानि नाम, अवसेसानि सिप्पानि सिप्पं नामा"ति। वही, 1/1/8, पृ. 7

- बिना किसी अवकाश के पढ़ाना चाहिए।
- उससे कुछ भी छिपाना नहीं चाहिए।
- उसे सब कुछ बता देना चाहिए।
- विद्या से इसे पुनर्जन्म दे रहा हूँ- ऐसा विचार कर पुत्रवत् स्नेह करना चाहिए।
- शिष्य अपने उद्देश्य से न फिसले इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए।
- शिष्य को सभी शिक्षाओं को देकर बड़ा बनाना चाहिए।
- उसके साथ मैत्री भाव रखना चाहिए।
- आपत्ति पड़ने पर उसका साथ नहीं छोड़ना चाहिए।
- सीखे हुए को सिखाने में चूकना नहीं चाहिए।
- धर्मच्युति होने पर उसकी रक्षा करनी चाहिए।[443]

मिलिन्दपञ्ह में उल्लेख मिलता है कि शिष्य राजकुमार समस्त विद्याओं को पढ़कर जब उचित समय पर राजसिंहासन पर बैठता था, तो आचार्य को प्रणाम करता था तथा सम्मान में खड़ा भी होता था।[444]

मिलिन्दपञ्ह से भिक्खुओं की शिक्षा पद्धति के बारे में पता चलता है। भिक्खु से पहले वह श्रामणेर होता है। प्रव्रजित होकर, कषाय वस्त्र धारण करने पर श्रामणेर कहा जाता है। श्रामणेर के रूप में उसे बौद्ध साहित्य का अध्ययन कराया जाता था। अपने गुरु की सेवा के साथ ही दस शीलों का व्रत लेता है। बीस साल से ऊपर के श्रामणेर का उपसम्पदा संस्कार कराया जाता है, जिसके बाद वह भिक्खु बन जाता था।[445] मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि गुरु को प्रणाम करना, अनुचित शंकाएं न करना, परिवेण में झाड़ू लगाना, गुरु के मुख प्रक्षालन हेतु जल तथा दांत साफ करने हेतु दातुन यथास्थान रखना इत्यादि श्रामणेर के कर्त्तव्य हैं।[446]

3.3.5. मनोरंजन

मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समय में संगीत की तीनों विधाएं गायन, वादन तथा नृत्य प्रचलन में थीं। तुरही[447], ढोल[448], झांझ[449], वीणा[450], नगाड़ा[451] इत्यादि वाद्य यंत्रों का उल्लेख मिलता है।

---

443 *मि.प.*, 4/5, पृ. 76

444 वही, 4/3/1, पृ. 123; 5/3/9, पृ. 224

445 *मि.प्र.*, पृ. 407-8

446 *मि.प.*, 1/1/11, पृ. 11

447 *मि.प.*, 2/1/4, पृ. 23

448 वही, 4/1/1, पृ. 79

मिलिन्दपञ्ह से बच्चों के खेलने के साधन जैसे बंकुली, घिरनी, गुल्ली-डण्डा, खेलने का पैला, खेलने का रथ, छोटा धनुष इत्यादि का पता चलता है।[452]

मिलिन्दपञ्हकालीन भारत में मल्ल विद्या तथा कुश्ती का प्रचलन था।[453] कुश्ती के लिए गुरु से शिक्षा ली जाती थी। कुश्ती के विभिन्न दांव-पेंच उससे सीखे जाते थे।[454] खेलों का प्रदर्शन किया जाता था। क्रीड़ा स्थल के कंकड़-पत्थर तथा कूढ़ा-करकट को दूर करके साफ करने के बारे में मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है।[455]

3.3.6. भोजन तथा चिकित्सा

मिलिन्दपञ्ह में उल्लेख मिलता है कि सभी अन्न उपयोगी, भोज्य एवं शरीर के लिए लाभप्रद होते थे, किन्तु धान सभी अन्नों में प्रधान था।[456] दासों द्वारा खाए जाने वाले कुमुदभाण्डिका[457] तथा राजा द्वारा खाए जाने वाले शालि[458] धान के उल्लेख तथा ग्रंथ में अन्यत्र प्राप्त सन्दर्भों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि धान ही प्रमुख खाद्यान्न था। उसे पकाकर भात बनाया जाता था। मिलिन्दपञ्ह[459] में मछली, मांस, मद्य तथा भात के एक साथ प्रयोग से पता चलता है कि लोग शराब के साथ-साथ मांसाहार का प्रयोग भी करते होंगे। गन्ने को पेरकर रस बनाया जाता था।[460] खाने में घी[461], मट्ठा[462] का प्रयोग सामान्यतः किया जाता था।

---

[449] *मि.प.,* 2/3/8, पृ. 48

[450] वही, 2/3/5, पृ. 42

[451] वही, 5/1/9, पृ. 186

[452]मनुस्सा तरुणदारकानं पठमं ताव कीळाभण्डकानि देन्ति। सेय्यथिदं, वङ्ककं घटिकं चिङ्गुलकं पत्ताळ्हकं रथकं धनुकं, पच्छा ते सके सके कम्मे नियोजेन्ति। वही, 4/5/9, पृ. 164

[453] वही, 4/5/10, पृ. 167

[454] वही, 4/5/10, पृ. 167

[455] वही, 2/1/9, पृ. 26

[456] वही, 4/3/9, पृ. 135

[457] वही, 5/3/3, पृ. 208

[458] वही, 5/3/3, पृ. 208

[459] वही, 5/3/4, पृ. 210

[460] वही, 4/3/2, पृ. 124

[461] वही, 4/3/8, पृ. 133

[462] वही, 4/3/5, पृ. 129

चावलों को चूल्हे पर हांडी[463] अथवा कढ़ाई[464] में पकाये जाने के उल्लेख मिलिन्दपञ्ह से मिलते हैं। भात परोसने के लिए कलछी का प्रयोग किया जाता था।[465] अरणियों को घिसकर[466] तथा शीशे का प्रयोग करके[467] अग्नि प्रज्वलित की जाती थी। पद्मरागमणि द्वारा पानी को शुद्ध करने का उल्लेख मिलता है,[468] जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि पानी को स्वच्छ तथा साफ करके प्रयोग किया जाता होगा।

चिकित्सक के लिए मिलिन्दपञ्ह में भिसक्क शब्द का प्रयोग होता था।[469] मिलिन्दपञ्ह से शल्य चिकित्सा का उल्लेख मिलता है। वही चिकित्सक श्रेष्ठ माना गया है जो शल्य चिकित्सा कर रोगी को ठीक कर देता है।[470] मिलिन्दपञ्ह के एक सन्दर्भ में शल्य चिकित्सा से पूर्व की अवस्था का वर्णन मिलता है।[471] वैद्य भली भांति व्रण का परीक्षण करता है। शल्यकर्म हेतु छुरी साफ करता है। दाह के लिए क्षाका को अग्नि में तपाता है। क्षाका पर खारे नमक को पिसवाता है। मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है कि सर्प के काटने का इलाज दो प्रकार से किया जाता था। प्रथम अहितुण्डक अर्थात् सपेरे द्वारा विष को झाड़ कर दूर करने से[472] तथा दूसरा मंत्रबल से काटने वाले साँप को बुलाकर उसी विष को चूसकर बाहर निकलवाने से।[473]

बौद्ध धर्म ने मानव को भाग्यवाद की परंपरा से बाहर निकालने में सहायता प्रदान की। हेतुवाद की स्थापना से प्रत्येक वस्तु के कारण की खोज पर बल दिया गया, जिससे रोगों के कारणों की खोज ने चिकित्सा पद्धति को व्यापक स्तर पर प्रचारित किया। मिलिन्दपञ्ह में कहा गया है कि झाड़-फूंक से रोग दूर नहीं होते। रोगों का निवारण औषधि से होता है। वमन तथा विरेचन की दो पद्धतियों के माध्यम से शरीर को दुर्बल करके

---

[463] *मि.प.,* 5/1/9, पृ. 186

[464] वही, 4/1/4, पृ. 92

[465] वही, 1/1/7, पृ. 7; 4/1/2, पृ. 85

[466] वही, 4/1/1, पृ. 78

[467] वही, 2/3/5,, पृ. 42

[468] वही, 5/3/1, पृ. 198

[469] वही, 5/3/6,, पृ. 216

[470] यो च भिसक्को खिप्पं सल्लं उद्धरति रोगमपनेति, सो भिसक्को छेको नाम। वही, 5/3/3, पृ. 209

[471] पुरिसस्स काये मेदो गण्ठि उप्पज्जेय्य। सो तेन रोगेन दुक्खितो उपद्दवा परिमुच्चित्तुकामो भिसक्कं सल्लकत्तं आमन्तापेय्य। तस्स वचनं सो भिसक्को सल्लकत्तो सम्पटिच्छित्वा तस्स रोगस्स उद्धरणाय उपकरणं उपट्ठापेय्य, सत्थकं तिखिणं करेय्य, यमकसलाका अग्गिम्हि पक्खिपेय्य, खारलवणं निसदाय पिसापेय्य, अपि नु खो, महाराज, तस्स आतुरस्स तिखिणसत्थकच्छेदनेन यमकसलाकादहनेन खारलोणप्पवेसनेन तासो उप्पज्जेय्या"ति? वही, 4/2/3, पृ. 113

[472] वही, 5/3/6,, पृ. 216

[473] वही, 4/2/3, पृ. 113

चिकित्सा की जाती थी।[474] रोग-निदान की प्रक्रिया का वर्णन मिलिन्दपञ्ह से मिलता है। चिकित्सक रोगी को चार-पाँच दिन तक तैल पिलाता है, जिससे उसका शरीर चिकना हो जाए तथा कुछ शक्ति आ जाए। बाद में विरेचन देता है।[475]

शारीरिक वेदनाओं के मिलिन्दपञ्ह में आठ कारण बताए गए हैं। ये हैं- वायु का बिगड़ जाना, पित्त का प्रकोप होना, कफ का बढ़ जाना, सन्निपात का दोष हो जाना, ऋतुओं का परिवर्तित होना, बाह्य प्रकृति के प्रभाव, अपने कर्मों का फल।[476] मिलिन्दपञ्ह से रोगों के कारणों के बारे में पता चलता है। वात, पित्त तथा कफ में से किसी एक के बिगड़ जाने से ही पृथक्-पृथक् रोग होते हैं।[477] वायु बिगड़ जाने के दस कारण मिलिन्दपञ्ह में बताए गए हैं- सर्दी, गर्मी, प्यास, अतिभोजन, भूख, अधिक खड़ा होना, अधिक परिश्रम करना, बहुत तेज चलना, बाह्य प्रकृति के दूसरे प्रभाव, अपने कर्म।[478] पित्त के कुपित होने के तीन कारण सर्दी, गर्मी तथा असमय भोजन हैं।[479] कफ के बढ़ने के तीन कारण हैं- सर्दी, गर्मी तथा खान-पान में व्यतिक्रम।[480]

मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि पाचन शक्ति के मन्द पड़ने पर तथा मात्रा से अधिक भोजन करने पर कभी कभी प्राणों का भी हरण हो जाता है। जीवनदायी भोजन ही विष का कार्य करता है।[481] मिलिन्दपञ्ह में लकवा (पक्खहतो) तथा अपड़्गता (पीठसप्पि) दोनों रोगों का उल्लेख मिलता है।[482] ये लाईलाज बीमारियाँ थीं। मिलिन्दपञ्ह में चिकित्सा शास्त्र के प्राचीन आचार्यों- नारद, धन्वन्तरि, अंगीरस, कपिल, कण्डराग्नि, साम, अतुल और पूर्वकात्यायन का नामोल्लेख किया गया है।[483]

---

[474] *मि.प.*, 5/4/2, पृ. 248

[475] भिसक्को नाम आतुरानं पठमं ताव चतूहपञ्चाहं तेलं पायेति बलकरणाय सिनेहनाय, पच्छा विरेचेति। वही, 4/5/9, पृ. 164

[476] वही, 4/1/8, पृ. 103

[477] वही, 4/1/8, पृ. 104

[478] वही, 4/1/8, पृ. 104

[479] वही, 4/1/8, पृ. 104

[480] वही, 4/1/8, पृ. 104

[481] वही, 4/2/4, पृ. 116

[482] वही, 5/3/1, पृ. 197

[483] वही, 5/2/8, पृ. 194

3.4. राजनीतिक व्यवस्था

3.4.1.शासन का केन्द्र बिन्दु राजा

मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि तत्कालीन शासन व्यवस्था का स्वरूप राजतंत्रीय था, जिसका प्रधान राजा होता था। मिलिन्दपञ्ह में राजा को परिभाषित करते हुए बताया गया है कि राजा उसी को कहते हैं जो राज्य का संचालन करता है तथा सर्वत्र अपना शासन बनाए रखता है। सभी लोगों को अपने नियंत्रण में रखता है। अपने बंधु-बांधवों को खुश रखता है। शत्रुओं को सताता है। उसका नाम और यश सर्वत्र व्याप्त होता है। वह अत्यंत बल संपन्न होता है और वह अपने निर्मल श्वेत-छत्र को ऊँचा करता है। वह भेंट करने आए हुए लोगों से वंदनीय होता है। स्वयं को प्रसन्न करने वालों को वह इच्छित वर देकर संतुष्ट करता है। वह राज-न्याय के विरुद्ध आचरण करने वालों पर जुर्माना लगाता है अथवा अनेक प्रकार के दण्ड देता है। जो पूर्वकाल से धार्मिक राजाओं द्वारा बताए गए न्याय और नियमों को लागू करता है, धर्मपूर्वक शासन करने वाले लोगों का बड़ा प्रिय बना रहता है तथा धर्म बल से अपने वंश को चिरकाल के लिए शासन में बनाए रखता है।[484]

मिलिन्दपञ्ह में राजा के पद को सर्वोच्च घोषित किया गया है।[485] राजा के लिए चक्रवर्ती शब्द का प्रयोग किया गया है। मिलिन्दपञ्ह में बताया गया है कि चक्रवर्ती सम्राट के राज्य की सीमा चारों ओर समुद्र तक विस्तृत होती थी जिसका सरंक्षण विशाल सेना के द्वारा ही किया जा सकता था।[486] वह स्वयं की उदारता, सुशीलता, न्याय तथा पक्षपातरहितता की नीति के आधार पर प्रजा को अपने पक्ष में करके रखता था। उसके राज्य में चोर-लुटेरों का अभाव होता था। वह प्रतिदिन अच्छे-बुरे का निरीक्षण कर समुद्रपर्यंत भूमि का चक्कर लगाता था। उसके साम्राज्य में आंतरिक तथा बाह्य स्तर पर सुरक्षा होती थी।[487] चक्रवर्ती राजा के यश का निर्धारण उसके हाथियों, अश्वों, रथों, सेना, स्वर्ण तथा संपत्ति के आधार पर किया जाता था।[488]

मिलिन्द की योग्यताओं से पता चलता है कि राजा विद्वान्, चतुर, बुद्धिमान् तथा योग्य होता था। वह भूत, वर्तमान तथा भविष्य के सभी मंत्र तथा योग विधानों का ज्ञाता होता था। वह श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, युद्धविद्या इत्यादि का ज्ञाता होता था।[489] राजाओं के प्रयोग की वस्तुओं में सबसे अच्छे वस्त्र, बिछौने, हाथी,

---

[484] *मि.प.,* 4/5/8, पृ. 162-63

[485] वही, 4/5/3, पृ. 156

[486] वही, 4/2/1, पृ. 109

[487] वही, 6/3/10, पृ. 75-76

[488] वही, 2/1/12, पृ. 28

[489] वही, 1/1/1, पृ. 2-3

अश्व, रथ, सोना-चाँदी, मणि-मोती, स्त्री, रत्न तथा मूल्यवान शराब इत्यादि का नामोल्लेख मिलता है।[490] जिसके पास ये अधिक होते थे वह राजा ही शक्तिशाली माना जाता था। मिलिन्दपञ्ह से उल्लेख मिलता है कि उच्च कुलोत्पन्न क्षत्रिय ही राजा बन सकता था।[491] निम्न जाति के व्यक्ति, गरीब तथा मूर्ख को राजगद्दी के लिए अयोग्य माना जाता था।[492] राजा का भय जनता में व्याप्त रहता था। मिलिन्दपञ्ह में उल्लेख मिलता है कि राजभय से कुछ लोग भिक्खु बन जाते थे।[493]

राज्य की समस्त प्रशासनिक, आर्थिक, सैनिक तथा न्यायिक शक्तियों का स्वामी राजा को माना जाता था। राजा की सेवा करके, उसे प्रसन्न करके उच्च पद तथा उपहार प्राप्त करने[494] के सन्दर्भों से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उच्च प्रशासनिक पदाधिकारियों की नियुक्ति राजा ही करता होगा। संपूर्ण भूमि को उसके अधीन मानना[495] आर्थिक संसाधनों पर उसके स्वामित्व को इंगित करता है। समस्त बंदरगाहों, रत्न की खानों, नगर तथा चुंगी उगाहने वाले स्थानों का स्वामी राजा ही होता था।[496] मिलिन्दपञ्ह में उल्लेख मिलता है कि कुशल धनुर्धरों को प्रशिक्षण के बाद राजा के सम्मुख लाया जाता था।[497] मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि न्याय व्यवस्था का प्रमुख राजा होता था। वह अपराधियों को दण्ड देने वाला तथा विदेशी विषयों के संदर्भ में स्वयं निर्णय लेने वाला था।[498]

3.4.2. मंत्रीगण तथा प्रशासन का विकेन्द्रीकरण

राजकुमार- मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि राजपद की आनुवांशिकता से राजा के बाद राजकुमार का महत्त्वपूर्ण पद होता था। राजकुमारों को क्षत्रियोचित शिक्षा दी जाती थी।[499] एक सन्दर्भ से पता चलता है कि चक्रवर्ती सम्राट मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र राज्य की सीमाओं का विस्तार करने पर जोर देते थे।[500]

---

[490] लोके वरपवरभण्डं वत्थं वा अत्थरणं वा गजतुरङ्गरथसुवण्णरजतमणिमुत्ताइत्थिरतनादीनि वा विजितकम्मसूरा वा सब्बे ते राजानमुपगच्छन्ति। *मि.प.*, 4/4/2, पृ. 141

[491] वही, 5/4/2, पृ. 253

[492] वही, 5/2/2, पृ. 190

[493] वही, 2/4/5, पृ. 24

[494] वही, 2/2/7, पृ. 38, 2/3/9, पृ. 48

[495] वही, 5/4/2, पृ. 254

[496] वही, 5/4/2, पृ. 253

[497] वही, 5/4/2, पृ. 249

[498] वही, 5/4/2, पृ. 253

[499] वही, 4/3/1, पृ. 123, 132

परिणायकरत्न- मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि चक्रवर्ती सम्राट को हित और अहित के विषय में समझाने वाला परिणायकरत्न होता था। राजा उसके द्वारा बताए गए हितकारी सुझाव को ग्रहण करता था तथा अहितकारी परामर्श को छोड़ देता था।[501] भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने परिणायकरत्न का अर्थ चक्रवर्ती नरेश का सेनापति माना है।[502] रीज डेविड्स ने परिणायकरत्न का आशय सलाहकार माना है।[503] चूंकि सेनापति नामक अमात्य का पृथक् उल्लेख मिलिन्दपञ्ह में किया गया है[504] अतः परिणायकरत्न के कार्यों से प्रतीत होता है कि तत्कालीन समय में परिणायकरत्न राजा का निकटस्थ और प्रभावी मंत्री होता होगा, जिसे प्रधानमंत्री भी कहा जा सकता है।

अमात्य- मिलिन्दपञ्ह में अमात्य के संदर्भ मिलते हैं।[505] अमात्य शब्द का प्रयोग सामान्यतः उच्च पदाधिकारियों के लिए किया जाता था। मिलिन्दपञ्ह में अमात्यों की संख्या एक, दो या तीन सौ तक बताई गई है, जिनमें से छह अमात्य प्रमुख माने जाते थे। ये अमात्य हैं- सेना का प्रधान अधिकारी सेनापति, धर्म के विषयों तथा विवादों का प्रमुख पुरोहित, न्याय का प्रधान अक्खदस्स, कोष का अध्यक्ष भण्डागारिक, छत्र स्वीकार करने वाला छत्रग्राहक तथा अंगरक्षक खग्गग्राहक। राजगुणों से युक्त होने के कारण ये श्रेष्ठ माने जाते थे।[506]

मंत्री- मिलिन्दपञ्ह में मंत्री शब्द के अनेक सन्दर्भ मिलते हैं।[507] ये मंत्री राजकीय कार्यों में राजा की सहायता करते थे। मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि प्रशासन के संचालनार्थ राजा अपने द्वारपाल, अंगरक्षक, सभासद, नागरिक, सिपाही, सेना, कोषाधिकारी तथा अधीनस्थ अधिकारियों से सलाह लेता था।[508] मिलिन्दपञ्ह में मिनाण्डर के एक मंत्री दिन्न[509] का नाम मिलता है।

---

[500] *मि.प.*, 4/2/1, पृ. 109

[501] रञ्ञो चक्कवत्तिस्स परिणायकरतनं रञ्ञो हिताहिते जानाति 'इमे रञ्ञो हिता, इमे अहिता। इमे उपकारा, इमे अनुपकारा'ति। ततो अहिते अपनुदेति, हिते उपग्गण्हाति। वही, 2/1/13, पृ. 19

[502] *पा.हि.को.,* पृ. 206

[503] *PED, Vol. V,* p. 48

[504] *मि.प.,* 4/1/4, पृ. 90

[505] वही, 1/1/1, पृ. 3, 4/1/4, पृ. 90

[506] रञ्ञो सतम्पि द्विसतम्पि तिसतम्पि अमच्चा होन्ति, तेसं छ येव जना अमच्चगणनाय गणीयन्ति। सेय्यथीदं, सेनापति पुरोहितो अक्खदस्सो भण्डागारिको छत्तग्गाहको खग्गग्गाहको। एते येव अमच्चगणनाय गणीयन्ति। किं कारणा? युत्तत्ता राजगुणेहि। वही, 4/1/4, पृ. 90

[507] वही, 1/1/19, पृ. 17; 3/4/8, पृ. 68; 4/1/5, पृ. 94; 4/5/10, पृ. 168; 5/1/1, पृ. 171

[508] वही, 4/5/10, पृ. 168

प्रशासन का विकेन्द्रीकरण- मिलिन्दपञ्ह से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन शासन व्यवस्था राजतंत्रीय पद्धति पर आधारित थी। इस व्यवस्था में शक्तियों का केन्द्र सम्राट होता था। साम्राज्य के कुशल शासन स्थापित करने के लिए तथा शांति-व्यवस्था बनाए रखने के लिए प्रशासन का विकेन्द्रीकरण किया गया था। मिलिन्दपञ्ह में ग्राम, निगम, नगर तथा जनपद के संदर्भों[510] से पता चलता है कि प्रशासन को मुख्य रूप से इन्हीं ग्राम, निगम, नगर तथा जनपद में वर्गीकृत किया गया होगा। प्रशासन की सबसे छोटी ईकाई ग्राम को माना जाता था। ग्राम के प्रमुख को ग्रामसामिक कहा जाता था।[511] ग्रामसामिक के आदेश पर ग्राम के सभी परिवार शीघ्रता के साथ एकत्रित हो जाते थे।[512] मिलिन्दपञ्ह में एक स्थान पर नैगम[513] शब्द आया है जिसका अर्थ निगम का प्रशासक माना जा सकता है। अन्य दोनों ईकाइयों नगर तथा जनपद के प्रशासन के बारे में उल्लेख नहीं मिलते हैं।

3.4.3. राज्य की आय के साधन

राज्य की आय का महत्त्वपूर्ण साधन कर था, जिसे मिलिन्दपञ्ह में 'बलि' कहा गया है।[514] मिलिन्दपञ्ह से ऐसी मान्यता के प्रचलन का पता चलता है कि प्रजा से ग्रहण किए गए कर को यदि राजा लोक-कल्याण में खर्च करेगा तो वह स्वर्गप्राप्ति का अधिकारी होगा।[515] आवश्यकता पड़ने पर राजा जनता से अतिरिक्त कर भी मांग सकता था।[516] किसान, व्यापारी, शिल्पकार सभी पर कर लागू होता था। मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है कि राजा के विशेषाधिकार प्राप्त कुछ अधिकारी कर देने से मुक्त थे।[517] सभी लोग सम्यक् ढंग से कर दे रहें हैं अथवा नहीं, इसकी जानकारी के लिए राजा चार महामात्यों की समिति नियुक्त करता था।[518]

---

509 *मि.प.*, 2/3/6, पृ. 44

510 वही, 5/1/6, पृ. 99; 6/3/1, पृ. 269

511 वही, 4/2/3, पृ. 111

512 वही, 4/2/3, पृ. 111

513 वही, 4/5/10, पृ. 168

514 वही, 4/2/3, पृ. 111

515 वही, 5/3/1, पृ. 198

516 वही, 4/2/3, पृ. 111

517 वही, 4/2/3, पृ. 111

518 वही, 4/2/3, पृ. 111

कर के अलावा राज्य की आय का स्रोत उपहार थे जो प्रजा द्वारा समय-समय पर राजा को दिए जाते थे।[519] विभिन्न अपराधों के दोषियों पर जुर्माना लगाया जाता था, जो राज्य की आय में जुड़ता था।[520] इसके अतिरिक्त राज्य के समस्त बंदरगाहों तथा खानों पर राजा का अधिकार था। इनसे प्राप्त आय राजकोष में जमा होती थी।

मिलिन्दपञ्ह में गणक[521] शब्द के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि करों का हिसाब-किताब रखने वाला एक वर्ग होता होगा, जो खाता-बही में लेखा-जोखा रखता होगा।

3.4.4.सुरक्षा व्यवस्था तथा सेना

राजा द्वारा राज्य की आंतरिक व्यवस्था के साथ-साथ बाह्य आक्रमण से सुरक्षा का भी प्रावधान किया जाता था। मिलिन्दपञ्ह में उल्लिखित धम्मनगर के वर्णन से पता चलता है कि नगर निर्माण करते समय ही सुरक्षात्मक प्रारूप तथा संरचना को स्वीकार किया जाता था। सुरक्षा की दृष्टि से नगर के चारों ओर खाई, मजबूत द्वार, चौकस अटारियों का निर्माण किया जाता था। नगर की किलाबंदी की जाती थी।[522] नगर का निर्माण इस तरह से किया जाता था कि शत्रु किसी भी तरफ से आक्रमण करने में सफल न हो सके।[523] रेनू शुक्ला ने अपने अध्ययन में बताया है कि सीमा प्रांत के नगरों की सुरक्षा पर विशेष बल दिया जाता था। उन्हें दृढ़ प्रकार से घेरा जाता था। दृढ़ द्वार बनाए जाते थे।[524] मिलिन्दपञ्ह में उल्लेख मिलता है कि केन्द्रीय सत्ता के कमजोर होते ही सीमांत प्रदेश विद्रोह कर देते थे। इन विद्रोहों को दबाने के लिए राजा स्वयं अपनी सेना के साथ जाता था।[525]

राज्य की सुरक्षा के लिए एक मजबूत सेना की आवश्यकता पड़ती थी। मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि सेना के चार अंग थे-हस्ति सेना, अश्व सेना, रथ तथा पैदल सेना।[526] मिलिन्दपञ्ह में इन चारों प्रकार की सेना को

---

[519] *मि.प.*, 4/2/5, पृ. 117; 5/1/2, पृ. 173

[520] वही, 4/4/3, पृ. 141-42

[521] वही, 5/3/3, पृ. 209

[522] वही, 5/4/1, पृ. 234-35

[523] वही, 5/4/1, पृ. 244

[524] *मि.प.ए.अ.,* पृ. 50

[525] *मि.प.*, 5/3/9, पृ. 223

[526] वही, 2/1/6, पृ. 26

चतुरंगिणी कहा गया है।[527] सेना का संचालन सेनापति नामक राजकीय अधिकारी करता था, जो राजा के छह श्रेष्ठ अधिकारियों में से एक था।[528] सेना निरन्तर अभ्यास करती थी। सैन्यकर्म को देखने राजा स्वयं आता था।[529]

मिलिन्दपञ्ह के एक सन्दर्भ से पैदल सेना की रणनीति का पता चलता है। वीर योद्धा निर्भय होकर पाँच आयुधों के साथ रण में जाता था। शत्रु पर वार दूरी के हिसाब से किया जाता था। शत्रू के दूरहोने पर तीर चलाया जाता था। कुछ पास होने पर भाला, थोड़ा और पास आने पर बर्छी, एकदम पास आने पर तलवार तथा शरीर के पास आने पर फरसे से आक्रमण किया जाता था।[530] युद्धस्थल में घुसकर शत्रु को काँख में दबाकर स्वामी के पास लाने वाला सिपाही बहादुर कहलाता था।[531]

3.4.5.न्याय व्यवस्था

मिलिन्दपञ्ह से स्पष्ट है कि न्याय व्यवस्था में निर्णय की सर्वोच्च भूमिका राजा को प्राप्त थी।[532] राजा की सहायता के लिए तथा न्यायिक कार्यों के संचालन के लिए अक्खदस्स नामक पदाधिकारी का उल्लेख मिलिन्दपञ्ह से मिलता है।[533] न्याय व्यवस्था को स्थापित करने तथा शासन के कुशल संचालन के लिए कठोर दण्ड व्यवस्था को अपनाया गया था।

मिलिन्दपञ्ह से स्पष्ट होता है कि हाथ काटना, पैर काटना, मृत्यु दण्ड देना, जेल में डालना, यातना देना, देश निकाला देना इत्यादि दण्ड सामान्यतः प्रचलन में थे।[534] इनके अलावा बेंत अथवा चाबुक से मारना, नाक काटना, कान काटना, नाक और कान एक साथ काटना, खोपड़ी हटाकर सिर पर तपे हुए लोहे का गोला रखना (बिलङ्गथालिका), सिर का चमड़ा आदि हटा उसे शंख के समान बना देना (शंखमुण्डिका), कानों तक

---

[527] *मि.प.*, 1/1/1, पृ. 3

[528] वही, 4/1/4, पृ. 90

[529] वही, 1/1/1, पृ. 3

[530] योधो सङ्गामसूरो सन्नद्धपञ्चावुधो अच्छम्भितो सङ्गामं ओतरति, 'सचे अमित्ता दूरे भविस्सन्ति उसुना पातयिस्सामि, ततो ओरतो भविस्सन्ति सत्तिया पहरिस्सामि, ततो ओरतो भविस्सन्ति कणयेन पहरिस्सामि, उपगतं सन्तं मण्डलग्गेन द्विधा छिन्दिस्सामि, कायूपगतं छुरिकाय विनिविज्झिस्सामी'ति। वही, 5/4/1, पृ. 240

[531] यो कोचि योधो महतिमहायुद्धं पविसित्वा पटिसत्तुं उपकच्छके गहेत्वा आकड्ढित्वा खिप्पतरं सामिनो उपनेय्य, सो योधो लोके समत्थो सूरो नाम। वही, 5/3/3, पृ. 208

[532] वही, 4/4/1, पृ. 139; 5/4/2, पृ. 254

[533] वही, 4/1/4, पृ. 90

[534] हत्थच्छेदो पादच्छेदो वधो बन्धनं कारणा मारणं सन्ततिविकोपनं..। वही, 4/3/11, पृ. 136

मुहँ को फाड़ देना (राहुमुख), पूरे शरीर में तैल सिक्त कपड़ा लपेट कर जला देना (ज्योतिर्मालिका), हाथ में कपड़ा लपेट कर जलाना (हस्त-प्रज्योतिका), गर्दन तक खाल खींचकर घसीटना (एरकवर्तिका), ऊपर की खाल खींचकर कमर पर छोड़ देना तथा नीचे की खाल को खींच कर घुट्टी तक छोड़ देना (चीरकवासिका), कुहनी तथा घुटने में लौहशलाका ठोककर भूमि पर स्थापित कर अग्नि लगाना (ऐणेयक), बंसी के तरह के लोह-अंकुशों को मुख में डालकर खींचना (बलिसमंसिका), पैसे-पैसे भर कर मांस को शरीर से काटना (कार्षापणक), शरीर में घाव करके नमक छिड़कना (खारापतच्छिका), दोनों कानों से कील पार कर उसे जमीन में गाड़ देना तथा पैर पकड़ कर उसी के चारों ओर घुमाना (परिघपरिवर्त्तिका), हथोड़े से हड्डियों को चूर कर शरीर को माँसपुँज सा बना देना (पलालपीठक), गर्म तैल का छिड़का जाना, कुत्तों से नुचवाना, फाँसी पर लटकाना, तलवार से सिर काटना आदि दण्ड तत्कालीन समय में प्रचलित थे।[535] चोरी करने वाले व्यक्ति को फांसी देने के उल्लेख ग्रंथ से प्राप्त होते हैं।[536]

दण्ड में समरूपता का अभाव था। एक ही कृत्य के लिए पृथक् पृथक् दण्ड विधान था। मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि यदि कोई व्यक्ति किसी सामान्य व्यक्ति को थप्पड़ मार दे तो एक कार्षापण दण्डस्वरूप जुर्माना लिया जाता था। यदि वही व्यक्ति राजा के थप्पड़ मारे तो हाथ कटवाने, पैर कटवाने, जीवित ही खाल उतरवाने, संपत्ति जब्त करने तथा उसकी सात पीढ़ी के सभी लोगों को मृत्युदण्ड देने का दण्डविधान था।[537] मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि शास्त्रार्थ में यदि राजा पराजित हो जाता था तो तुरंत दण्ड देता था।[538]

---

[535] अद्धदण्डकेहि ताळनम्पि दुक्खं, हत्थच्छेदनम्पि दुक्खं, पादच्छेदनम्पि दुक्खं, हत्थपादच्छेदनम्पि दुक्खं, कण्णच्छेदनम्पि दुक्खं, नासच्छेदनम्पि दुक्खं, कण्णनासच्छेदनम्पि दुक्खं, बिलङ्गथालिकम्पि दुक्खं, सङ्खमुण्डिकम्पि दुक्खं, राहुमुखम्पि दुक्खं, जोतिमालिकम्पि दुक्खं, हत्थपज्जोतिकम्पि दुक्खं, एरकवत्तिकम्पि दुक्खं, चीरकवासिकम्पि दुक्खं, एणेय्यकम्पि दुक्खं, बळिसमंसिकम्पि दुक्खं, कहापणिकम्पि दुक्खं, खारापतच्छिकम्पि दुक्खं, पलिघपरिवत्तिकम्पि दुक्खं, पलालपीठकम्पि दुक्खं, तत्तेन तेलेन ओसिञ्चनम्पि दुक्खं, सुनखेहि खादापनम्पि दुक्खं, जीवसूलारोपनम्पि दुक्खं, असिना सीसच्छेदनम्पि दुक्खं। *मि.प.,* 4/4/5, पृ. 144

[536] वही, 4/3/11, पृ. 137

[537] वही, 4/4/3, पृ. 141-42

[538] वही, 2/1/3, पृ. 21-22

3.5. कृषि एवं अर्थव्यवस्था

3.5.1. कृषि तथा सिंचाई व्यवस्था

मिलिन्दपञ्ह में कृषक के लिए कस्सक[539] शब्द का प्रयोग किया गया है। मिलिन्दपञ्ह से कृषि की प्रक्रिया का वर्णन ज्ञात होता है। कृषक सर्वप्रथम कृषि योग्य क्षेत्र अर्थात् खेत के कंकड़-पत्थर, घास-फूस अर्थात् कूड़ा दूर करता था। खेत को जोतकर बीज बोता था। बीज बोने के पश्चात् खेत का समानीकरण अर्थात् पटा करता था। जल के माध्यम से सिंचाई करता था। विभिन्न पशु-पक्षियों से फसल की रक्षा करता था। अंत में धान अथवा अन्य किसी भी फसल को काटकर इकट्ठा कर लेता था।[540]

कृषक बीज बोने से पहले फसल की सुरक्षा की दृष्टि से खेत के चारों ओर बाड़ बांधता था। यह बाड़ जंगल से काटकर लाई गई लकड़ियों से बनाई जाती थी। बाड़ बांधना या न बांधना कृषक की इच्छा पर निर्भर था।[541] कृषि कार्य में वर्षा के जल का महत्त्वपूर्ण स्थान था। मिलिन्दपञ्ह में उल्लेख मिलता है कि समय पर जल के बरसने से अच्छी तरह जमा हुआ धान फैलकर घनी बालियों से लद जाता था। पूर्णरूपेण तैयार हुए धान को काटने पर फसल की पैदावार अच्छी होती थी।[542] जल के अभाव में खेत में अच्छी तरह जमा हुआ धान सूख कर मुरझा जाता था, जिससे फसल नष्ट हो जाती थी।[543]

ओपम्मकथापञ्ह से पता चलता है कि धान के खेत में जल लाने के लिए नालियों का निर्माण किया जाता था।[544] खेतों में क्यारियाँ बांधी जाती थीं। उन क्यारियों में जल रोककर धान पुष्ट किया जाता था।[545] अधिक फसल की पैदावार कृषक के जीवन को खुशहाल बनाती था। फसल में बुबाई महत्त्वपूर्ण होती थी। मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है कि कम बीजों के होने पर यदि बीज की बुबाई अच्छी प्रकार से हो जाए तो

---

[539] *मि.प.*, 5/4/2, पृ. 254

[540] कस्सको पठमं खेत्तदोसं तिणकट्ठपासाणं अपनेत्वा कसित्वा वपित्वा सम्मा उदकं पवेसेत्वा रक्खित्वा गोपेत्वा लवनमद्दनेन बहुधञ्ञको होति....। वही

[541] एको पुरिसो खेत्ते बीजं रोपेत्वा अत्तनो यथाबलवीरियेन विना पाकारवतिया धञ्ञं उद्धरेय्य, एको पुरिसो खेत्ते बीजं रोपेत्वा वनं पविसित्वा कट्ठञ्च साखञ्च छिन्दित्वा वतिपाकारं कत्वा धञ्ञं उद्धरेय्य। या तत्थ तस्स वतिपाकारपरियेसना, सा धञ्ञत्थाय। वही, 5/2/1, पृ. 188

[542] खेत्ते सुविरूळ्हं धञ्ञबीजं सम्मा पवत्तमानेन वस्सेन ओततवितताकिण्णबहुफलं हुत्वासस्सुट्ठानसमयं पापुणाति, तं धञ्ञं वुच्चति। वही, 5/3/6, पृ. 218

[543] खेत्ते सुविरूळ्हं धञ्ञबीजं उदकेन विकलं मरेय्य, अपि नु खो तं, महाराज, धञ्ञं असमयसम्पत्तं नाम होती'ति? वही, पृ. 219

[544] खेत्तं मातिकासम्पन्नं होति। वही, 6/7/4, पृ. 293

[545] खेत्तं मरियादासम्पन्नं होति, ताय च मरियादाय उदकं रक्खित्वा धञ्ञं परिपाचेति। वही

फसल की पैदावार भी अधिक होती थी।[546] मिलिन्दपञ्ह से फसल को काटने की प्रक्रिया के बारे में विवरण मिलता है। जौ को किस प्रकार काटा जाता था? इसे स्पष्ट करते हुए नागसेन कहते हैं कि बाएं हाथ से जौ की बालों को पकड़कर, दाहिने हाथ से हाँसिये के द्वारा काटा जाता था।[547]

मिलिन्दपञ्ह कृषि की समृद्धता को प्रदर्शित करता है। मिलिन्दपञ्ह में उल्लेख आया है कि किसान अन्न भण्डार गृहों में सुरक्षित रखता था। अनाज की पैदावार की अधिकता से खेत को जोते-बोए बिना ही कृषक कुछ समय तक घर बैठकर ही अन्न खा सकता था तथा दूसरे कार्यों में भी खर्च कर सकता था।[548]

मिलिन्दपञ्ह से सालि, वीहि, जौ (यव), तण्डुल, तिल, मूँग, मास (उड़द), धान[549] तथा गन्ना[550] इत्यादि की फसल उगाने के सन्दर्भ मिलते हैं। मिलिन्दपञ्ह में धान के उल्लेख[551] बार-बार मिलने से यह कहा जा सकता है कि धान प्रमुख खाद्यान्न होगा तथा इसकी खेती भी व्यापक स्तर पर की जाती होगी। मिलिन्दपञ्ह में धान की दो किस्मों कुमुदभण्डिका तथा शालि-धान के बारे में बताया गया है।[552] कुमुदभण्डिका धान अपरांतक देश में उगाया जाता था। इसे बोने से पकने में मात्र एक मास लगता था। शालि-धान को पकने में पाँच- छह मास लगता था। शालि का उपयोग राजाओं के भोजन के लिए किया जाता था जबकि कुमुदभण्डिका का उपभोग दास-दासी करते थे। मिलिन्दपञ्ह में वनस्पतियों की विविधता का उल्लेख मिलता है। स्वाद के आधार पर अनका वर्गीकरण किया जाता था। खट्टी, नमकीन, तिक्त, कसेली, कड़वी तथा मीठी वनस्पतियों के बारे में मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है।[553]

---

546 खेत्तं उट्ठानसम्पन्नं होति, कस्सकस्स हासजनकं अप्पम्पि बीजं वुत्तं बहु होति, बहु वुत्तं बहुतरं होति। *मि.प.*, 6/7/4, पृ. 293

547 यवलावका यवं लुनन्ती'ति? वामेन, भन्ते, हत्थेन यवकलापं गहेत्वा दक्खिणेन हत्थेन दात्तं गहेत्वा दात्तेन छिन्दन्तीति। वही, 2/1/8, पृ. 25

548 कस्सको गहपतिको कसित्वा च वपित्वा च धञ्ञागारं परिपूरेय्य। सो अपरेन समयेन नेव कस्सेय्य न वप्पेय्य, यथासम्भतञ्च धञ्ञं परिभुञ्जेय्य वा विसज्जेय्य वा यथा पच्चयं वा करेय्य..। वही, 2/2/2, पृ. 32

549पुरिसस्स अड्ढस्स सालिवीहियवतण्डुलतिलमुग्गमासपुब्बण्णापरण्णसप्पितेलनवनीतखीरदधिमधुगुळफाणिताच खळोपिकुम्भि-पीठरकोट्ठभाजनगता भवेय्युं। वही, 4/1/2, पृ. 83

550 वही, 4/3/2, पृ. 124

551 वही, 4/1/2, पृ. 84, 5/1/5, पृ. 180, 5/3/6, पृ. 219, 6/7/4, पृ. 293

552 अपरन्ते जनपदे कुमुदभण्डिका नाम धञ्ञजाति मासलूना अन्तोगेहगता होति, सालयो छप्पञ्चमासेहि परिणमन्ति.....सालयो, भन्ते नागसेन, राजारहा राजभोजनं, कुमुदभण्डिका दासकम्मकरानं भोजन'न्ति। वही, 5/3/3, पृ. 208

553 वही, 3/4/4, पृ. 52

प्राकृतिक प्रकोपों से कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। मिलिन्दपञ्ह[554] में कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले प्राकृतिक प्रकोपों का उल्लेख मिलता है। मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है कि कभी-कभी फसल की हानि कई प्रकार के प्राकृतिक प्रकोपों के कारण होती थी। जल के अभाव अथवा अकाल में गर्मी से धान की फसल सूख जाती थी। हरी-भरी धान की फसल कीड़े लग जाने से नष्ट हो जाती थी। कभी कभी धान की बालियों के भार से लदी हुई अच्छी फसल भी उपलवृष्टि अर्थात् ओले की वृष्टि के कारण नष्ट हो जाती थी।

सिंचाई के लिए अधिकतर कृषक वर्षा पर निर्भर थे। मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है कि साल में वर्षा तीन बार होती थी- वर्षा ऋतु, हेमंत ऋतु (शीत) तथा पावस ऋतु (आषाढ तथा सावन मास)। इसके अलावा कभी-कभी असमय बरसात भी होती थी।[555] असमय बरसात को अकालमेघ कहा गया है।[556]

वर्षा जल के अतिरिक्त सिंचाई के प्राकृतिक स्रोतों में नदियों का महत्त्व था। मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि हिमालय से पाँच सौ नदियाँ निकलती थीं। जिनमें से गंगा, यमुना, अचिरावती, सरयू, माही, सिन्धु, सरस्वती, वेत्रवती, व्यास तथा चन्द्रभागा आदि दस नदियों का उल्लेख मिलिन्दपञ्ह में मिलता है।[557] नदियों के जल का उपयोग सिंचाई कार्यों में किया जाता होगा। सिंचाई कार्य में नदियों के जल के अलावा कूप[558], तालाब[559], नहर[560], जलाशय इत्यादि के जल का भी उपयोग किया जाता होगा।

3.5.2.शिल्प तथा व्यवसाय

मिलिन्दपञ्ह के अनुमानपञ्ह में वर्णित धम्मनगर में बसने वाले लोगों की सूची में विभिन्न प्रकार के व्यवसायियों का उल्लेख मिलता है।[561] व्यवसाय के आधार पर इन व्यवसायियों का नामकरण किया गया है।

---

[554] *मि.प.*, 5/3/6, पृ. 219

[555] लोके तयो येव मेघा गणीयन्ति वस्सिको हेमन्तिको पावुसकोति। यदि ते मुञ्चित्वा अञ्ञो मेघो पवस्सति, न सो मेघो गणीयति सम्मतेहि मेघेहि, अकालमेघोत्वेव सङ्खं गच्छति। वही, 4/1/4, पृ. 89

[556] वही

[557] हिमवन्ता पब्बता पञ्च नदिसतानि सन्दन्ति, तेसं, महाराज, पञ्चन्नं नदिसतानं दसेव नदियो नदिगणनाय गणीयन्ति। सेय्यथीदं, गङ्गा यमुना अचिरवती सरभू मही सिन्धु सरस्सती वेत्रवती वीतंसा चन्दभागाति, अवसेसा नदियो नदिगणनाय अगणिता। वही, 4/1/4, पृ. 90

[558] वही, 3/4/5, पृ. 53

[559] वही, 3/4/5, पृ. 56

[560] वही, 6/7/4, पृ. 293

[561] ..... सूदा कप्पका नहापका चुन्दा मालाकारा सुवण्णकारा सज्झुकारा सीसकारा तिपुकारा लोहकारा वट्टकारा अयोकारा मणिकारा पेसकारा कुम्भकारा वेणुकारा लोणकारा चम्मकारा रथकारा दन्तकारा रज्जुकारा कोच्छकारा सुत्तकारा विलीवकारा धनुकारा जियकारा उसुकारा चित्तकारा रङ्गकारा रजका तन्तवाया तुन्नवाया हेरञ्ञिका दुस्सिका गन्धिका तिणहारका कट्ठहारका

मिलिन्दपञ्ह में उल्लिखित प्रमुख व्यवसायी इस प्रकार हैं- रसोई का कार्य करने वाला रसोईया (सूद), बाल काटने वाला नाई (कप्पक), नहलाने वाला नहापक, लोहे का काम करने वाला लोहार (चुन्द), माली (मालाकार), स्वर्णकार (सुवण्णकार) चाँदी का कार्य करने वाला सज्झुकार, सीसे का कार्य करने वाले सीसकार, तिपु अर्थात् टिन अथवा सीसे का कार्य करने वाला तिपुकार[562], पीतल का कार्य करने वाला वट्टकार[563], तांबे का कार्य करने वाला ताम्रकार (अयोकार), जौहरी (मणिकार), दूत (पेसकार), मिट्टी के बर्तन बनाने वाला कुम्हार (कुम्भकार), बाँस का कार्य करने वाला वेणुकार, नमक बनाने वाला लोणकार, चमड़े का कार्य करने वाला चर्मकार (चम्मकार), रथ का निर्माण करने वाला रथकार, हाथी दांत से वस्तुओं का निर्माण करने वाला दन्तकार, रस्सी बनाने वाला रज्जुकार, कंघी बनाने वाला कोच्छकार, सूत काटने वाला सुत्तकार, टोकरी बनाने वाला विलीवकार, धनुष बनाने वाला धनुकार, धनुष की प्रत्यञ्चा बनाने वाला जियकार, बाणों का निर्माण करने वाला उसुकार, चित्रकार (चित्तकार), रंगरेज (रङ्गकार), धोबी (रजक), जुलाहा (तन्तवाय), दर्जी (तुन्नवाय), सोने का व्यापार करने वाले हेरञ्ञिक, वस्त्रों का व्यापारी (दुस्सिक)[564] सुगन्धित द्रव्य बेचने वाला गन्धिक, घास एकत्रित कर बेचने वाला घसियारा (तिणहारक), लकड़हारा (कट्ठहारक), श्रमिक (भतक), पत्ते बेचने वाला पण्णिक, फल बेचने वाला फलिक, जड़ी-बूटी बेचने वाला मूलिक, भात बेचने वाला ओदनिक, पूआ बेचने वाला पूविक, मछुआरा (मच्छिक), मांस बेचने वाला मंसिक, शराब बनाने वाला मज्जिक, नट का करतब दिखाने वाला नटक, नृत्य दिखाने वाला नच्चक, मदारी (लङ्घक), जादूगर (इन्दजालिक) मायावी करतब करने वाला वेतालिक, पहलवान (मल्ल), मृतकों को जलाने वाला छवडाहक, फूल एकत्रित करने वाला पुप्फछड्डक, वीणा बजाने वाला वेन, निषाद (नेसाद), वेश्या (गणिका), रास रचाने वाली लासिका, जल भरकर लाने वाला कुम्भदासि। इनके अलावा बढ़ई (तच्छक[565]), ग्वाला (गोपालक[566]), केवट (कम्मकार[567]), वास्तुकार (नगर वड्ढकी[568]), लेखक (लेखाचारी[569]) इत्यादि अन्य व्यवसायों का उल्लेख मिलिन्दपञ्ह से मिलता है।

भतका पण्णिका फलिका मूलिका ओदनिका पूविका मच्छिका मंसिका मज्जिका नटका नच्चका लङ्घका इन्दजालिका वेतालिका मल्ला छवडाहका पुप्फछड्डुका वेना नेसादा गणिका लासिका कुम्भदासियो....। *मि.प.*, 5/4/1, पृ. 234-35

[562] *PED, Vol. III,* p. 137

[563] *PED, Vol. VII,* p. 52

[564] *PED, Vol. III,* p. 163

[565] *मि.प.,* 6/6/10, पृ. 291

[566] वही, 1/1/15, पृ. 14

[567] वही, 6/2/9, पृ. 267

मिलिन्दपञ्ह के विभिन्न संदर्भों से अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धों जैसे वस्त्र उद्योग, रत्न उद्योग, काष्ठ उद्योग, हाथी दांत उद्योग, पुष्प उद्योग, मत्स्योद्योग, मृद्भाण्ड उद्योग इत्यादि का पता चलता है।

तत्कालीन भारतवर्ष में वस्त्र उद्योग महत्त्वपूर्ण उद्योग था। वस्त्र बनाने वाले को मिलिन्दपञ्ह में तन्तुवाय[570] तथा वस्त्रों के व्यापारी को दुस्सिक[571] कहा गया है। मिलिन्दपञ्ह से वस्त्र निर्माण के पाँच चरणों- पिञ्जित, लुञ्चित, पोथित, कन्तित तथा वायित- की जानकारी मिलती है।[572] वस्त्र बनाने की प्रक्रिया में सर्वप्रथम रूई को रंगने का कार्य किया जाता था, जिसे मिलिन्दपञ्ह में पिञ्जित कहा गया है।[573] रंगी हुई रूई को गोले के रूप में इकट्ठा करने को लुञ्चित कहा जाता था।[574] गोले के रूप में इकट्ठा की गई रूई को पीटने अर्थात् तूनने का कार्य पोथित कहलाता था।[575] रूई को धागे के रूप में कातने की प्रक्रिया कन्तित कहलाती थी। धागे से वस्त्र को बुनने अर्थात् बनाने की प्रक्रिया वायिव कहलाती थी। रूई को रंगने की प्रक्रिया का प्रचलन न्यून होगा क्योंकि मिलिन्दपञ्ह में वस्त्र रंगने वाले रंगरेज[576] का उल्लेख मिलता है। मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है कि काशी तथा कोयम्बटूर (कोटुम्बर) का बना हुआ वस्त्र तत्कालीन सागल नगर में प्रसिद्ध हो चुका था, क्योंकि काशी तथा कोटुम्बर के बने हुए वस्त्र की दुकानें सागल नगर में थीं।[577]

मिलिन्दपञ्ह से धातु का कार्य करने वाले विभिन्न धातुकारों[578] के उल्लेख से धातु उद्योग की जानकारी मिलती है। तत्कालीन भारत देश में सोना, चाँदी, लोहा, तांबा, पीतल, टिन तथा सीसा आदि धातुओं का कार्य किया जाता था। धम्मनगर में रत्नों की दुकान[579] के सन्दर्भ से रत्न तथा मूल्यवान पत्थरों के सामाजिक महत्त्व का पता चलता है। मिलिन्दपञ्ह में इन्द्रनील, महानील, ज्योतिरस, वैदूर्य, ऊर्मापुष्प, शिरीषपुष्प, मनोहर, सूर्यकान्त, वज्र, खाधोपनक, स्पर्शराग, लोहितांग, मसारगल्ल इत्यादि रत्नों का उल्लेख मिलता

---

568 *मि.प.*, 5/4/1, पृ. 234

569 वही, 5/4/2, पृ. 247

570 वही, 5/4/1, पृ. 234

571 वही, 5/4/1, पृ. 235

572 .....सयं पिञ्जितं सयं लुञ्चितं सयं पोथितं सयं कन्तितं सयं वायितं वस्सिकसाटिकं.....। वही, 5/1/2, पृ. 172

573 *PED, Vol. V*, p. 79

574 *PED, Vol. VII*, p. 42

575 Ibid, p. 97

576 *मि.प.*, 5/4/1, पृ. 234

577 ... कासिककोटुम्बरिकादिनानाविधवत्थापणसम्पन्नं...। वही, गन्थकथावत्थु-2, पृ. 1

578 वही, 5/4/1, पृ. 234

579 वही, 5/4/1, पृ. 238

है।[580] मोती, मणि, वैलूर्य, शंख, शिला, मूंगा तथा स्फटिक जैसे कीमती रत्नों का वर्णन भी मिलिन्दपञ्ह में मिलता है।[581] इन रत्नों के प्रतिष्ठित जौहरी (छेकाचरि) तथा पारखी (मणिकार) तत्कालीन भारत में विद्यमान थे।[582]

काष्ठ-उद्योग का व्यापक स्तर पर प्रचलन था। काष्ठ का कार्य करने वाला तच्छक अर्थात् बढ़ई कहलाता था।[583] बढ़ई लकड़ी से विभिन्न वस्तुओं का सृजन कैसे करता था? इसके सन्दर्भ मिलिन्दपञ्ह में प्राप्त होते हैं। बढ़ई लकड़ी काटने के लिए सबसे पहले उस पर काले रंग से रेखांकित करता था। चिन्ह के अनुसार लकड़ी को काटता था। तत्पश्चात् वह मुलायम लकड़ी को हटाकर दृढ़काष्ठ को ले लेता था।[584] लकड़ी से बैलगाड़ी[585], नौका[586], जहाज[587] तथा घर[588] बनाने के बारे में मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है।

अन्य उद्योगों में हाथी के दांत से सामग्री बनाने का उद्योग प्रसिद्ध था। इस कार्य को करने वाले व्यक्ति को दन्तकार[589] कहा जाता था। पुष्प उद्योग को भी प्रश्रय मिला हुआ था। माली नाना प्रकार के पुष्पों को गूंथकर विचित्र तथा सुन्दर मालाओं का निर्माण करता था।[590] कुम्भकार मिट्टी के बरतन जैसे घट इत्यादि का निर्माण करता था। मिलिन्दपञ्ह से मत्स्योद्योग की जानकारी मिलती है। मछुआरा चारा फेंक कर बंसी (जाल) की सहायता से मछलियों को पकड़ता है।[591]

---

[580] महाराज, महिया बहुविधा मणयो विज्जन्ति। सेय्यथीदं, इन्दनीलो महानीलो जोतिरसो वेळुरियो उम्मापुप्फो सिरीसपुप्फो मनोहरो सूरियकन्तो चन्दकन्तो वजिरो खज्जोपनको फुस्सरागोलोहितङ्गो मसारगल्लोति। *मि.प.*, 4/1/4, पृ. 92

[581] महाराज, महासमुद्दो मुत्तामणिवेळुरियसङ्खसिलापवाळफलिकमणिविविधरतननिचयं धारेन्तो पिदहति, न बहि विकिरति। वही, 6/2/10, पृ. 267.

[582] वही, 5/1/9, पृ. 187

[583] वही, 6/6/10, पृ. 291

[584] तच्छको काळसुत्तं अनुलोमेत्वा रुक्खं तच्छति..... तच्छको फेग्गुं अपहरित्वा सारमादियति। वही, 6/6/10, पृ. 291

[585] वही, 2/3/7, पृ. 46

[586] वही, 5/3/1, पृ. 197

[587] वही

[588] वही, 2/3/5, पृ. 42

[589] वही, 5/4/1, पृ. 234

[590] दक्खो मालाकारो नानापुप्फरासिम्हा आचरियानुसिट्ठिया पच्चत्तपुरिसकारेन विचित्तं मालागुणरासिं करेय्य। वही, 5/4/1, पृ. 246

[591] बाळिसिको बळिसेन मच्छे उद्धरति..... बाळिसिको परित्तकं वधित्वा विपुलं लाभमधिगच्छति। वही, 6/6/9, पृ. 290

3.5.3. व्यापार तथा बाजार व्यवस्था

मिलिन्दपञ्ह से तत्कालीन भारत के व्यापार के बारे में स्पष्ट जानकारी मिलती है। व्यापार करने वाले व्यक्तियों के लिए सेट्ठि[592] शब्द का प्रयोग मिलिन्दपञ्ह में मिलता है। व्यापारी लोग स्थलमार्गीय व्यापार के लिए अधिकतर बैलगाड़ियों का प्रयोग करते थे।[593] रथ, अश्व, हाथी इत्यादि अन्य साधनों का प्रयोग भी भार ढ़ोने के लिए किया जाता था।[594] मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि एक व्यापारी पाँच सौ गाड़ियों के साथ व्यापार करने के लिए पाटलिपुत्र जा रहा था।[595] इससे संभावना व्यक्त की जा सकती है कि व्यापारिक मार्गों में सुरक्षा के प्रबंध किए जाते होंगे। सुरक्षा की दृष्टि से सेट्ठि-वर्ग व्यापारिक काफिलों अथवा जत्थों में साथ-साथ चलते होंगे।

मिलिन्दपञ्ह में जलमार्गीय व्यापार के भी उदाहरण मिलते हैं। नाविक को नियामक कहा जाता था।[596] नियामक नाव चलाने में कुशल तथा प्रवीण होता था। भारत का अधिकतर जल व्यापार विदेशों से होता था। मिलिन्दपञ्ह से ज्ञात होता है कि भारत का विदेशी व्यापार वङ्ग, तक्कोल, चीन, सौवीर, सुराष्ट्र, अलसन्द, कोलपट्टन और सुवर्ण-भूमि के साथ जलमार्ग से ही होता था।[597] रेनू शुक्ला का मानना है कि तक्कोल चीन तथा बंगाल के मध्य का तथा कोलपट्टन आधुनिक कावेरीपत्तनम् बंदरगाह है।[598]

विभिन्न प्रकार की व्यापारिक गतिविधियों के संचालन तथा उचित प्रबंधन के लिए बाजार व्यवस्था का होना अत्यावश्यक है। मिलिन्दपञ्ह के प्रारंभ में प्राचीनकालीन सागल नगर के बाजार का वर्णन प्राप्त होता है। बाजार की दुकानें अच्छी तरह से सजी हुई थीं। बहुमूल्य सामानों से दुकानें भरी हुई थीं। वहाँ काशी तथा कोयम्बटूर इत्यादि स्थानों से निर्मित होकर आए कीमती वस्त्रों की दुकानें थीं। अनेक प्रकार के पुष्प तथा सुगन्धित द्रव्यों की दुकानें भी वहाँ थीं। कार्षापण, स्वर्ण, चाँदी, काँसा तथा बहुमूल्य पत्थरों से दुकानें भरी हुई थीं। अनेक प्रकार के खाद्य, पेय तथा भोज्य उपलब्ध थे।[599] धम्मनगर के बाजार में पुष्प, गन्ध, फल,

---

[592] *मि.प.*, 1/1/14, पृ. 13

[593] वही, 2/4/2, पृ. 51

[594] वही, 5/3/1, पृ. 197

[595] तेन खो पन समयेन पाटलिपुत्तको सेट्ठि पञ्चहि सकटसतेहि पाटलिपुत्तगामिमग्गं पटिपन्नो होति। वही, 1/1/14, पृ. 13

[596] वही, 6/2/8, पृ. 266

[597] सधनो नाविको पट्टने सुट्ठु कतसुङ्को महासमुद्दं पविसित्वा वङ्गं तक्कोलं चीनं सोवीरं सुरट्ठं अलसन्दं कोलपट्टनं सुवण्णभूमिं गच्छति...। वही, 5/4/2, पृ. 253-54

[598] *मि.प.ए.अ.*, पृ. 114

[599] *मि.प.*, गन्थकथावत्थु-2, पृ. 1

दवाईयों, औषधियों, अमृत, रत्न तथा अन्य प्रकार की वस्तुओं की दुकानों का वर्णन प्राप्त होता है।[600] वस्तुओं को तौलने के लिए तराजू का उपयोग किया जाता था। मिलिन्दपञ्ह से पता चलता है कि तराजू को तोलिय[601] कहा जाता था। तराजू के उल्लेख से नाप-तौल के मापन के बारे में निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राज्य द्वारा मूल्यों का निर्धारण किया जाता होगा।

3.5.4.स्थापत्य तथा कला का विकास

अर्थव्यवस्था की समृद्धता से स्थापत्य तथा कला के विकास को प्रोत्साहन मिलता है। मिलिन्दपञ्ह में सागल नगर तथा धम्मनगर के वर्णन से तत्कालीन भारतीय स्थापत्य के बारे में पता चलता है। नगर निर्माण का कार्य नगरवड्ढकी अर्थात् वास्तुकार की देखरेख में होता था। नगर निर्माण के प्रथम चरण में वास्तुकार ऐसी जगह तलाशता है जो सपाट तथा कंकड़-पत्थरों एवं उपद्रवों (बाढ़, आग अथवा बाह्य शत्रु के आक्रमण) से रहित और रमणीय हो। स्थान चयन के बाद भूमि को साफ-सुथरा तथा समतल किया जाता है। तदुपरांत नगर का नक्शा तैयार किया जाता है।[602]

नगर योजना में सुरक्षात्मक उपाय महत्त्वपूर्ण होते थे। नगर के चारों ओर खाई और आहता का निर्माण किया जाता था। नगर की चारों ओर से किलाबंदी की जाती थी। नगर में मजबूत द्वार, चौकस अटारियाँ, बीच में खुले हुए तथा आरामदायक उद्यान, चौराहे, दोराहे, चौक, साफ-सुथरे राजमार्ग, बीच-बीच में दुकानों की कतारें, तालाब, बावड़ी, कूप, देवस्थान इत्यादि का निर्माण किया जाता था।[603]

सागल नगर[604] के वर्णन से पता चलता है कि नगर बहुमंजिला भवनों तथा दानशालाओं से शोभित; समृद्धता से परिपूर्ण; समस्त वर्णों से आवासित; बाजार से युक्त; विभिन्न प्रकार के धन-धान्य, खाद्य, भोज्य तथा पेय पदार्थों से पूर्ण; बहूमूल्य रत्न, कीमती वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य, पुष्प, फल इत्यादि की दुकानों से युक्त होता था।

---

[600] सतिपट्ठानवीथियं एवरूपा आपणा पसारिता होन्ति। सेय्यथीदं, पुप्फापणं गन्धापणं फलापणं अगदापणं ओसधापणं अमतापणं रतनापणं सब्बापणन्ति। *मि.प.*, 5/4/1, पृ. 235

[601] वही, 2/4/2, पृ. 51

[602] वही, 5/4/1, पृ. 234

[603] वही

[604] वही, गन्थकथावत्थु-2, पृ. 1

बांसुरी[605], तुरही[606], ढोल[607], झांझ[608], वीणा[609], नगाड़ा[610] इत्यादि वाद्य यंत्रों के उल्लेख से पता चलता है कि तत्कालीन भारत में संगीत कला का भी विकास हुआ होगा। चित्रकार[611] का उल्लेख चित्रकला की ओर इंगित करता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मिलिन्दपञ्ह में भिक्खु नागसेन की उपमाओं तथा उदाहरणों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पहलुओं का विवरण प्राप्त होता है। दार्शनिक तथा धार्मिक परिस्थितियों में परिवर्तन से उत्पन्न बौद्ध धर्म तथा दर्शन संबंधी विभिन्न शंकाओं का समाधान नागसेन ने स्थविर मत के अनुसार किया है, तथापि कुछ स्थलों पर महासांघिकों का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। तत्कालीन सामाजिक जीवन वर्ण-व्यवस्था के अनुकूल था। समाज में चण्डाल तथा पुक्कुस नामक दो नवीन वर्गों के उल्लेख से जाति व्यवस्था के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है। समाज में जिस प्रकार के रहन-सहन, भोजन तथा चिकित्सा का प्रचलन था, उसका वर्णन मिलिन्दपञ्ह प्रस्तुत करता है। राजा की राजनीतिक स्थिति, उसकी प्रशासनिक शक्तियों, कर व्यवस्था, न्याय व्यवस्था इत्यादि का समुचित विवेचन मिलिन्दपञ्ह में मिलता है। आर्थिक क्षेत्र में कृषि, शिल्प, व्यवसाय, व्यापार इत्यादि का समुचित विवरण मिलिन्दपञ्ह से होता है। सारतः कहा जा सकता है कि मिलिन्दपञ्ह में भारतीय संस्कृति के प्रत्येक पक्ष का लगभग उल्लेख मिलता है।

****

[605] मनुस्सा तरुणदारकानं पठमं ताव कीळाभण्डकानि देन्ति। सेय्यथिदं, वङ्ककं घटिकं चिङ्गुलकं पत्ताळ्हकं रथकं धनुकं, पच्छा ते सके सके कम्मे नियोजेन्ति। *मि.प.*, 4/5/9, पृ. 164

[606] वही, 2/1/4, पृ. 23

[607] वही, 4/1/1, पृ. 79

[608] वही, 2/3/8, पृ. 48

[609] वही, 2/3/5, पृ. 42

[610] वही, 5/1/9, पृ. 186

[611] वही, 5/4/1, पृ. 235

चतुर्थ अध्याय

मिलिन्दपञ्ह प्रतिपादित भारतीय संस्कृति की समीक्षा

मिलिन्दपञ्ह बौद्ध धर्म तथा दर्शन का ग्रंथ है। इस ग्रंथ में हिंद-यवन सम्राट मिलिन्द (मिनाण्डर) की बौद्ध धर्म तथा दर्शन संबंधी विभिन्न शंकाओं का समाधान नागसेन ने उपमात्मक उदाहरणों से किया है। मिलिन्द तथा नागसेन के संवादों से भारतीय संस्कृति के विविध दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा कलात्मक पहलुओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती है, जिसका विशद विश्लेषण लघु शोध-प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में मिलिन्दपञ्ह ग्रंथ में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति की समीक्षा तर्क तथा अनुप्रयोग के आधार पर निम्न बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट की जा रही है –

4.1. दार्शनिक समीक्षा

मिलिन्दपञ्ह में नागसेन द्वारा प्रतिपादित अनात्मवाद, पुनर्जन्म, कर्मवाद, नाम-रूप, प्रतीत्यसमुत्पाद, निर्वाण तथा काल संबंधी दार्शनिक सिद्धांतों ने परवर्ती बौद्ध दर्शन के लिए आधार निर्मित किया। मिलिन्दपञ्ह से पूर्व त्रिपिटक साहित्य में यद्यपि बौद्ध दर्शन के बीज खोजे जा सकते हैं, किन्तु उन्हें सुव्यवस्थित रूप नागसेन ने ही प्रदान किया। परवर्ती काल में आचार्य नागार्जुन, असंग, वसुबन्धु, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, रत्नकीर्ति प्रभृति बौद्ध दार्शनिकों द्वारा इन सिद्धान्तों को तर्क तथा प्रज्ञा की कसौटी पर रखकर बौद्ध दर्शन तथा तर्क शास्त्र का विकास किया गया।

नागसेन के दार्शनिक विचारों के प्रति डॉ. राधाकृष्णन ने अपनी शंका व्यक्त करते हुए कहा है कि मिलिन्द-प्रश्न में बौद्ध शिक्षाओं की नकारात्मक व्याख्या अधिक प्रतीत होती है। नागसेन बौद्धमत का निषेधात्मक हठवाद के रूप में प्रतिपादन करता है जो आत्मा, परमात्मा एवं मुक्तात्माओं के भविष्य जीवन आदि सभी सिद्धांतों को अस्वीकार कर देता है।[612] राधाकृष्णन द्वारा उठाई गई शंका को निराधार बताते हुए राहुल सांकृत्यायन ने कहा है कि नागसेन ने अपने प्रश्नोत्तरों से बुद्ध के दर्शन में कोई बात नहीं जोड़ी, किन्तु उन्होंने उसे कितना साफ किया यह उनके उद्धरणों से स्पष्ट है।[613] जैसे पहले अनेक बार मष्तिष्क पर धारण किए हुए

[612] *भा.द.*, पृ. 279

[613] *द.दि.*, पृ. 430

पुष्पों से गुँथी होने पर भी नये ढंग से गूँथी हुई माला कौतूहल पैदा करती है[614], वैसे ही मिलिन्दपञ्ह में नागसेन द्वारा की गई बौद्ध सिद्धांतो अनात्मवाद, यथा पुनर्जन्म, नाम-रूप, कर्मवाद इत्यादि की व्याख्या नवीन उपमाओं से युक्त होने पर विशिष्ट है।

मिलिन्दपञ्ह में आत्मा के अस्तित्व को नकारकर नागसेन द्वारा अनात्मवाद के सिद्धांत की स्थापना की गई है। नागसेन ने रथ की उपमा के द्वारा मिनाण्डर को समझाया कि ईषा, चाबुक, अश्व इत्यादि अवयवों से पृथक् रथ नामक कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं है, रथ केवल शब्द मात्र है। उसी प्रकार आत्मा अथवा जीव जैसा कोई नित्य तत्त्व नहीं है। जैसे अवयवों के आधार पर केवल व्यवहार मात्र के लिए रथ संज्ञा होती है वैसे ही पञ्चस्कन्ध अथवा नाम-रूप का संघात मात्र ही व्यक्ति विशेष होता है।

नागसेन से पूर्व भगवान् बुद्ध ने नित्य अथवा स्थायी आत्मा की मान्यता को नकार दिया। उन्होंने आत्मा के सिद्धांत को केवल मूर्खों का धर्म बताया।[615] परवर्ती बौद्ध दर्शन अनात्मवाद के सिद्धांत से प्रभावित दिखाई देता है। अनात्म शब्द में 'नञ्[616]' का अर्थ दो प्रकार से ग्रहण किया जा सकता है- प्रसज्य प्रतिषेध[617] तथा पर्युदास प्रतिषेध[618]। अनात्म शब्द के उत्तर पद में नञ् होने से इसका अर्थ सदृश ग्रहण करने पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि शाश्वत आत्मा का अस्तित्व नहीं है तो इसके सदृश कौनसा पदार्थ है? इस प्रश्न पर उत्तर प्राप्त होगा-'धर्म'। धर्म से अभिप्राय भूत और चित्त के उन सूक्ष्म तत्त्वों से है, जिनका पृथक्करण और नहीं हो सकता। इन्हीं धर्मों के आघात-प्रतिघात अर्थात् संघातमात्र से जगत् का आविर्भाव होता है।[619] बलदेव उपाध्याय ने धर्म के संदर्भ में निम्न विशेषताएँ बतलाई हैं –

- प्रत्येक धर्म पृथक् सत्ता रखता है।
- एक धर्म का दूसरे धर्म के साथ किसी प्रकार का अन्योन्याश्रय संबंध नहीं होता।
- धर्म क्षणिक होता है।

---

614 तैरेव कुसुमैः पूर्वमसकृत्कृतशेखराः। अपूर्वरचने दाम्नि दधत्येव कुतूहलम्॥ जयन्तभट्ट *न्यायमंजरी*, सिद्धेश्वर भट्ट, शशिप्रभा कुमार (अनु.), विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001, पृ. 10

615 अयं भिक्खवे, केवलो परिपुरो बाल धम्मो। *म.नि.,* 1/1/2

616 द्वौ नञौ तु समाख्यातौ, पर्युदास-प्रसज्यकौ। पर्युदासः सदृग्ग्राही, प्रसज्यस्तु निषेधकृत्॥ सदाशिव शास्त्री, *परमलघुमञ्जूषा अर्थदीपिका*, पृ. 63

617 अप्राधान्यं विधेर्यत्र, प्रतिषेधे प्रधानता। प्रसज्यप्रतिषेधोऽसौ क्रियया सह यत्र नञ्॥ *साहित्यदर्पणम्,* 7, पृ. 567

618 प्रधानत्वं विधेर्यत्र, प्रतिषेधेऽप्रधानता। पर्युदासः स विज्ञेयो, यत्रोत्तरपदेन नञ्॥ वही, पृ. 568

619 *बौ.द.मी.,* पृ. 159

- धर्म आपस में मिलकर नवीन वस्तु को उत्पन्न करते हैं। अकेला धर्म उत्पादन करने में असमर्थ होता है।
- इस जगत् के समस्त धर्म प्रतीत्यसमुत्पाद से सम्बद्धित हैं।
- यह जगत् सूक्ष्म धर्मों के संघात का ही परिणाम है।
- अविद्या तथा प्रज्ञा परस्पर विरोधी धर्म हैं। अविद्या से जगत् का प्रवाह गतिमान रहता है तथा प्रज्ञा के उदय से इसका विनाश हो जाता है।
- धर्मों को चार भागों दुःख, दुःख समुदय, दुःख निरोध तथा दुःख निरोधगामी मार्ग में बांटा जा सकता है।
- जगत् की प्रक्रिया का चरम अवसान निरोध है। असंस्कृत धर्मों का नाश ही निर्वाण है।[620]

प्रारंभिक बौद्ध दर्शन में धर्म का वर्गीकरण दो आधारों पर किया गया है- विषयीगत तथा विषयगत। विषयीगत विभाजन तीन प्रकार का है- पञ्चस्कन्ध, द्वादश आयतन[621] तथा अष्टादश धातु।[622] विषयगत धर्म दो प्रकार का होता है- संस्कृत धर्म तथा असंस्कृत धर्म। संस्कृत धर्म किसी कारण तथा सहायक कारण से जन्य होकर स्व स्थिति को प्राप्त करते हैं। संस्कृत धर्म क्षणिक, अस्थायी, अनित्य तथा गतिमान होते हैं। सर्वास्तिवादियों तथा योगाचारवादियों ने चार प्रकार के संस्कृत धर्म माने। ये हैं-

- रूपधर्म[623],
- चित्तधर्म[624],
- चैतसिक धर्म (चित्त से सम्बन्धित धर्म) तथा
- चित्त विप्रयुक्त धर्म (रूप तथा चित्त दोनों से पृथक् धर्म)।

असंस्कृत धर्म हेतुप्रत्यय से जन्य न होकर स्वतः सिद्ध हैं। इनकी स्थिति किसी कारण पर अवलंबित नहीं होती है। स्थविरों ने केवल निर्वाण को ही असंस्कृत धर्म माना है। मिलिन्दपञ्ह में भी नागसेन ने निर्वाण को

---

620 *बौ.द.मी.,* पृ. 159-60

621 द्वादशायतनानि। चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकायमनआयतनानि रूपगन्धशब्दरसस्पर्शधर्मायतनानि चेति॥ *ध.स.,* 24

622 अष्टादश धातवः॥ चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकायमनोरूपगन्धशब्दरसस्पर्शधर्मधातवः चक्षुर्विज्ञानश्रोत्रविज्ञानघ्राणविज्ञानजिह्वा-विज्ञानकायविज्ञानमनोविज्ञानघातवश्चेति॥ वही, 25

623 रूपधर्म एक समय में जिस स्थान को ग्रहण करता है, वही स्थान दूसरे के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। पाँच इन्द्रियाँ, पाँच इन्द्रियविषय तथा अविज्ञप्ति ये 11 रूप धर्म योगाचार वालों ने स्वीकार किए हैं।

624 वस्तुओं का ग्राहक कोई स्थायी पदार्थ नहीं होता। इन्द्रियों तथा विषयों के परस्पर घात-प्रतिघात से प्रत्येक क्षण में परिवर्तित होने से चित्त की विद्यमानता बनी रहती है। किसी वस्तु का आलोचनमात्र अथवा निर्विकल्पक ज्ञान चित्त है। यह छह प्रकार का होता है- आलयविज्ञान, मनोविज्ञान, चक्षुविज्ञान, श्रोत्रविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान।

असंस्कृत धर्म माना है। योगाचारवादियों ने निर्वाण के साथ ही आकाश[625], प्रतिसंख्यानिरोध[626], अप्रतिसंख्यानिरोध[627], अचल[628], संज्ञावेदनानिरोध[629] तथा तथता[630] को भी असंस्कृत धर्म स्वीकार किया है।

बौद्ध दर्शन आत्मा का निषेध करते हुए पुनर्जन्म को स्वीकार करता है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि आत्मा के अभाव में पुनर्जन्म किसका होता है? नाम-रूप के पुनर्जन्म की व्याख्या करते हुए नागसेन ने उसे कर्मवाद के साथ जोड़ा है। नागसेन ने बताया है कि संसार में जितनी भी स्थूल चीजें हैं सभी रूप हैं तथा जितने भी सूक्ष्म मानसिक धर्म हैं सभी नाम हैं।[631] यह नाम-रूप ही पुनर्जन्म ग्रहण करता है। सभी वस्तुए क्षणिक हैं। वे प्रत्येक क्षण में परिवर्तित हो रही हैं। ऐसे में एक नाम-रूप दूसरे को उत्पन्न कर स्वयं नष्ट हो जाता है तथा क्रम अनवरत चलता रहता है। दीपशिखा के निरंतर कम होने पर भी जैसे दीप का प्रवाह बना रहता है[632] वैसे ही वस्तु का प्रवाह बना रहता है। एक अवस्था उत्पन्न होती है तथा एक का नाश होता है। जैसे किसी मनुष्य के द्वारा उच्चारित किए गए वाक्य ज्यों के त्यों उसके मुख से निकलकर श्रोता के मुख में प्रवेश नहीं करते, अपितु वह भी उन्हें सीख जाता है। वैसे ही नाम-रूप एक शरीर से निकलकर दूसरे शरीर में ज्यों का त्यों संक्रमित नहीं होता।

व्यक्ति के अच्छे-बुरे कर्मों के प्रभावस्वरूप ही नवीन नाम-रूप जन्म लेता है। कर्म के प्रवाह के कारण एक नाम-रूप नष्ट होता है तथा दूसरा जन्म लेता है। संसार में कोई भी चीज बिना कारण के उद्भूत नहीं हो सकती। प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। बुद्ध ने इस कार्य-कारण के प्रवाह को ही प्रतीत्यसमुत्पाद[633] कहा है। संसार की समस्त वस्तुओं अथवा घटनाओं पर कार्य कारण का नियम लागू होता

---

[625] वसुबन्धु ने आकाश को अनावृत्ति कहा है। (तत्राकाशं अनावृत्तिः। *अभि.को.*, 1/5) अनावृत्ति से आशय है कि आकाश न तो दूसरों का आवरण करता है तथा न अन्य धर्मों के द्वारा आवृत होता है।

[626] प्रतिसंख्या का आशय है प्रज्ञा अथवा ज्ञान। प्रज्ञा के उदय होने पर सास्रवधर्म के विषय में राग का सर्वथा परित्याग करने पर प्रतिसंख्यानिरोध का उदय होता है।

[627] अप्रतिसंख्यानिरोध का फल अनुत्पाद ज्ञान है। भविष्य में रागादि क्लेशों की उत्पत्ति का सदैव के लिए नाश होता है।

[628] अचल का आशय है- सुख तथा दुःख की भावना की सर्वथा के लिए उपेक्षा।

[629] निरोध-समापत्ति की अवस्था में प्रवेश पर योगी संज्ञा तथा वेदना के मानस धर्मों से मुक्त हो जाता है।

[630] तथता का आशय है जिसमें किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो। इसे ही श्रेष्ठ धर्मों का हेतु अर्थात् धर्मधातु कहा गयाहै।

[631] ओळारिकं- एतं रूपं। ये तत्थ सुखुमा चित्तचेतसिका धम्मा- एतं नामं ति। *मि.प.*, 2.2.8, पृ. 38

[632] वही, 2/2/1, पृ. 31

[633] अस्मिन् सति इदं भवति, अस्योत्पादादयमुत्पद्यते इति इदं प्रत्ययार्थः प्रतीत्यसमुत्पादार्थः। चन्द्रकीर्ति, *माध्यमिक वृत्ति,* पृ. 9

है। मिलिन्दपञ्ह में कार्य-कारण सिद्धांत की व्याख्या द्वादशांगों के उल्लेख से प्राप्त होती है।[634] इसे भव चक्र कहा जाता है। यह निरन्तर गतिमान चक्रीय प्रक्रिया है। वसुबन्धु ने प्रतीत्य-समुत्पाद को त्रिकाण्डात्मक कहा है।[635] उन्होंने पुनर्जन्म के सिद्धांत का उपयोग करके द्वादश निदानों को तीन जन्मों से सम्बद्ध किया है। द्वादशनिदानों में से प्रथम दो (अविद्या तथा संस्कार) भूतकालीन जीवन से संबंधित होते हैं, उसके अनन्तर आठ निदानों (विज्ञान से लेकर उपादान तक) का संबंध वर्तमान जीवन से होता है। अन्तिम तीन (भव, जाति तथा जरा-मरण) का संबंध भविष्य के जीवन से होता है।

अनात्म को आत्म तथा दुःखमय वस्तु को सुखमय मानने के कारण मानव अविद्या ग्रस्त होता है। अविद्या के कारण संस्कार का जन्म होता है। पूर्वजन्मों के कर्मों की प्रवृत्ति के रूप में संस्कार को माना जाता है। संस्कार के कारण विज्ञान का जन्म होता है। जब नवजात शिशु माँ के गर्भ में रहता है तब विज्ञान (चेतना) के कारण ही उस शिशु का शरीर एवं मन विकसित होता है। विज्ञान के कारण नाम-रूप उत्पन्न होता है। जब विज्ञान माता के गर्भ में प्रति संधि ग्रहण करता है तभी से नाम रूप उत्पन्न होना शुरू हो जाता है। नाम-रुप के कारण षडायतन का जन्म होता है। षडायतन से आशय पाँच ज्ञानेन्द्रियों नेत्र, चक्षु, जिह्वा, श्रोत्र तथा त्वक् सहित मन से है। षडायतन के कारण स्पर्श की उत्पत्ति होती है। ये छह इन्द्रियाँ ही विषयों के साथ सम्पर्क ग्रहण करती हैं। स्पर्श अर्थात् बाह्य संसार के सम्पर्क से वेदना का जन्म होता है। बाह्य जगत् की वस्तुओं के स्पर्श से जो प्रथम प्रभाव मन पर पड़ता है, वह वेदना कहलाता है। वेदना से तृष्णा की उत्पत्ति होती है। तृष्णा अर्थात् काम, जीवन एवं वैभव की इच्छा के कारण उपादान का जन्म होता है। उपादान या जगत् की वस्तुओं के प्रति आसक्ति के कारण भव उत्पन्न होता है। भव अर्थात् आवागमन के कारण ही जन्म होता है। जाति अर्थात् जन्म ग्रहण करने के कारण ही जरा-मरण होता है। जरा-मरण ही दुःख है। जरा का आशय है वृद्धावस्था तथा मरण का आशय है मृत्यु। जरा-मरण के कारण ही शोक, रोना-पीटना, मनःसंताप तथा परेशानी होती हैं। इस प्रकार जरा-मरण के कारण समस्त दुःख व्याप्त हैं। जरा-मरण सकारण है। ये अविद्या के कारण उत्पन्न होते हैं। इस तरह यह कारण-कार्य का भव चक्र चलता रहता है।

जिसका जन्म होता है उसका विनाश भी होता है। सांसारिक जरामरणादि दुःखों से छुटकारा पाने के लिए जाति का निरोध करना होगा। जाति के निरोध के लिए भव का निरोध करना होगा। भव के निरोध के लिए उपादान का निरोध करना होगा। उपादान के निरोध के लिए तृष्णा का निरोध करना होगा। तृष्णा के निरोध के लिए वेदना का निरोध करना होगा। वेदना के निरोध के लिए स्पर्श का निरोध करना होगा। स्पर्श

---

[634] *मि.प.*, 2/3/1, पृ. 39

[635] स प्रतीत्यसमुत्पादो द्वादशाङ्गस्त्रिकाण्डकः। पूर्वापरान्तयोर्द्वे द्वे मध्येऽष्टौ परिपूरणा॥ *अभि.को.* 3/20

के निरोध के लिए षडायतन का निरोध करना होगा। षडायतन के निरोध के लिए नामरूप का निरोध करना होगा। नामरूप के निरोध के लिए विज्ञान का निरोध करना होगा। विज्ञान के निरोध के लिए संस्कार का निरोध करना होगा। संस्कार के निरोध के लिए अविद्या का निरोध करना होगा। मिलिन्दपञ्ह में सांसारिक दुःखों से निवृत्ति के लिए निर्वाण की प्राप्ति पर बल दिया गया है।

मिलिन्दपञ्ह में निर्वाण को असंस्कृत धर्म माना गया है। निर्वाण का जो वर्णन[636] नागसेन ने किया है, परवर्ती दार्शनिकों ने उसे परम तत्त्व शून्य के रूप में स्थापित किया। आचार्य नागार्जुन शून्यता का आशय स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि शून्यता सभी भावों का उपशमन है, जो शून्य का आशय सत् अथवा असत् समझते हैं, वे मन्दबुद्धि हैं। इन दोनों कोटियों से परे होने के कारण शून्य अद्वय अर्थात् दोनों में से कोई नहीं है।[637] नागार्जुन के शून्य के स्वरूप[638] को सर्वदर्शनसंग्रहकार ने सम्यकतया प्रस्तुत करते हुए कहा है कि शून्य न सत् है, न असत् है, न उभय है और न ही अनुभय है। वह इन चारों कोटियों से परे है।[639] शून्यतत्त्व का लक्षण बताते हुए नागार्जुन ने कहा है कि शून्य का कोई परवर्ती प्रत्यय नहीं है अर्थात् शून्य का उपदेश एक व्यक्ति द्वारा दूसरे को नहीं दिया जा सकता। यह अनुभूतिगम्य है। शून्य को शून्य के ही द्वारा समझा जा सकता है। अतःएव शून्य अपर प्रत्यय है। शून्य में किसी भी प्रकार का विकार न होने के कारण वह शान्त अर्थात् स्वभावरहित है। शून्य समस्त प्रपञ्चों द्वारा प्रपञ्चित नहीं होता। प्रपञ्च से आशय शब्द से है, क्योंकि यह अर्थ को प्रपञ्चित करता है। अतः शून्य के अर्थ का प्रतिपादन किसी भी शब्द के द्वारा नहीं किया जा सकता। चित्त व्यापार से रहित शून्य निर्विकल्पक तथा नाना अर्थों से रहित है।[640]

मिलिन्दपञ्ह में नागसेन के द्वारा कर्मवाद के सिद्धांत का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। ब्राह्मण धर्म में कर्म का सिद्धांत आत्मा पर आधारित है। किसी व्यक्ति की मृत्यु पर जब आत्मा शरीर छोड़ती है तो आत्मा कर्मों के संस्कारों से संस्कृत हो जाती है। ये संस्कार ही भावी जन्म की स्थिति का निर्णय करते हैं। इस प्रकार कर्म एक जन्म से दूसरे जन्म तक चलता रहता है।[641]

नागसेन का कर्मवाद का सिद्धांत इससे पृथक् है। उन्होंने भगवान् बुद्ध द्वारा बताए गए कर्मवाद को ही आधार बनाया है। नैतिक अनुशासन के लिए कर्म को आवश्यक माना है। कर्म का संबंध वर्तमान जीवन से है। यदि

---

636 *मि.प.*, 5/2/5, पृ. 193

637 अस्तित्वं ये तु पश्यन्ति नास्तित्वं चाल्पबुद्धयः। भावनां ते न पश्यन्ति द्रष्टव्योपशमं शिवम्॥ *म.शा.*, 8/5

638 न सन् नासन् न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्। चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका विदुः॥ वही, 1/7

639 तत्त्वं सदसदुभयानुभयात्मकचतुष्कोटिविनिर्मुक्तं शून्यमेव। *स.द.सं.*, पृ. 55

640 अपरप्रत्ययं शान्तं प्रपञ्चैरप्रपञ्चितम्। निर्विकल्पमनानार्थमेतत्तत्त्वस्य लक्षणम्॥ *म.शा.*, 18/9

641 *भ.बु.ध.*, पृ. 268

पूर्वजन्म के कर्म के आधार पर यदि वर्तमान जन्म की स्थिति का निर्धारण कर लिया जाए तो मानवीय प्रयास के लिए कोई गुंजाइश नहीं रह जाएगी।[642] यदि नागसेन प्रतिपादित कर्मवाद सिद्धांत की जाँच की जाए तो ज्ञात होता है कि कर्म के फलस्वरूप जन्म का निर्धारण होता है, किन्तु नवीन जन्म में कर्म भी नवीन होता है। अतः कर्म का प्रवाह एक नाम-रूप से दूसरे नाम-रूप में परिवर्तित होने तक ही रहता है। पारिवारिक पृष्ठभूमि ही वर्तमान जीवन के कर्मों के लिए उत्तरदायी होती है।[643]

मिलिन्दपञ्ह में काल के अस्तित्व के संबंध में प्रश्न उठाया गया है कि क्या काल नाम की कोई वस्तु होती है? नागसेन ने उसका उत्तर हाँ तथा नहीं दोनों रूपों में देते हुए कहा है कि गत संस्कार जो व्यतीत हो चुके हैं, उनके लिए काल नहीं है, किन्तु जो संस्कार कहीं प्रतिसन्धि कर रहे हैं उनके लिए काल है। परवर्ती दार्शनिक नागार्जुन ने भी अपने ग्रंथ मध्यमकशास्त्र के उन्नीसवें अध्याय में काल के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगाए हैं। नागार्जुन का मानना है कि जब वर्तमान तथा भविष्य दोनों अतीत काल के ऊपर निर्भर करते हैं तो दोनों अतीत काल में ही अन्तर्निहीत हो जाएंगे। अतीत के बिना वर्तमान तथा भविष्य की सिद्धि नहीं होगी। तब वर्तमान तथा अतीत कहना अनुचित है।[644] नागार्जुन का मानना है कि काल है तथा नहीं है- ये स्वीकार नहीं किया जा सकता। जिसका ग्रहण हो सकता है और जो गृहीत नहीं है, उस काल को कैसे जाना जा सकता है। भाव से अलग यदि काल की सत्ता स्वीकार कर भी ली जाए तो भाव के अभाव में काल अस्तित्वहीन है।[645]

4.2. धार्मिक समीक्षा

बुद्ध ने सांसारिक दुःखों के परित्राण हेतु चार आर्यसत्यों से युक्त मध्यममार्गीय धम्म विकसित कर, प्राणी मात्र को समता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व का संदेश दिया। बुद्ध की इस विरासत को नागसेन द्वारा मिलिन्दपञ्ह में समुचित स्थान प्रदान किया गया है। उन्होंने मिलिन्दपञ्ह में चार आर्यसत्यों का विश्लेषण करते हुए बताया है कि बुद्ध दुःखों से मुक्ति का मार्ग निर्वाण को बतलाते हैं। निर्वाण प्राप्त व्यक्ति की करुणा जीवों को देखकर नहीं, अपितु उनके दुःखों को देखकर उत्पन्न होती है, क्योंकि उसकी आत्मदृष्टि उन्मूलित होती है। सर्वदुःख का प्रत्यक्ष होने से उसका स्वभाव करुणा का बन जाता है। मिलिन्दपञ्ह में कहा गया है कि नैतिक व्यवस्था का

---

642 *भ.बु.ध.,* पृ. 269

643 वही, पृ. 269

644 प्रत्युत्पन्नोऽनागतश्च यद्यतीतमपेक्ष्य हि। प्रत्युत्पन्नोऽनागतश्च कालेऽतीते भविष्यतः॥
प्रत्युत्पन्नोऽनागतश्च न स्तस्तत्र पुनर्यदि। प्रत्युत्पन्नोऽनागतश्च स्यातां कथमपेक्ष्य तम्॥
अनपेक्ष्य पुनः सिद्धिर्नातीतं विद्यते तयोः। प्रत्युत्पन्नोऽनागतश्च तस्मात्कालो न विद्यते॥ *म.शा.,* 19/1-3

645 नास्थितो गृह्यते कालः स्थितः कालो न विद्यते। यो गृह्येतागृहीतश्च कालः प्रज्ञप्यते कथम्॥
भावं प्रतीत्य कालश्चेत्कालो भावादृते कुतः। न च कश्चन भावोऽस्ति कुतः कालो भविष्यति॥ वही, 19/5-6

संचालन कर्म से होता है। धम्मनगर के आदर्श के माध्यम से नागसेन ने नैतिकता तथा सदाचार की प्रतिस्थापना की है।

मिलिन्दपञ्ह में भिक्खुओं के निवास, रहन-सहन, विनय के नियम, प्रव्रज्या, धुतांग के बारे में विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। बुद्ध ने भिक्खुओं को उपदेश देते हुए कहा था, "भिक्खुओ! बहुजन के हित के लिए, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिए, देवताओं एवं मनुष्यों के प्रयोजन के लिए, उनके हित के लिए, सुख के लिए विचरण करो। भिक्खुओं! अकेले ही उपदेश करो। आरम्भ में, मध्य में और अन्त में, सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके सर्वांश में पूर्ण कर ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।[646]" मिलिन्दपञ्ह में भिक्खु नागसेन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन समय में भी धम्म के उपदेश के साथ ही धम्म प्रचार का कार्य भी गतिमान था। हिन्द-यवन राजा मिनाण्डर द्वारा बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण करने के आधार पर इसकी पुष्टि होती है।

सप्तविध चित्त के प्रसंग के माध्यम से नागसेन ने बौद्ध धर्म के निर्वाण प्राप्ति के त्रिविध यानों का वर्णन किया है। ये त्रिविध यान हैं- श्रावकयान, प्रत्येक बुद्धयान तथा बोधिसत्त्वयान। मिलिन्दपञ्ह में गृहस्थ तथा भिक्खु दोनों को ही अर्हत् का अधिकारी बताया गया है। मिलिन्दपञ्ह में नागसेन ने भिक्खु बनने की दो विधि बतलाई हैं। भिक्खु बनने के लिए किसी भी श्रावक को संघ में प्रव्रजित होना पड़ता था तथा कई वर्षों तक किसी भिक्खु की देख-रेख में रहना होता था। नागसेन भी भिक्खु बनने से पूर्व रोहण तथा अस्सगुत के सानिध्य में रहे थे, जिनके सान्निध्य में उन्होंने त्रिपिटकों का अध्ययन किया। संघ की स्वीकृति से उन्हें भिक्खु बनाया गया। भिक्खु का सामाजिक दायित्व होता है। यदि कोई भिक्खु अपनी सामाजिक उपयोगिता से बचकर केवल अपना ही कल्याण करता है तो वह सामान्य संन्यासी जैसा हो जाता है जो व्यक्तिगत मुक्ति तक सीमित रहता है। मिलिन्दपञ्ह में भिक्खुओं द्वारा धम्मप्रचार, चिकित्सीय प्रचार तथा अंधविश्वासों के परिहार संबंधी विचारों के आधार पर पर उनकी सामाजिक भूमिका सिद्ध होती है।

मिलिन्दपञ्ह के अनेक सन्दर्भों से पता चलता है कि परम्परागत स्थविरवादी बौद्ध धर्म के सिद्धांतों में परिवर्तन हो रहा था। साधारण मानवों से बुद्ध को उत्कृष्ट दिखाने के लिए मिलिन्दपञ्ह में बुद्ध को बत्तीस

---

[646] "मुत्ताहं, भिक्खवे, सब्बपासेहि, ये दिब्बा ये च मानुसा। तुम्हेपि, भिक्खवे , मुत्ता सब्बपासेहि, ये दिब्बा ये च मानुसा। चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। मा एकेन द्वे अगमित्थ। देसेथ भिक्खवे, धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका , अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति, भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो। अहम्पि, भिक्खवे, येन उरुवेला सेनानिगमो तेनुपसङ्कमिस्सामि धम्मदेसनाया"ति। *वि.पि.,* 2/1/8

लक्षणों तथा अस्सी अनुव्यञ्जनों से युक्त बतलाया गया है।[647] दीघनिकाय में भी बुद्ध को साधारण मानवों से अत्यंत ज्ञान सम्पन्न, सम्यक् सम्बुद्ध, विद्या तथा आचरण से युक्त, लोकज्ञाता एवं धर्मोपदेशक माना गया है।[648]

मिलिन्द द्वारा एक प्रश्न किया गया कि क्या बुद्ध को दिखाया जा सकता है? प्रश्न के समाधान में नागसेन द्वारा धर्मकाय शब्द का प्रयोग करते हुए कहा गया है कि बुद्ध को उनके धर्मकाय से दिखाया जा सकता है।[649] महापरिनिब्बान सुत्त से बुद्ध के बाद धर्म के शास्ता होने के प्रमाण मिलते हैं।[650]" धर्मकाय शब्द का अभिप्रेरित अर्थ स्थविरों द्वारा बुद्ध उपदेशित धर्म की शरण-गमन को ही स्वीकार किया गया है। परवर्ती काल में जब महायान का विकास हुआ था तब धर्मकाय का सिद्धांत अधिक प्रचलित हो गया था। महायान बौद्ध धर्म में त्रिविध काय को मान्यता प्राप्त हुई। महायान में धर्म से आशय बुद्ध के स्वभाव अथवा प्रज्ञा-पारमिता से लिया गया। आचार्य नरेन्द्रदेव ने इसे परमार्थ सत्य माना है। इस ज्ञान संसार के लाभ से निर्वाण का अधिगम होता है। इसीलिए धर्मकाय निर्वाण स्थित या निर्वाण-सदृश समाधि की अवस्था में स्थित बुद्ध है।[651] संभोगकाय बुद्ध के निर्वाण प्राप्ति से पूर्व की वह अवस्था है जिसमें बुद्ध लोक-कल्याण के लिए पुण्य-संभार के फलस्वरूप अपना दिव्य रूप सुखावती[652] या तुषित-लोक[653] में बोधिसत्त्वों को दिखलाते हैं। निर्माणकाय में बुद्ध मनुष्य का रूप ग्रहण करते हैं तथा समय-समय पर धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं। त्रिविध काय में धर्मकाय शब्द परमार्थ सत्य का बोधक है।

मिलिन्दपञ्ह के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन भारत में धार्मिक तथा दार्शनिक समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न सम्प्रदाय विद्यमान थे, जिनमें छह प्रमुख सम्प्रदायों का उल्लेख प्राप्त होता है। ये हैं-

---

[647] *मि.प.,* 3/5/3, पृ. 56

[648] 'भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा'ति। *दी.नि.,* 1/2

[649] भगवा अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बुतो अत्थङ्गतो, न सक्का भगवा निदस्सेतुं 'इध वा इध वा' ति, धम्मकायेन पन खो, महाराज, सक्का भगवा निदस्सेतुं। धम्मो हि, महाराज, भगवता देसितो"ति। *मि.प.,* 3/5/1, पृ. 59

[650] यो वो, आनन्द, मया धम्मो च विनयो च देसितो पञ्ञत्तो, सो वो ममच्चयेन सत्था। *दी.नि.,* 2/3 (*म.प.नि.सु.*, 4/8)

[651] *बौ.ध.द., पृ. 121*

[652] सुखावती लोक अमिताभ का राज्य क्षेत्र है। जो व्यक्ति पुण्यसंभार को प्राप्त करके मृत्यु के समय बुद्ध अमिताभ का चिन्तन करता है वह इस बुद्धलोक को प्राप्त होता है। इस बुद्धलोक में नरक प्रेत, असुर और तिर्यञ्चलोक का अभाव है। यहाँ सदैव दिन रहता है, रात्रि का अभाव होता है। सुखावती में गर्भज जन्म नहीं होता। यहाँ सभी सत्त्व औपपादुक हैं और कमलदल से उद्भूत होते हैं। यहाँ के सत्त्व पाप से सर्वथा विरत हैं और प्रज्ञा से संयुक्त है।वही, पृ. 151

[653] इस देवभवन में बोधिसत्त्व निवास करते हैं। यहाँ से च्युत हो बोधिसत्त्व संसार में उत्पन्न होते हैं और बुद्धत्व की प्राप्ति कर परिनिर्वाण को पा लेते हैं। *मि.प्र.,* पृ. 409

- पूरण कस्सप का अक्रियावाद
- मक्खलि गोसाल का नियतिवाद
- महावीर स्वामी का जैन
- सञ्जय वेलट्ठिपुत्त का अनिश्चयवाद
- अजित केसकम्बलिन् का भौतिकवाद
- पकुध कच्चायन का अकृततावाद सम्प्रदाय।[654]

मक्खलि गोसाल द्वारा नागसेन की शंका के समाधान में प्रयुक्त दैववादी विचारों का ज्ञान होता है। वह पाप और पुण्य कर्मों तथा उनके फलों को स्वीकार नहीं करता है। वह कहता है कि व्यक्ति जैसा इस जन्म में है मृत्यु के पश्चात् भी वैसा ही जन्म ग्रहण करता है।[655] भगवान् बुद्ध ने भी ऐसे संप्रदाय के अधिष्ठाताओं के लिए अमराविक्खेपिका[656] शब्द का प्रयोग किया है, जिसका आशय है अस्पष्ट अथवा अनिश्चित उत्तर देने वाले व्यक्ति।[657] वासुदेव, शैव, कालि देवता, श्री देवता इत्यादि ब्राह्मण संप्रदायों का केवल नामोल्लेख मिलता है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि ब्राह्मण धर्म में धीरे-धीरे वैदिक धर्म से इतर संप्रदायों का विकास हो रहा था, जो परंपरागत इन्द्र, वरुण आदि की अपेक्षा में नवीन देवों को स्वीकार कर रहे थे।

4.3. सामाजिक समीक्षा

मिलिन्दपञ्ह में वर्णित सामाजिक स्थिति को देखते हुए कहा जा सकता है कि तत्कालीन भारत में सामाजिक स्तरीकरण परिवर्तित हो रहा था। मिलिन्दपञ्हकालीन भारतीय समाज का आधार वर्ण-व्यवस्था थी, जिसमें ब्राह्मण तथा क्षत्रिय को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। मिलिन्दपञ्ह में नागसेन द्वारा प्रयुक्त दो उदाहरणों[658] से समाज में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय की महत्त्वपूर्ण भूमिका ज्ञात होती है। मिलिन्दपञ्ह से पूर्ववर्ती ग्रंथ मनुस्मृति के विभिन्न संदर्भों से पता चलता है कि समाज में ब्राह्मणों को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे।[659] मनु ने राजा का कर्तव्य निर्धारित किया कि वह वैश्य को आदेश दे कि वह व्यापार, ब्याज पर रूपये का लेन-देन, कृषि तथा

---

[654] *मि.प.,* 1/1/1, पृ. 3

[655] वही, 1/1/1, पृ. 3-4

[656] *दी.नि.,* 1/1

[657] अमराय दिट्ठिया वाचाय वा विक्खेपो अमराविक्खेपो, सो अतेसमत्थीति अमराविक्खेपिका। *पा.भा.को.,* पृ. 43

[658] प्रथम उदाहरण है- मिलिन्द द्वारा बुद्ध की उपमा ब्राह्मण तथा राजा से देने पर नागसेन द्वारा ब्राह्मण तथा राजा शब्दों की व्याख्या करना। (वही, 4/5/8, पृ. 161) दूसरा उदाहरण है- बोधिसत्त्व द्वारा जन्म-ग्रहण करने से पूर्व ब्राह्मण अथवा राजा के ही घर का चयन करना।(वही, 4/5/8, पृ. 163)

[659] *म.स्मृ.,* 1/93-100, 10/3, 8/379-380, 11/127-130

पशुपालन करे। वह शूद्र को शेष वर्णों की सेवा का आदेश दे।[660] मनु ने शूद्रों पर कठोरतम बंधन तथा दण्ड राजा के माध्यम से लागू करवाए।[661] मनुस्मृतिकालीन समाज संरचना का प्रभाव मिलिन्दपञ्हकालीन समाज पर दिखाई देता है।

मनुस्मृति में कहा गया है कि यदि आपातकाल में वैश्य के लिए अपने व्यवसाय से भरण-पोषण करना कठिन हो रहा है तो उसे शूद्र वृत्ति का ग्रहण कर लेना चाहिए।[662] मिलिन्दपञ्ह के एक संदर्भ से ज्ञात होता है कि वैश्य तथा शूद्र के कार्यों में कोई अंतर नहीं होना चाहिए।[663] वैश्य तथा शूद्र दोनों को कृषि, पशुपालन तथा व्यापार करने के अधिकार बताए गए हैं। इससे दूसरा संकेत यह भी मिलता है कि शूद्रों की स्थिति में थोड़ा सुधार हुआ होगा। सामाजिक तौर पर उन्हें वैश्य का कार्य करने के अधिकार प्रदान कर दिए गए होंगे।

चारों वर्णों से पृथक् चण्डाल तथा पुक्कुस जातियाँ भी विद्यमान थीं, जिनके बारे में ए.एल.बाशम[664] ने कहा है कि इन्हें आर्यों ने अपनी सामाजिक व्यवस्था अर्थात् वर्णव्यवस्था से पूर्णतः पृथक् कर दिया था। इनके साथ अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाता था तथा उन्हें ग्राम या नगर से बाहर रहने को विवश किया जाता था।

किसी भी समाज के विकास का मापदण्ड स्त्रियों की स्थिति पर निर्भर है। समृद्धशाली और आदर्श समाज वही माना जा सकता है, जिसमें स्त्री और पुरुष को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करने का समान अवसर प्राप्त हो।[665] मिलिन्दपञ्ह से स्त्रियों के सामाजिक स्तर में गिरावट का पता चलता है। वेस्सन्तर राजा द्वारा अपनी पत्नी को दान देने के प्रतीकात्मक उदाहरण के आधार पर कहा जा सकता है कि स्त्री पुरुष की संपति समझी जाती होगी। अवयस्क लड़की का वयस्क पुरुष के साथ विवाह के प्रसंग से ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियों का बाल्यावस्था में विवाह कर दिया जाता होगा जिससे उनका जीवन प्रभावित होता होगा। स्त्रियों के दुश्चरित्र होने पर पति द्वारा उन्हें शारीरिक तथा मानसिक यातना देने के उल्लेख मिलिन्दपञ्ह में मिलते हैं। इनसे स्त्रियों के सामाजिक अपकर्ष का पता चलता है। अर्हत्-पद की प्राप्ति करने वाली कुछ बौद्ध उपासिकाओं के भी उदाहरण मिलिन्दपञ्ह में प्राप्त होते हैं, किन्तु ये सभी उपासिकाएँ गौतम बुद्ध के समय की थी।

---

[660] वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च। पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम्॥*म.स्मृ.*, 8/410

[661] *म.स्मृ.*, 8/270-282, 10/121-130 अधिक जानकारी के लिए अम्बेडकर के लेख *'क्रांति तथा प्रतिक्रांति'*, *'हिंदुत्व का दर्शन'* , *शूद्र कौन थे?* तथा रामशरण शर्मा की पुस्तक *'शूद्रों का प्राचीन इतिहास'* दृष्टव्य हैं।

[662] वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्यापि वर्तयेत्। *म.स्मृ.* 10/98

[663] *मि.प.*, 4/3/7, पृ. 132

[664] *अ.भा.*, पृ. 101-102

[665] *सं.बौ.सा.इ.सं.*, पृ. 186

मिलिन्दपञ्ह से शिक्षा व्यवस्था के प्रमुख विषयों के बारे में पता चलता है। मिलिन्दपञ्हकाल में सभी वर्णों को शिक्षा के समान अवसर नहीं थे। ब्राह्मण चारों वेद, आयुर्वेद, व्याकरण, भूकम्प, सामुद्रिक आदि विभिन्न विषयों[666] का अध्ययन करता था। क्षत्रिय युद्ध तथा सैन्य कुशलता से संबंधित विषयों का अध्ययन करता था। वह वेद भी पढ़ सकता था। अध्यापन कार्य केवल ब्राह्मणों के हाथों में था। मिलिन्दपञ्ह से ऐसे ब्राह्मणों का भी उल्लेख मिलता है जो प्रचुर मात्रा में धन लेकर वेद पढ़ाते थे। शूद्र तथा शेष वर्ग की शिक्षा-व्यवस्था का उल्लेख मिलिन्दपञ्ह में नहीं मिलता है।

मिलिन्दपञ्ह के एक सन्दर्भ से ज्ञात होता है कि समाज में भोजन संबंधी भेदभाव विद्यमान था। राजा द्वारा उत्तम किस्म के शालि धान का तथा दास एवं अधम वर्ण के द्वारा निम्न किस्म के कुमुदभण्डिका धान का उपभोग किया जाता था। सामान्यतः समाज में मांसाहार तथा शाकाहार दोनों प्रकार के भोजन का प्रचलन था।

मिलिन्दपञ्ह में आए चिकित्सा तथा रोग-निदान की पद्धतियों संबंधी संदर्भों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चिकित्सा के क्षेत्र में तत्कालीन समय में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया। बौद्ध भिक्खुओं द्वारा प्रचलित अन्धविश्वासों पर चोट करने तथा प्रतीत्य-समुत्पाद सिद्धान्त से लोगों में सोचने की तार्किक क्षमता का विकास हुआ होगा। भाग्यवाद के स्थान पर दुःख निवारण ने प्रथम स्थान पाया, जिसके फलस्वरूप शल्य चिकित्सा तथा वमन-विरेचन की चिकित्सा पद्धतियों की परंपरा का विकास संभव हुआ। मिलिन्दपञ्हकालीन भारत में चिकित्सा संबंधी ऐसा वातावरण बन चुका था, जिसका प्रभाव परवर्ती सुश्रुत की चिकित्सा पद्धति में देखा जा सकता है।

4.4. राजनीतिक एवं आर्थिक समीक्षा

मिलिन्दपञ्ह के राज्य तथा प्रशासन संबंधी अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि तत्कालीन भारतवर्ष में राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था का प्रचलन था, जो वंश-परंपरा पर आधारित थी। राज्य-सीमा के अंतर्गत आंतरिक उपद्रवों का शमन तथा बाह्य आक्रमणों से राज्य की रक्षा करना ही राजा के आवश्यक कर्त्तव्य थे। मिलिन्दपञ्ह से पूर्ववर्ती 'अर्थशास्त्र' में कहा गया है कि अमात्यवर्ग एवं गुरुजन राजा की मर्यादा को निर्धारित करें तथा राजा को अनर्थकारी कार्यों को करने से विरमित करें।[667] मिलिन्दपञ्ह में भी राजा के ऊपर इसी प्रकार के नियंत्रण का एक संकेत मिलता है। मिलिन्दपञ्ह में कहा गया है कि परिणायकरत्न राजा

---

[666] *मि.प.,* 4/3/7, पृ. 132

[667] मर्यादां स्थापयेदाचार्यानमात्यान् वा। य एनमपायस्थानेभ्यो वारयेयुः। *अ.शा.,* 1/3/6

को हित तथा अहित के विषय में समझाए, जिससे राजा हितकारी को ग्रहण कर, अहितकारी का त्याग करे।[668]

राज्य का संचालन करने के लिए जनता से विभिन्न प्रकार के कर लिए जाते थे, जिनमें भूमि कर प्रमुख था, जिसे बलि कहा जाता था। बंदरगाहों तथा खानों पर राज्य का अधिकार था, जिनसे होने वाली कमाई पर राज्य का ही अधिकार था। राजा जनहित के कार्यों में राजस्व से प्राप्त धन का उपयोग करता था। मिलिन्दपञ्ह से पूर्व कर का संग्रह करने वाला अधिकारी समाहर्त्ता[669] कहलाता था, जो अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की सहायता से कर वसूली करता था। मिलिन्दपञ्ह में कर वसूल करने वाले किसी भी अधिकारी पद का नामोल्लेख नहीं मिलता, किन्तु राजा द्वारा नियुक्त चार सदस्यीय एक समिति का उल्लेख मिलता है जो राजस्व के संदर्भ में जाँच करती थी।[670] कौटिल्य ने राज्य की प्रजा में कुछ विशिष्ट लोगों को करमुक्त किया था, जिनमें ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रिय प्रमुख थे। मिलिन्दपञ्हकालीन राजस्व-व्यवस्था में भी कुछ विशिष्ट अधिकारियों को कर मुक्त रखा गया था।[671]

मिलिन्दपञ्ह से पूर्ववर्ती काल में सुरक्षा की दृष्टि से दुर्ग तथा नगर निर्माण पर बल दिया गया था। मिलिन्दपञ्ह में भी बड़े-बड़े नगरों के निर्माण का उल्लेख किया गया है। ये नगर आक्रमणों से सुरक्षा की दृष्टि से बनाए जाते थे। इन नगरों में व्यापार तथा वाणिज्य को प्रोत्साहन देने हेतु बाजार-व्यवस्था होती थी।

मिलिन्दपञ्ह में चारों प्रकार की सेना अश्व, हस्ति, रथ तथा पदाति के बारे में उल्लेख प्राप्त होते हैं, किन्तु इनके संगठन के बारे में कोई संदर्भ प्राप्त नहीं होता है। मिलिन्दपञ्ह में सैन्य व्यवस्था के अध्यक्ष सेनापति का उल्लेख मात्र मिलता है। मिलिन्दपञ्ह से पूर्व चारों प्रकार की सेनाओं के प्रमुखों अश्वाध्यक्ष[672], हस्त्यध्यक्ष[673], रथाध्यक्ष[674], पत्त्यध्यक्ष[675] का ज्ञान होता है। इन चारों के सम्पूर्ण कार्य-व्यापार को भली-भांति जाँचने, सैन्य-अभ्यास कराने, युद्ध में सैन्य संचालन करने का कार्य सेनापति के अधीन होता था। मिलिन्दपञ्ह में इन

---

668 *मि.प., 2/1/13,* पृ. 19

669 *अ.शा.,* 2/53/35

670 *मि.प.,* 4/2/3, पृ. 111

671 वही

672 *अ.शा.,* 2/46/30

673 वही, 2/47/31

674 वही, 2/49/33

675 वही, 2/50/33

चारों सेनाध्यक्षों के नाम नहीं मिलते किन्तु सैन्य अभ्यास तथा सेनापति द्वारा युद्ध में सैन्य संचालन के बारे में जरूर पता चलता है।

मिलिन्दपञ्हकालीन शासन व्यवस्था में न्याय व्यवस्था के प्रधान को अक्खदस्स कहा जाता था। उसका प्रमुख कार्य न्याय व्यवस्था का सुव्यवस्थित ढंग से संचालन करना था। न्याय व्यवस्था के लिए किसी भी प्रकार की विधिसंहिता का उल्लेख मिलिन्दपञ्ह में प्राप्त नहीं होता। मिलिन्दपञ्ह में खोपड़ी हटाकर सिर पर तपे हुए लोहे का गोला रखना, सिर का चमड़ा हटा करके उसे शंख के समान बना देना, कानों तक मुहँ को फाड़ देना, पूरे शरीर में तैल सिक्त कपड़ा लपेट कर जला देना, शरीर में घाव करके नमक छिड़कना, दोनों कानों से कील पार कर उसे जमीन में गाड़ देना तथा पैर पकड़ कर उसी के चारों ओर घुमाना, गर्म तैल का छिड़का जाना, कुत्तों से नुचवाना, फाँसी पर लटकाना, तलवार से सिर काटना इत्यादि कठोरतम दण्डों का उल्लेख प्राप्त होता है। इनके आधार पर कहा जा सकता है कि न्याय व्यवस्था के कुशल संचालन हेतु प्रजा में राज्य का भय पैदा करने के लिए दण्डों का प्रयोग किया जाता होगा।

मिलिन्दपञ्ह में शिल्पियों की लम्बी सूची प्राप्त होती है।[676] इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि तत्कालीन समय में धातुकर्म, वस्त्र-निर्माण, अस्त्र-शस्त्र तथा विलासिता की वस्तुओं के निर्माण में अच्छी प्रगति हुई होगी। इन शिल्पों के संचालन तथा संरक्षण में राज्य की भूमिका के बारे में कुछ कहना असंभव है, क्योंकि ग्रंथ से ऐसा कोई संकेत प्राप्त नहीं होता।

मिलिन्दपञ्ह से कृषि की समृद्धता के बारे में जानकारी प्राप्त होती है, जिससे ग्रामीण परिवेश की उन्नतावस्था के संकेत मिलते हैं। मिलिन्दपञ्ह से तत्कालीन नगरीय जीवन के बारे में भी स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। धम्मनगर तथा सागल नगर के विवरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि तत्कालीन समय में भारत का व्यापार विश्व के विभिन्न देशों जैसे चीन, अलसन्द तथा सुवर्ण-भूमि इत्यादि के साथ था। इन व्यापारों की सुरक्षा के लिए राजा द्वारा व्यापारिक मार्गों का सुरक्षात्मक प्रबंधन किया जाता था। स्थल तथा जल दोनों मार्गों से व्यापार किया जाता था। व्यापारिक गतिविधियों के कुशल संचालन के लिए बाजार व्यवस्था के उल्लेख ग्रंथ में प्राप्त होते है।

मिलिन्दपञ्ह कालीन आर्थिक समृद्धता के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि तत्कालीन भारतवर्ष में विभिन्न कलाओं का विकास हुआ होगा जिनमें स्थापत्य कला प्रमुख थी। सागल नगर की बसावट तथा धम्मनगर के आधार पर कहा जा सकता है कि नगरों का निर्माण सुरक्षात्मक उपायों को ध्यान

---

[676] *मि.प.*, 5/4/1, पृ. 234-35

में रखते हुए कुशल वास्तुकार के द्वारा योजनाबद्ध ढंग से किया जाता था। नगर में मजबूत द्वार, चौकस अटारियाँ, उद्यान, चौराहे, दोराहे, दुकानों की कतारें इत्यादि होते थे। वीणा, बांसुरी, तुरही, झांझ, नगाड़ा इत्यादि के उल्लेख जनता में संगीत के प्रचलन की ओर संकेत करते हैं।

अन्त में कहा जा सकता है मिलिन्दपञ्ह में भारत की तात्कालिक परिस्थितियों का चित्रण सम्यकतया किया गया है, जिससे भारतीय संस्कृति के स्वरूप को समझा जा सकता है।

****

उपसंहार

प्रकृत लघु शोध प्रबंध चार अध्यायों में विभक्त है। इसका प्रथम अध्याय संस्कृति विषयक अवधारणा को स्पष्ट करते हुए भारतीय संस्कृति के स्वरूप तथा प्रवाह का विवेचन करता है। द्वितीय अध्याय मिलिन्दपञ्ह ग्रंथ के वैशिष्ट्य को उद्घाटित करते हुए भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि ग्रंथ के रूप में इसकी स्थापना करता है। तृतीय अध्याय मिलिन्दपञ्ह में उल्लिखित भारतीय संस्कृति के स्वरूप का दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक बिन्दुओं के आधार पर विश्लेषण तथा विवेचन करता है। चतुर्थ अध्याय मिलिन्दपञ्ह प्रतिपादित भारतीय संस्कृति का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध का उपसंहार अधोलिखित बिन्दुओं में समेकित किया जा सकता है-

- संस्कृति का संबंध मानव मात्र से है। मानव की पाशविक प्रवृत्तियों का परिष्कार कर मानवता की प्रतिष्ठा करना ही संस्कृति है। संस्कृति मानव को कल्याणाभिमुख करती है। संस्कृति का मूर्त रूप सभ्यता है। भारतीय संस्कृति प्राचीनतम संस्कृति है। सहिष्णुता, समन्वयवादिता, आध्यात्मिकता, सर्वांगीणता, अविच्छिन्नता, त्याग-तपोमयता एवं विश्वशान्ति की भावना इत्यादि भारतीय संस्कृति के स्वरूप को प्रदर्शित करने वाली प्रमुख विशेषताएं हैं। बाह्य आक्रमण तथा विदेशी शासन व्यवस्था के दीर्घकालिक प्रभाव के पश्चात् भी भारतीय संस्कृति के प्रवाह की निरन्तरता बनी रही है।
- भारतीय संस्कृति के बौद्ध प्रवाह का ज्ञान पालि तथा संस्कृत में लिखे गए साहित्य से होता है। प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध में भारतीय संस्कृति का समीक्षात्मक अध्ययन मिलिन्दपञ्ह ग्रंथ के आधार पर किया गया है। मिलिन्दपञ्ह त्रिपिटकेतर पालि साहित्य का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसको यदि संपूर्ण त्रिपिटक साहित्य का सार कहा जाए, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी, क्योंकि इसमें सुत्तपिटक से उद्धृत भगवान् बुद्ध के उपदेश, भिक्खुओं के विनय के नियम तथा अभिधर्म के सिद्धांतों का समाहार किया गया है।
- मिलिन्दपञ्ह भिक्खु नागसेन तथा हिन्द-यवन राजा मिनाण्डर के मध्य हुए बौद्ध धर्म तथा दर्शन संबंधी संवाद का प्रश्नोत्तर शैली में वर्णन प्रस्तुत करता है। साथ ही राजा मिनाण्डर की विभिन्न शंकाओं का समाधान करते समय नागसेन द्वारा प्रयुक्त विभिन्न उपमाओं तथा उदाहरणों से भारतीय संस्कृति के दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पक्षों का भी विवेचन प्राप्त होता है।
- भारतीय संस्कृति के दार्शनिक पक्ष का प्रतिपादन अनात्मवाद, पुनर्जन्म, कर्मवाद, नाम-रूप, निर्वाण तथा काल संबंधी सिद्धांतों के आधार पर किया गया है। इन सिद्धांतों को बौद्ध धर्म तथा दर्शन की सरंचना के आधार पर लघु शोध प्रबंध में विवेचित किया गया है। अनात्मवाद की संगति पुनर्जन्म तथा

कर्मवाद के साथ दिखाकर रथ, दीप, नदी तथा जल इत्यादि सहज उपमाओं के माध्यम से विश्लेषित किया गया है। मिलिन्दपञ्ह के इन सिद्धांतों ने परवर्ती बौद्ध दर्शन के लिए पृष्ठभूमि का निर्माण किया, जिसके बीज नागार्जुन, असंग, वसुबन्धु, दिङ्नाग, चन्द्रकीर्ति, धर्मकीर्ति इत्यादि बौद्ध दार्शनिकों तथा तार्किकों के ग्रंथों में पल्लवित होते हुए देखे जा सकते हैं।

- ❖ भारतीय संस्कृति के धार्मिक चिंतन में तत्कालीन प्रचलित बौद्ध मान्यताओं जैसे चार आर्यसत्यों का विश्लेषण किया गया है। संसार में जन्म से लेकर मरण तक दुःख की सत्ता विद्यमान रहती है, जिसका कारण अविद्या को बताया गया है। अविद्या के नाश से दुःख नष्ट हो जाता है। इसका उपाय अष्टांगिक मार्ग का पालन करना है। दुःख से सर्वदा के लिए छुटकारा निर्वाण की प्राप्ति से ही संभव है। निर्वाण प्राप्ति के त्रिविध यान तथा निर्वाण के स्वरूप का विशद विवेचन मिलिन्दपञ्ह में किया गया है।
- ❖ धम्मनगर के आदर्श के माध्यम से नैतिकता के महत्त्व को स्थापित किया गया है। धम्मनगर के वर्णन की प्रतीकात्मक भाषा से बौद्ध धर्म की शब्दावली जैसे अनात्म, वैराग्य, निरोध आदि संज्ञा; मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा नामक चतुर्विध ब्रह्मविहार; शरणशील, पञ्चशील, अष्टशील, दशशील तथा प्रातिमोक्ख संवरशील; सप्तविध चित्त; निर्वाण; चार आर्यसत्य; स्मृतिप्रस्थान, ऋद्धिपाद, इन्द्रियाँ, बल, बोध्यंग, अष्टांगिक मार्ग; कायगता स्मृति; शील, समाधि, प्रज्ञा तथा प्रतिसंविद् आदि रत्न; पञ्चविध समाधि; नवांग बुद्धवचन, धातु इत्यादि का बोध होता है। इनकी संक्षिप्त व्याख्या शोध पत्र में की गई है।
- ❖ बुद्ध के संदर्भ में प्रचलित विभिन्न मत-मतान्तरों का खण्डन करते हुए लघु शोध प्रबंध में नागसेन अभिमत बौद्ध धर्म संबंधी सिद्धांतों का विश्लेषण किया गया है।
- ❖ लघु शोध प्रबन्ध में श्रमण परंपरा में प्रचलित विनय के नियमों का स्पष्टीकरण किया गया है। साथ ही भिक्खु के गुणों तथा उनके द्वारा पालन किए जाने वाले धुतांगों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है।
- ❖ बौद्धेतर अन्य संप्रदायों जैसे आजीवक, कृततावाद, उच्छेदवाद, नित्यवाद, सन्देहवाद, वासुदेव, शैव, कालिसम्प्रदाय इत्यादि का भी उल्लेख किया गया है।
- ❖ मिलिन्दपञ्हकालीन समाज संरचना में वर्ण-व्यवस्था की स्थिति, नवीन जातियों तथा अस्पृश्यता के उद्भव, यवनों के प्रभाव को रेखांकित किया गया है। तत्कालीन भोजन व्यवस्था, रहन-सहन, मनोरंजन, स्त्रियों के सामाजिक अपकर्ष इत्यादि का अन्वेषणात्मक अध्ययन किया गया है।
- ❖ तत्कालीन समय में शिक्षा-व्यवस्था वर्णाधारित थी। हाथी, घोड़े, रथ, भाले और तीर चलाने की शिक्षा, लिखना-पढ़ना, क्षात्र धर्म का पालन करना, युद्ध करना, सैन्य सञ्चालन आदि की शिक्षा क्षत्रियों के लिए दी जाती थी। ब्राह्मणों के अध्ययन के विषय थे- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, आयुर्वेद, इतिहास, पुराण, निघण्टु, कैटुभ, अक्षर प्रभेद, पद, व्याकरण, ज्योतिषशास्त्र, शकुनविद्या, स्वप्नविद्या,

निमित्तविद्या, षड् वेदाङ्ग, सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण विद्याएं, उल्कापात, भूकम्प, दिशादाह, आकाश और पृथ्वी के लक्षणों को देख कर फल बताने की विद्या, गणित, सामुद्रिक इत्यादि। इनका उल्लेख शोध ग्रंथ में किया गया है।

- ❖ मिलिन्दपञ्हकाल में बौद्ध दर्शन के हेतुवाद के प्रभावस्वरूप चिकित्सा पद्धति का विकास हुआ। रोग निदान की वमन-विरेचन पद्धतियों तथा शल्य चिकित्सा का प्रचलन तत्कालीन समाज में था।
- ❖ मिलिन्दपञ्हकाल में राजतंत्रात्मक शासन पद्धति प्रचलित थी। राज्य की समस्त प्रशासनिक, आर्थिक, न्यायिक, सैनिक शक्तियों का केन्द्र राजा ही होता था। राज्य में न्याय तथा शासन व्यवस्था के संचालन हेतु विभिन्न प्रकार के अमात्य तथा मंत्री होते थे। न्याय की स्थापना के लिए स्वीकृत तत्कालीन कठोरतम दण्ड व्यवस्था का विश्लेषण शोध प्रबन्ध में किया गया है।
- ❖ तत्कालीन कृषि तथा अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि कृषि का ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तथा व्यवसाय एवं व्यापार का नगरीय अर्थव्यवस्था में विशिष्ट स्थान था। भारत का व्यापार स्थल तथा जलमार्गों के माध्यम से विदेशों के साथ स्थापित हो चुका था। इस काल में विभिन्न प्रकार के शिल्प तथा व्यवसायों का उद्भव हुआ। अर्थव्यवस्था की समृद्धता से ही स्थापत्य तथा अन्य कलाओं का विकास संभव हो पाया था।
- ❖ भारतीय संस्कृति समाजवादी भावना से ओतप्रोत है। लघु शोध प्रबन्ध में स्पष्ट किया गया है कि मानव स्वयं की आजीविका कमाते हुए, परहित में भी खर्च करे। एक तरफ प्रगतिवादी अर्थशास्त्री जो धर्म के सख्त खिलाफ हैं, दूसरी तरफ पूंजीवादी जो धन के पीछे अन्धे होकर दौड़ रहे हैं; ये दोनों ही समाज के लिए अहितकर हैं। क्योंकि नैतिकता के आधार पर कमाया गया धन ही मानव कल्याण की ओर प्रवृत्त होता है।

इस प्रकार उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मिलिन्दपञ्ह के आधार पर भारतीय संस्कृति की समीक्षा जिन दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पहलुओं के आधार पर की गई है, उसकी पुष्टि ऐतिहासिक सामग्री तथा मनुस्मृति एवं अर्थशास्त्र जैसे अन्य ग्रंथों के द्वारा भी हो जाती है। मिलिन्दपञ्हकालीन संस्कृति का प्रभाव परवर्ती भारतीय दर्शन, धर्म, समाज, राजनीति तथा अर्थव्यवस्था पर परिलक्षित होता है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

प्राथमिक स्रोत (Primary Sources)

(क) प्रत्यक्ष स्रोत (Direct Sources)

1. पालि

- *मिलिन्दपञ्हो*, शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास (सं.), बौद्धभारतीग्रन्थमाला-13, बौद्धभारती, वाराणसी, 1979.
- *मिलिन्दपञ्हपालि*, मेश्राम, डॉ. विमलकीर्ति (सं.) राहुल प्रकाशन, दिल्ली, 1999.
- *मिलिन्दपञ्हपालि*, धम्मगिरि-पालि-ग्रन्थमाला, विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, प्रथम आवृत्ति, 1998.
- *मिलिन्दपञ्हपालि (हिन्दी-अनुवादसहित)*, शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास (सं. व अनु.), बौद्धभारती, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 2006.
- *The Milindpañha*, Trenckner, V. (Ed.) London, 1880.
- *Milindapañho*, Bullitt, John T. (Ed.) The Sri Lanka Tripitaka Project, Courtesy of the Journal of Buddhist Ethics, Sri Lanka, 2010-11.
- *The Milindpañha*, Vadekar, R. D. (Ed.), Devanagri Pali Text Series-7, Bombay, 1940.

2. हिन्दी

- काश्यप, भिक्षु जगदीश (अनु.) *मिलिन्द प्रश्न*, सुगत प्रकाशन, नागपुर, चतुर्थावृत्ति, 1995.

3. अंग्रेजी

- Davids, T. W. Rhys, *The Questions of King Milind (Two Volumes)*, The Sacred Books of The East-XXXV, The Clarendon Press, Oxford, 1890.
- Davids, T. W. Rhys, *The Questions of King Milind (Two Volumes)*, The Sacred Books of The East- XXXXVI, The Clarendon Press, Oxford, 1894.
- Davids, Carolyn A. F., *The Milind Questions*, Rhys Pali Texts Society, London, 1930.

- Horner, Isaline Blew, *Milind's Questions (Two Volumes),* Sacred Books of the Buddhists 22-23, London, 1963-64.
- Kelly, John, *Milindapañha: The Questions of King Milinda, AI,* 2010. (http://www.accesstoinsight.org/tipitaka/kn/miln/miln.intro. kell. html)
- Mendis, N.K.G. (ed.), *The Questions of King Milinda: An Abridgement of the Milindapañha(Kandy)*, Buddhist Publication Society, Sri Lanka, 1993 (repr. 2001).
- Pesala, Bhikkhu, *The Debate of King Milinda,* Inward Path, Penang, Malaysia, First Edition, 1991, Association for Insight Meditation, England, New Revised Edition, 2001. www.buddhanet.net

(ख) अप्रत्यक्ष स्रोत (Indirect Sources)

1. पालि

- *दीघनिकायपालि,* धम्मगिरि-पालि-ग्रन्थमाला, विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, प्रथम आवृत्ति, 1998.
- *मज्झिमनिकायपालि,* धम्मगिरि-पालि-ग्रन्थमाला, विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, प्रथम आवृत्ति, 1998.
- *संयुत्तनिकायपालि,* धम्मगिरि-पालि-ग्रन्थमाला, विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, प्रथम आवृत्ति, 1998.
- *अङ्गुत्तरनिकायपालि,* धम्मगिरि-पालि-ग्रन्थमाला, विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, प्रथम आवृत्ति, 1998.
- *थेरगाथा*, धम्मगिरि-पालि-ग्रन्थमाला, विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, प्रथम आवृत्ति, 1998.
- *जातक*, धम्मगिरि-पालि-ग्रन्थमाला, विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, प्रथम आवृत्ति, 1998.

- *खुद्दकपाठ*, धम्मगिरि-पालि-ग्रन्थमाला, विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, प्रथम आवृत्ति, 1998.

2. पालि-हिन्दी

- *दीघनिकाय(हिन्दी-अनुवादसहित) (खण्ड 3),* शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास (सं. व अनु.), बौद्धभारती, वाराणसी, 2006.
- *मज्झिमनिकाय, (हिन्दी-अनुवादसहित) (खण्ड 3),* शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास (सं. व अनु.), बौद्धभारती, वाराणसी, 2006.
- *संयुत्तनिकायपालि, (हिन्दी-अनुवादसहित) (खण्ड 4),* शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास (सं. व अनु.), बौद्धभारती, वाराणसी, 2000.
- *अंगुत्तरनिकायपालि(हिन्दी-अनुवादसहित) (खण्ड 4),* शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास (सं. व अनु.), बौद्धभारती, वाराणसी, 2002.
- *धम्मपदपालि, (हिन्दी-संस्कृत अनुवादसहित),* शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास (सं. व अनु.), बौद्धभारती, वाराणसी, 2002.
- *खुद्दकपाठपालि, उदानपालि, इतिवुत्तकपालि, चरियापिटकपालि, (हिन्दी-अनुवादसहित)*, शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास (सं. व अनु.), बौद्धभारती, वाराणसी, 2003.
- *सुत्तनिपातपालि, (हिन्दी-अनुवादसहित)*, शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास (सं. व अनु.), बौद्धभारती, वाराणसी, 2005.
- *थेरगाथा, (हिन्दी-अनुवादसहित)*, डॉ. विमलकीर्ति (अनु.), सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2005.
- *थेरीगाथा*, विमलकीर्ति, मेश्राम, डॉ. एल. जी., सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2008.

3. हिन्दी

- शुक्ला, रेनू , *मिलिन्दपञ्ह : एक अध्ययन*, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004.
- सांकृत्यायन, राहुल, (अनु.), *विनय पिटक*, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, द्वितीय आवृत्ति, 2010.
- सांकृत्यायन, राहुल, (अनु.), *मज्झिमनिकाय*, महाबोधि सभा, सारनाथ, द्वितीय संस्करण, 1964.
- सांकृत्यायन, राहुल एवं जगदीश काश्यप (अनु.), *दीघनिकाय*, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010.
- अम्बेड़कर, बोधिसत्त्व डॉ. भीमराव रामजी, *भगवान बुद्ध और उनका धम्म*, बुद्धभूमि प्रकाशन, नागपुर, बुद्धवर्ष – 2541 (1997).
- उपाध्याय, भरतसिंह, *पालि साहित्य का इतिहास*, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, इलाहाबाद, छठा संस्करण, 2000.
- सांकृत्यायन, राहुल, *पालि साहित्य का इतिहास*, हिन्दी समिति ग्रंथमाला-79, हिन्दी समिति, लखनऊ, 1973.
- धर्मरक्षित, भिक्षु, *पालि साहित्य का इतिहास*, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1971, पुनर्मुद्रण, संवत 2066.
- डेविड्स, टी. डबल्यु रीस, *बौद्ध धर्म का इतिहास और साहित्य*, अनु. ताराराम, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009.

4. **अंग्रेजी**

- Basu Rabindra Nath, *A critical study of the Milindapañha: a critique of Buddhist philosophy*, Firma KLM, 1978.
- Horner, I.B., *A Question (Solved by) Inference (Miln 5),* Access to Insight, 2010. (www.accesstoinsight.org)
- Horner, I.B., *The Blessed One's City of Dhamma: From the Milindapañha* (BL 130), Buddhist Publication Society (BPS), Kandy, 1993 (www.accesstoinsight.org)
- Jaini, P.S. (Ed.), *Milinda-Tikaa*, London, 1986.
- Kaul, Dr. P.K., *NĀG SEN OF MILIND PAṄHÖ*, Eastern Book Linkers, Delhi, First Edition, 1996.

- Sharma, G. R., *Reha Inscription of Minander and Indo-Greek invagen of Ganga Valley*, Allahabad, 1980.
- *Nagsena Bhiksu Sutra Vol. I*, Venerable Guang Xing (tr.), Buddha's Light Publishing, Taiwan, First Edition, 2008.
- *Nagsena Bhiksu Sutra Vol. II*, Venerable Guang Xing (tr.), Buddha's Light Publishing, Taiwan, First Edition, 2008.
- Chau, Bhikkhu Thich Minh, *Milindapañha & Nāgasen Bhikshu Sūtra - A Comparative Study (Through Pali and Chinese sources)*, (www.buddhanet.net)

द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources)

1. पालि

- Buddhaghosa, *Sumaṅgalavilāsinī part 1*, ed. T.W. Rhys Davids & J. Estlin Carpenter, The Pali Text Society, London, 1886.
- Buddhaghosācariya, *Visuddhimagga vol.-1*, ed. Dharmānanda Koshambi, Bhāratīya Vidyā Bhavana, Bombay, First Edition, 1940.
- Mahamaṅgala, *Buddhaghosuppatti, (Mahābuddha-ghoassa Nidanavatthu)*, ed. James Gray, London, 1892.
- Turnour, George *(Ed.) Mahāvaṃsa*, Oxford University Press, London, 1938.

2. संस्कृत

- *अथर्ववेदः (शौनकीयः) सायणाचार्यकृतभाष्यसहितः*, विश्वबन्धु (सं.), विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1960-64.
- *ऋग्वेदसंहिता, सायणाचार्यविरचितभाष्यसमेता (पाँच भाग)*, वैदिकशोधमण्डल, पुण्यपत्तन, 1933-51.
- *शथपथ ब्राह्मण- सायणभाष्यसहितम् (सात भाग)*, सत्यव्रतसामश्रमी (सं.), कलकत्ता, 1903-11.
- *गौतमधर्मसूत्राणि*, व्या. डॉ. उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, वि.सं. 2061.
- यास्क, *निरुक्तम्*, छज्जूराम शास्त्री(अनु.), मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2006.
- *मनुस्मृति(कुल्लुक भट्ट विरचित टीका सहित)*, जे. एल. शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1996.

- पाणिनि, *अष्टाध्यायी,* डॉ. नरेश झा (सं.), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 2006.
- अश्वघोष, *बुद्धचरित*, सं. व अनु. सूर्यनारायण चौधरी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 1985, पुनर्मुद्रण, 2008.
- अश्वघोष, *वज्रसूची*, सं. ए. वेबर, बर्लिन, 1850.
- अश्वघोष, *सौन्दरनन्द*, अनु. जगदीश चन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1991.
- शान्तिदेव, आचार्य, *बोधिचर्यावतार*, हि. अनु. शान्तिभिक्षु शास्त्री, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, द्वितीय आवृत्ति, 2010.
- मध्वाचार्य, *सर्वदर्शनसंग्रह,* प्रो. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2006.
- झा, डॉ. रामनाथ, *सांख्यदर्शन*, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008.
- वैद्य, पी. एल. (सं.), *दिव्यावदान*, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1959.
- वैद्य, पी. एल. (सं.), *ललितविस्तर*, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1958.
- गैरोला, वाचस्पति, *कौटिलीय अर्थशास्त्रम्,* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2009.
- विश्वनाथकविराज, *साहित्यदर्पणः,* डॉ. सत्यव्रत सिंह (व्या.), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2007.
- नागेशभट्ट, *परमलघुमञ्जूषा,* आचार्य लोकमणि दाहाल (अनु.), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009.
- Chandra Kīrtti, *Mādhyamikā Vṛitti*, Buddhist Text Society of India, Calcutta, 1897.
- *Aitareya Brāhmaṇa (With the Vṛitti Sukhapradā of Ṣaḍguruṣśiṣya)*, R. Anantakriṣṇa Śāstri (ed.), Vol. 1-15 Adhyāyas, Trivendrum, 1942.
- Sadānanda, *Vedānta-Sāra,* Swami Nikhilananda (tr.), Advaita Ashrama, Kolkata, 2006.

3. ऑनलाईन ग्रंथ

- *धम्मवाणी* (http://www.tipitaka.org/hindi/dhammavani.pdf)
- नागार्जुन, *प्रतीत्यसमुत्पादहृदयकारिका* (http://dsbc.uwest.edu/node/3805)

- नागार्जुन, *मध्यमकशास्त्रम्* (http://dsbc.uwest.edu/node/7879)
- *नैरात्म्यपरिपृच्छा* (http://dsbc.uwest.edu/node/3955)
- नागार्जुन, *धर्मसंग्रहः* (http://dsbc.uwest.edu/node/3801)
- *भैषज्यगुरुवैदूर्यप्रभराजसूत्रम्* (http://dsbc.uwest.edu/node/3959)
- आचार्य वसुबन्धु, पञ्चस्कन्धप्रकरणं (http://dsbc.uwest.edu/node/3804)
- रत्नकीर्त्ति, *अपोहसिद्धिः* (http://dsbc.uwest.edu/node/4854)
- आर्यावलोकितेश्वर, *सप्तविधानुत्तरस्तोत्रम्* (http://dsbc.uwest.edu/node/3939)
- वसुबन्धु, *पञ्चस्कन्धप्रकरणम्* (http://dsbc.uwest.edu/node/3804)
- वसुबन्धु, *विंशतिका विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः* (http://dsbc.uwest.edu/node/3818)
- *यजुर्वेद* (http://www.sanskritweb.net/yajurveda(

4. हिन्दी

- अग्रवाल, डॉ. पुरुषोत्तम, *संस्कृति: वर्चस्व और प्रतिरोध,* राधाकृष्ण, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1995.
- अज्ञात, डॉ. सुरेन्द्र, *बुद्धधम्म, बुद्धिवाद व आंबेडकर,* सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010.
- उपाध्याय, बलदेव, *बौद्ध दर्शन मीमांसा,* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पंचम संस्करण, 1999.
- उपाध्याय, बलदेव, *भारतीय दर्शन,* शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1966.
- उपाध्याय, बलदेव, *भारतीय धर्म एवं दर्शन,* चौखम्बा ओरियण्टल, दिल्ली, 1977.
- कोसंबी, दामोदर धर्मानंद, *प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता,* गुणाकर मुले (अनु.), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संशोधित संस्करण, 1990, आवृत्ति, 2007.
- गुलाबराय, *भारतीय संस्कृति की रूपरेखा,* ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2008द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, *विचार और वितर्क,* सुषमा साहित्य मन्दिर, जबलपुर, प्रथम संस्करण, सं. 2002 वि.
- द्विवेदी, डॉ. कपिलदेव, वेदों में राजनीति शास्त्र, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर, प्रथम संस्करण, 1998.
- दुबे, श्यामचरण, *मानव और संस्कृति,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पुनर्मुद्रित 1998.
- दिनकर, रामधारी सिंह, *संस्कृति के 4 अध्याय,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962, पुनरावृत्ति, 2004.

- काणे, डॉ. पाण्डुरंग वामन, *धर्मशास्त्र का इतिहास (5)*, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, चतुर्थ संस्करण, 1992.
- विद्यालंकार, डॉ. जयचन्द्र, *भारतीय कृष्टि का क ख ग,* हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 1955.कृष्णचन्द्र, *भारतीय संस्कृति,* सूर्यभारती प्रकाशन, दिल्ली, 1992.
- शर्मा, अमित कुमार, *भारतीय संस्कृति का स्वरूप,* कौटिल्य प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण., 2006.
- गुप्त, शिवकुमार, *भारतीय संस्कृति के मूलाधार,* राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2002.
- अग्रवाल, डॉ. वासुदेव, *कल्पवृक्ष,* सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1953.
- वर्मा, महादेवी, *क्षणदा,* सं. लौठा, फतेहसिंह, भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1956.
- कृष्णचन्द्र, *भारतीय संस्कृति,* सूर्यभारती प्रकाशन, दिल्ली, 1992.
- कुमार, डॉ. शशिप्रभा, *भारतीय संस्कृति के विविध आयाम,* विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2005.
- द्विवेदी, प्रो. व्रजवल्लभ, *भारतीय संस्कृति के नये आयाम,* श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1997.
- डॉ. बाबूराम, *हिन्दी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002.
- टण्डन, डॉ. किरण, *भारतीय संस्कृति,* ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2006.
- सिंह, डॉ. आर. जी., *भारतीय समाज,* मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण, 1987.
- गैरोला, वाचस्पति, *भारतीय संस्कृति और कला,* उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1973.
- शास्त्री, मंगलदेव, *भारतीय संस्कृति का विकास,* भारतीय ज्ञानपीठ, 2003.
- सिन्हा, सच्चिदानन्द, *संस्कृति और समाजवाद,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004.
- अवस्थी, शशि, *प्राचीन भारतीय समाज,* हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, 1981.
- दीपंकर, आचार्य, *कौटल्य कालीन भारत,* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, तृतीय संस्करण, 2003.

- दुबे, डॉ. राजदेव, *स्मृतिकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति (याज्ञवल्क्य स्मृति के विशेष संदर्भ में)*, प्रतिभा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1988.
- पाण्डेय, शम्भुनाथ, *भारतीय जीवन और संस्कृति*, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, प्रथम संस्करण, 1977.
- बाशम, ए.एल., *अद्‌भुत भारत*, वेंकटेशचन्द्र पाण्डेय, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 2002.
- राय, डॉ. विमला देवी, *वेदकालीन समाज और संस्कृति*, कला प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 2001.
- सिहं, योगेन्द्र, *भारतीय परम्परा का आधुनिकीकरण*, हि.अनु. अरविन्द कुमार अग्रवाल, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2006.
- नेहरु, जवाहर लाल, *विश्व इतिहास की झलक*, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 1989.
- नेहरु, जवाहर लाल, *हिन्दुस्तान की कहानी*, सं. रामचन्द्र टण्डन, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, तेरहवां संस्करण, 2004.
- झा, दिजेन्द्र नारायण एवं श्रीमाली, कृष्ण मोहन, *प्राचीन भारत का इतिहास*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2004.
- थापर, रोमिला, *अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन*, अनु. डी आर. चौधरी, राजेशप्रभा यादव, आदित्यनारायण सिंह, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2010.
- थापर, रोमिला, *भारत का इतिहास*, राजाकमल प्रकाशन, दिल्ली, 22 वीं आवृत्ति, 2007.
- थापर, रोमिला, *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास*, आदित्यनारायण सिंह (अनु.), ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001.
- शर्मा, रामशरण, *शूद्रों का प्राचीन इतिहास*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवीं आवृत्ति, 2009.
- चट्टोपाध्याय, देवीप्रसाद, *प्राचीन भारत में विज्ञान और समाज*, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 2001.
- श्रीवास्तव, के. सी., *प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति*, युनाईटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, ग्यारवीं आवृत्ति, 2007.
- वर्मा, हरिश्चन्द्र (सं.), *मध्यकालीन भारत*, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भाग-1 2005.

- वर्मा, हरिश्चन्द्र (सं.), *मध्यकालीन भारत,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भाग- 2, 2006.
- शुक्ल, आर.एल. (सं.), *आधुनिक भारत का इतिहास,* हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2006.
- सिंह, महेश प्रसाद, *गांधी के सपनों का भारत,* ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2009.
- जैन, डॉ. हुकम चन्द जैन एवं माथुर, डॉ. कृष्ण चन्द्र माथुर, *आधुनिक विश्व इतिहास,* जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, पंचदश संस्करण, 2010.
- अम्बेडकर, *डॉ. भीमराव रामजी, बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्मय (भाग- 1, 6, 7, 8, 14),* सं. मोहनदास नैमिशराय और कैलाश चन्द्र सेठ, अनु. खोड़ावाल कन्हैयालाल इत्यादि, पुनरीक्षक- उमराव सिंह, डॉ. अम्बेड़कर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1998.
- बापट, पी.वी., *बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष, प्रकाशन विभाग,* सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2008.
- कोसम्बी, धर्मानन्द, *भगवान् बुद्ध जीवन और दर्शन,* साहित्य अकादमी-लोकभारती पेपरबैक्स, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2009.
- उपाध्याय, भरतसिंह, *बुद्धकालीन भारतीय भूगोल,* प्रयाग, सं. 2018.
- गौतम, एस.एस.(सं.), *भारतीय संस्कृति को बौद्धधर्म की देन,* गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009.
- दत्त, नलिनाक्ष (सं.), *बौद्ध संग्रह,* अनु. राममूर्ति त्रिपाठी, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993.
- नरसु, पी. लक्ष्मी, *बौद्ध धर्म का सार,* अनु. डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, बुद्धभूमि प्रकाशन, नागपुर, द्वितीय संस्करण, 1998.
- लाल, प्रो. अँगने, *संस्कृत बौद्ध साहित्य में इतिहास और संस्कृति,* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 2006.
- विमलकीर्ति, डॉ. एल. जी. मेश्राम, *बौद्ध धर्म के विकास में डॉ. बी. आर. अम्बेड़कर का योगदान,* संगीता प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2011.
- सिंह, मदन मोहन, बुद्धकालीन समाज और धर्म, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1972.

- अम्बेडकर, *डॉ. भीमराव रामजी, हिन्दू नारी का उत्थान और पतन,* गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009.
- लाल, डॉ. अँगने, *बौद्ध संस्कृति के विविध आयाम,* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 2008.
- शेरबात्स्की, एफ. टी., *बौद्ध न्याय,* अनु. रामकुमार राय, चौखम्बा प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1969.
- सांकृत्यायन, राहुल, *बौद्ध संस्कृति,* कौशल्य प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथम संस्करण, 1952, पुनर्मुद्रित, 2010.
- सांकृत्यायन, राहुल, *बौद्ध दर्शन,* किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1943, प्रस्तुत संस्करण, 2001.
- सांकृत्यायन, राहुल, *ऋग्वेदिक आर्य,* किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1957.
- सांकृत्यायन, राहुल, *महामानव बुद्ध,* गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1956, पुनर्मुद्रण, 2010.
- सांकृत्यायन, राहुल, *दर्शन दिग्दर्शन,* किताब महल, इलाहाबाद, 1943.
- डॉ. धर्मकीर्ति, बुद्धकालीन वर्ण व्यवस्था और जाति, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010.
- कौसल्यायन, डॉ. भदन्त आनन्द, *दर्शन: वेद से मार्क्स तक,* सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1988, प्रथम रिप्रिंट, 2010.
- राधाकृष्णन, डॉ. सर्वपल्ली, *भारतीय दर्शन (भाग-1),* राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1973.
- राधाकृष्णन, डॉ. सर्वपल्ली, *भारतीय दर्शन (भाग-1),* राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, 2012.

5. अंग्रेजी

- Tylor, Edward Burnett, *Primitive Culture,* John Murray, Albemarle Street, London, 1871.
- Arnold, Matthew, *Culture and Anarchy : An Essay in Political and Social Criticism,* Smith, Elder and Co., 15, Waterloo place, London, 1869.
- Kern, H., *Manual of Indian Buddhism,* Strosburg, 1896.

- Garbe, Richard, *The Philosophy of Ancient India,* The open court publishing co., Chicago, 1897.
- Peterson, P., *Hymns from Ṛgveda*, Bombay, 1898.
- Smith, Vinceth A., *The Oxford Student's History of India,* The Clarendon Press, London, Fifth Edition, 1915.
- Tachibana, S., *The Ethics of Buddhism*, Oxford University Press, London, 1920.
- Raychaudhuri, Hemchandra, *Political History of Ancient India*, University of Calcutta, Calcutta, 1923.
- Radhakrishnan, Dr. S., *History of Indian Philosophy (Vol. 1)*, London, 1929.
- Law, Bimla Charan, *Geography of Early Buddhism*, London, 1932.
- Law, Bimla Charan, *Tribes in Ancient India,* Poona, 1943.
- Bapat, P. V., *2500 Years of Buddhism*, Publications Division (Ministry of Information), Delhi, 1956.
- Narain, A. K., *The Indo-Greeks*, Oxford, 1957.
- Bary, Wm. Theodore De (ed.), *Sources of Indian Tradition*, Columbia University Press, New York, 1958.
- Tagore, Rabindranath, *Towards Universal Man,* Asia Publishing House, New York, 1961.
- M.N. Srinavas, *"A note on Sanskritization and Westernization" in caste in Modern India and other Essay*, London, Asia Publishing House, 1962.
- Winternitz, Maurice, *A History of Indian Literature* (*Vol. II),* tr. Dr. Subhadra Jha, Motilal Banarasidas, Delhi, 1966.
- Radhakrishnan, Dr. S., *Religion and Culture*, Hind Pocket Books, Delhi, 1968.
- Chattopadhyaya, Debiprasad, *Indian Philosophy,* People & Publishing House, Delhi, 1969.
- Davids, T. W. Rhys (tr.), *Dialogues of the Buddha*, London: 1971.
- Dasgupta, S.N., *History of Indian Philosophy (Vol. 1),* Motilal Banarsidass, Delhi, 1975.
- Buddharakkhita, Sri Acharya, *Pāli Language and Literature,* Bangalore, 1977.

- Webb, Russell, *Analysis of the Pāli Canon*, Buddhist Publication Society, Kandy, Sri Lanka, 1991.
- Ven. S. Dhammika, *The Edicts of King Ashoka*, (Edict 1), Buddha dharma Educational Association Inc, Australia, 1994.
- Hazra, Kanai Lal, *PĀLI LANGUAGE AND LITERATURE: A systematic survey and historical study (Volume-1)*, D.K. Printworld (P) Ltd., New Delhi, First Edition in India, 1994.
- M.N. Srinavas, *Social Change in Modern India*, Los Angeles, California, 1996.
- Harvey, Peter, *Introduction to Buddhist Ethics: Foundations, Values and Issues*, Cambridge Press, New York, 2000.
- Oberlies, Thomas, *Pāli: A Grammar of the Language of the Theravāda Tipiṭaka*, Walter de Gruyter, 2001.
- Sri Dhammananda, K., *The Dhammapada*, The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation, Taiwan, 1998.
- Muller, F. Max, and Fausboll V., *Dhammapada and Sutta-Nipata*, SBE Vol. 10, Motilal Banarsidas Publishers Private Limited, Delhi: 2003.
- Davids, T.W. Rhys, and Oldenburg, Hermann, *Vinya Text*, SBE Vol. 13,17,20, Motilal Banarsidas Publishers Private Limited, Delhi: 2003.
- Sarao, K.T. S., *Origin and Nature of Ancient Indian Buddhism*, 4th rev. ed., Corporate Body of the Buddha Education Foundation, Taipei, 2004.
- Radhakrishnan, S., *The Dhammapada*, Oxford University Press, New Delhi, 2006.
- Law, Bimla Charan, *The Life & Works of Buddhaghosa,* Winsome Books India, Delhi, 2005.
- Bodhi, Bhikkhu, *In the Buddha's Words*, Wisdom Publications, 2005.
- Law, Bimla Charan, *A History of Pāli Literature,* Abhisekh Prakashan, Delhi, 2007.
- Singh, Upinder, *A History of Ancient and Early Medieval India (From the Stone Age to the 12th Century),* Pearson, Longman, New Delhi, 2009.
- F. Max Müller, *India what can it teach us?* Rupa.co, New Delhi, Fourth Impression, 2010.
- Bullitt, John T., *Beyond the Tipitaka: A Field Guide to Post-canonical Pali Literature*, 2010.
- Davids, T. W. Rhys, *Buddhist India*, London, 1903, Reprint 2010.

- Law, Bimla Charan, *A Study of the Mahavastu,* New Bhartiya Book Corporation, Delhi, 1st Edition, 2011.

कोश- ग्रन्थ (Dictionaries & Encyclopedias)

पालि – अंग्रेजी

- Davids, T.W. Rhys, Stede, William, *Pali-English Dictionary, Vol. I-VII,* Pali Text Society, London, 1952.
- Nyantiloka, *Buddhist Dictionary,* Singapur Buddhist Meditation Centre, Singapore, 1946, reprint from The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation, Taiwan, Third Edition, 1970.
- Humphreys, Christmas, *A Popular Dictionary of Buddhism,* Curzon Press, London, Second Edition, 1976.
- *The New Encyclopædia Britannica-vol.3(Micropædia),* Encyclopædia of Britannica Inc., The University of Chicago, USA, 15th Edition, 1993.
- Malalsekar, *Dictionary of Pali Proper Names*, Volumes I & II, New Delhi, 1983.
- Upasak, Prof. C.S., *Dictionary of Early Buddhist Monastic terms,* Bharati Prakashan, Varanasi, First Edition, 1975.

पालि – हिन्दी

- कौसल्यायन, डॉ. भदन्त आनन्द, *पालि-हिन्दी कोश*, सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1975.
- कांबळे, डॉ. सविता, *पालि-भाष्यकोश,* सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010.
- पंथ, डॉ. आर., *पालि-हिन्दी शब्दकोश (प्रथम भाग, प्रथम खण्ड) (अ-आकारिक)*, नव नालन्दा महाविहार, बिहार, प्रथम संस्करण, 2007.
- पंथ, डॉ. आर., *पालि-हिन्दी शब्दकोश (प्रथम भाग, द्वितीय खण्ड) (इ-ईकारिक)*, नव नालन्दा महाविहार, बिहार, प्रथम संस्करण, 2009.

- पंथ, डॉ. आर., *पालि-हिन्दी शब्दकोश (प्रथम भाग, तृतीय खण्ड) (उ-ओळारिक)*, नव नालन्दा महाविहार, बिहार, प्रथम संस्करण, 2011.

संस्कृत

- *अमरकोषः ('धाराख्य' हिन्दी टीका सहित)*, मन्नालाल अभिमन्यु, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित सं. 2008.
- *वाचस्पत्यम् (छः भाग)*, चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्र. सं. 94, वाराणसी, 1969.
- *संस्कृत वाङ्मय कोश*, सं. श्रीधर भास्कर वर्णेकर, भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता, 2001.
- *शब्दकल्पद्रुम (पाँच खण्ड)*, राजा राधाकान्त देव, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2002.

अंग्रेजी – संस्कृत

- Williams, Monier, *English-Sanskrit Dictionary*, Munsi Ram Manohar Lal, Delhi, 1976.

संस्कृत – हिन्दी

- *संस्कृत-हिन्दी कोश*, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1988.

अंग्रेजी

- *Encyclopedia Britannica (Vols.-II, VIII, XXI)*, Helen Hemingway Publication, Benton, 15th Edition, 1973-74.
- Hestings, James, *Encyclopedia of Religion and Ethics, Vol. - VIII*, New York, 1980.
- Hornby, A.S., *Oxford Advanced Learner's Dictionary of Current English*, Oxford University Press, London, 2005.
- Lacey, A.R., *A Dictionary of Philosophy*, Routlege & Kegan Paul Publication, London, 1976.
- Potter Karl. H. (ed.), *Encyclopedia of Indian Philosophies, Vol-II*, Motilal Banarasidas Publishers Private Limited, Delhi, Third Edition, 1995.

शोध पत्र (Research Articles)

- Bennett, A.A.G., *"Milindapañha--the Milinda inquiry"*, Mahābodhi-71 (MB), Colombo, 1963, p. 188-198.
- Chaudhary, Angraj, *"The problem of karma and rebirth as discussed in the Milinda-pañha"*, Journal of the Department of Buddhist Studies, University of Delhi-14 (JDBSDU), 1990, p. 60-67.
- Dasgupta, Shashi Bhusan, *"Nāgasena's popular exposition of Buddhist doctrines"*, Bulletin of the Ramakrishna Mission Institute of Culture-4 (BRMIC), Calcutta, 1953, p. 188-192.
- Davids, T.W.Rhys, *"Nāgasena"*, Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland (JRAS), London, 1890, p. 475-478.
- Davids, T.W.Rhys, *"Milinda"*, Hastings Encyclopedia of Religion and Ethics-8 (ERE), 1915, 1926, p. 631-633.
- Enda, Toshiichi, *"Some significant epithets and qualities of the Buddha as found in the Milindapañha"*, Ananda, p. 160-171.
- Goikhale, Balakrishna Govind, *"The image-world of the Milinda Panha"*, Indian International Journal of Buddhist Studies 2.1 (IJBS), 1990, p. 1-12.
- Hayashima, Kyosho, *"Dialogue relation to ātman and anātman in Milindapañha"*, Tokyo University Asian Studies-1, 1961, p. 7-14.
- Herman, Arthur L., *"Ethical theory in Theravāda Buddhism"*, Journal of the Bihar and Orissa Research Society of India-47 (JBRS), Calcutta, 1961, p. 170-187.
- Hinuber, Oskar von, *"The oldest dated manuscript of the Milindapañha"*, Journal of the Pāli Text Society-11 (JPST), London, 1987, p. 111-118.
- Leha, *"An Analytical Study of the Buddhist Doctinre in the Milindapaṅha",* 2005 Researches in Buddhist Studies (RBS) A Descriptive Bibliography compiled by Arvind Kumar Singh and Lalan Kumara Jha, Delhi, 2007, p. 258.
- Malle, N., *"The questions of King Milinda, an example of philosophical analysis", with comments by P.K.Mohapatra*, G. C. Nayak (ed.), Analytical Studies in Buddhist Philosophy (ASBP), Bhubaneshwar, 1984, p. 63-69.
- McDermott, James P., *"Karma in the Milindapañha"*, Journal of the American Oriental Society-97 (JAOS), New Haven, 1977, p. 460-468.

- McDermott, James P., *"Nibbāna as a reward for kamma"*, Journal of the American Oriental Society-93 (JAOS), New Haven, 1973, p. 344-347.
- Mori, Sodo, *"The Milindapañha and the Pāli Aṭṭkathā literature"*, Indologica Taurinensia (ITaur), Torino, p. 23-24, 1998-1999, p. 291-312.
- Morris, Richard, *"Buddhaghoṣa and the Milindapañha"*, Indian Antiquary-10 (IA), 1881, p. 153.
- Ngarm, Seang Chand, *"Dharma in the Mindapañḥa (The Questions of King Milinda)"*, World Fellowship of Buddhists Review-34.3 (WFBR), p. 21-24.
- Pobozniak, T., *"The problem of dream in Milindapañha"*, *Ludwik Sternbach Felicitation Volume* (LSFV), Lucknow, 1979, p. 675-678.
- Radhakrishnan, Dr. Sarvapalli, "Introduction to the First Edition" in *The Cultural Heritage of India*. Calcutta: The Ramakrishna Mission Institute of Culture, I, 1937. pp. xxiii-xxxvi.
- Schrader, F. Otto, *"Two unexplained names in the Milindapañha"*, Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland (JRAS), London, 1939, p. 606-608.
- Sharma, Arvind, *"A Gandhian response to a questio posedin the Milindapañha"*, Gandhi Marg-26 (GM), 2004, p. 363-364.
- Sharma, Arvind, *"The relation between disease and karma in the Milindapañha"*, Amala Prajna, p. 139-144.
- Singh, Sanghasen, *"Nāgasena: his time and congributions"*, Dhammadesana, p. 91-102.
- Sukukmar Sengupta, "Medical data in the Milindapañha", *Dr. B. M. Barua Centenary Volume.* Calcutta 1989BMBCV 111-117.
- Takakusu, J., *"Chinese translations of the Milinda Pañha"*, Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland (JRAS), London, 1896, p. 1-22.
- *The Cultural Heritage of India (3Vol.)*, The Ramakrishna Mission, Calcutta, First Edition, 1937.

अन्तर्जालीय स्रोत (Internet Sources)

- http://www.tipitak.org
- http://www.palitext.com
- http://www.metta.lk
- http://dsbc.uwest.edu

- http://www.fodian.net
- http://huntingtonarchive.osu.edu
- http://www.sacred-texts.com/bud/sbe36/index.htm
- http://www.woodenfish.org/images/nagasena%20sutra.pdf
- http://www.budsas.org/ebud/milinda/ml-00.htm
- http://www.sacred-texts.com/bud/sbe35/index.htm
- http://www.ancient-buddhist-texts.net
- http://indoeuro.bizland.com/tree/indo/pāli.html
- http://www.accesstoinsight.org/lib/authors/bullitt/fieldguide.html
- http://www.accesstoinsight.org/tipitaka/sltp/Mil_utf8.html
- http://www.accesstoinsight.org/tipitaka/kn/miln/index.html
- http://www.bookrags.com/wiki/Milinda_Panha
- http://www.bps.lk
- http://www.britannica.com
- http://www.dhammawiki.com
- http://www.jstor.org

****